दो शब्द

हिन्दी के कृष्ण-भक्त तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में
रसखान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में इनके
काव्य के अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं, किन्तु सटीक
कोई भी नहीं है, इससे सामान्य पाठक रसखान के
काव्य के रसास्वादन से वंचित रह जाता था।
प्रस्तुत कृति इसी उद्देश्य की सृष्टि
है। इसीलिए इसमें उन सभी
छन्दों को समाविष्ट कर
लिया है जो संदिग्ध
हैं, पर रसखान के
नाम से प्रचलित
हैं।
आशा है, अपने उद्देश्य में यह कृति सफल रहेगी।

—देशराजसिंह भाटी

विषय-सूची

आलोचना भाग

व्याख्या-भाग

[पद-सूची अकारादि क्रमानुसार पृष्ठ-सख्या सहित]

: १ :

रीतिकाल का परिचय

हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल का आविर्भाव संवत् १७०० से १६०० तक माना जाता है। इस काल में दो साहित्यिक धाराएँ युगपद् प्रवाहित होती हुई भी एक-दूसरी से नितान्त भिन्न हैं। एक धारा है रीतिबद्धमार्गी, जो काव्य-शास्त्रीय नियमों का अनुसरण करती है। इस धारा के दो वर्ग हैं। एक वर्ग तो उन लोगों का है जिनके कवित्व के साथ आचार्यत्व का गठबंधन है। केशव, जसवंतसिंह, चिन्तामणि, देव, भूषण, कुलपति मिश्र आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। दूसरा वर्ग उन लोगों का है जिन्होंने काव्यशास्त्रीय विवेचन तो नहीं किया, पर उसके आधार पर अपने ग्रन्थों की रचना की है। बिहारी, मधुसूदन, रसलीन, सेनापति आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

इस काल में जो काव्यशास्त्रीय विवेचन हुआ है, वह प्राय संस्कृत काव्य-शास्त्र की सीमाओं में ही आबद्ध रहा है। रीतिकालीन आचार्यों में, इसी कारण, नगण्य मौलिकता परिलक्षित होती है। जहाँ तक उद्देश्य का प्रश्न है, रीतिकालीन आचार्यों का उद्देश्य संस्कृत-आचार्यों से भिन्न था। संस्कृत का काव्यशास्त्र समय-समय पर रसवाद, अलंकारवाद, रीतिवाद, ध्वनिवाद तथा वक्रोक्तिवाद का समर्थन एवं खंडन-मंडन प्रस्तुत करता रहा है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य खंडन मंडन के इन पचड़ों में नहीं पड़े हैं। इन आचार्यों में से कुछ आचार्यों ने नायिका-भेद निरूपण किया है, कुछ ने अलंकार ग्रंथों का निर्माण किया है और कुछ आचार्यों ने इन दोनों का सृजन किया है। नायक-नायिका-भेद के निरूपण का आधार प्राय भानुमिश्र रहे हैं और अलंकारों के लिए अप्पय दीक्षित। संस्कृत के ये दोनों आचार्य भानुमिश्र और अप्पय दीक्षित किसी भी काव्यशास्त्रीय वाद से आबद्ध नहीं थे। हिन्दी के कुछ आचार्य, जो

सर्वांग निरूपक हैं, आचार्य मम्मट और आचार्य विश्वनाथ के ऋणी हैं। ये दोन आचार्य काव्यशास्त्रीय वादों एवं सम्प्रदायों से पूर्णतया परिचित थे, पर इन्होंने किसी वाद का वाद की दृष्टि से अनुकरण नहीं किया। हिन्दी के आचार्य अलंकारवाद, रीतिवाद तथा ध्वनिवाद से पूर्णरूपेण परिचित नहीं थे, अतः उनका किसी एक सम्प्रदाय को अपनाकर चलना असम्भव था।

रीतिकाल में जो काव्यशास्त्रीय विवेचन हुआ है, उसे देखकर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये कवि लक्षणबद्ध साहित्य निर्माण की ओर क्यों आकृष्ट हुए ? क्या इसलिए कि ये हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध काव्यशास्त्र का निर्माण करना चाहते थे, अथवा इसलिए कि ये हिन्दी में संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुवाद प्रस्तुत करना चाहते थे ? इन दोनों सम्भावनाओं में से दूसरी सम्भावना अधिक उचित है। क्योंकि यदि इनका उद्देश्य काव्यशास्त्र की रचना करना होता तो ये भी संस्कृत आचार्यों की भाँति किसी काव्यशास्त्रीय नियम के उदाहरण में अपने पूर्ववर्ती कवियों के उदाहरण प्रस्तुत करते। संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार मानकर ही हिन्दी आचार्यों ने अपने विवेचन को प्रस्तुत किया है। फिर भी हिन्दी में ऐसे अनेक आचार्य हुए हैं जिन्होंने हिन्दी की विकासशील प्रवृत्तियों का भी ध्यान रखा है। आचार्य भिखारीदास ने 'तुक' का विवेचन हिन्दी प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया है। देव और भिखारीदास दोनों ने ही नायिका-भेद में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है और अनेक ऐसी नायिका तथा दूतियों का उल्लेख किया है जो संस्कृत काव्यशास्त्र में नहीं मिलती। अब प्रश्न यह हो सकता है कि इन आचार्यों को संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुवाद की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर स्पष्ट है—आचार्यत्व प्राप्ति का प्रलोभन। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले रीतिकालीन आचार्यों में आचार्यत्व की अपेक्षा का प्रतिभा का अंश ही अधिक है।

इसके अतिरिक्त रीतिकाल में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं, जिनमें आचार्यत्व का प्रलोभन जागृत नहीं हुआ। इन्होंने अपनी प्रतिभा को काव्य तक ही सीमित रखा, अर्थात् लक्षण-ग्रन्थों की अपेक्षा लक्ष्य ग्रन्थों का निर्माण किया। बिहारी आदि कवि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

काव्य-दृष्टि से यदि रीतिकाल का मंथन किया जाए तो इसमें प्रचलित

रीतिबद्धमार्गी शाखा की निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती है—

१. शृंगारिकता
२. आलंकारिकता
३. भक्ति और नीति
४ काव्यरूप
५. ब्रजभाषा की प्रधानता
६. जीवन-दर्शन का अभाव

१. शृंगारिता—रीतिकाल मे शृंगार-वर्णन की प्रधानता रही है। इसी प्राधान्य के कारण कतिपय विद्वान् इस काल को 'शृंगार काल' कहना उपयुक्त समझते हैं। शृंगार-रस का जितना सूक्ष्म विवेचन इस काल मे हुआ है, उतना किसी काल में नही हुआ। इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। कवियो का ध्येय अपने आश्रयदाता का मनोरंजन करना होता था और मनोरंजन के लिए शृंगार के अलावा और क्या विषय उपयुक्त हो सकता है। भक्तिकाल मे माधुर्य भक्ति का जो अबाध स्रोत बहा और उसमे जिस शृंगार को अलौकिक रूप दिया गया, वही रीतिकाल मे आकर लौकिक और मासल बन गया। प्रथम दर्शन से लेकर सुरतांत तक के चित्रो का इस काल के कवियो ने बडे मनोयोग से चित्रण किया। इसी कारण इनकी दृष्टि मे प्रेम और नारी का स्वस्थ स्वरूप न आ सका। डॉ० भागीरथ मिश्र के शब्दो में—

'शृंगारिकता के प्रति उनका (रीतिकालीन कवियो का) दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसीलिए प्रेम के उन्नतर सोपानों की ओर वे न जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पक्ष भी उनकी दृष्टि मे बहुत कम आए हैं। उनका विलासोन्मुख जीवन और दर्शन सामान्यतः प्रेम या शृंगार के बाह्य पक्ष शारीरिक आकर्षण तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने वाले उपकरण ही जुटाता रहा। यह प्रवृत्ति नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, ऋतु-वर्णन, अलकार निरूपण सभी जगह देखी जा सकती है।'

२ आलंकारिकता—रीतिकालीन कवियो के काव्य के दो प्रमुख उद्देश्य थे—मनोरंजन और पांडित्य-प्रदर्शन। आलंकारिकता का प्राधान्य इन दोनों ही कारणो मे रीतिकालीन काव्य मे समाविष्ट हुआ। यह सच है कि काव्य में

अपेक्षा नीति के अधिक निकट था।

४. काव्यरूप—इस काल का वातावरण मुक्तकों के ही अधिक अनुरूप था, क्योंकि मनोरंजन इस काल के काव्य का मुख्य प्रयोजन था। ऐसे वातावरण में किसी प्रबंधकाव्य की आशा करना अनुचित ही है। काव्य का मूल्यांकन उसके चमत्कार में निहित था। अतः कवि मुक्तक पदों में ही अपनी कवि-प्रतिभा और पाण्डित्य प्रदर्शन कर सकते थे। प्रबंध और मुक्तक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल मुक्तक के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्देश करते हुए लिखते हैं—

'मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने आपको भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनमें हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसीसे वह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, कोई एक रमणीय खण्डदृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्र-मुग्ध सा हो जाता है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं या व्यापारों का एक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्ल जी का यह विवेचन रीतिकालीन काव्यरूप पर भी उतना ही फिट बैठता है जितना स्वतन्त्र रूप से।

रीतिकाल में कुछ प्रबंधकाव्य भी लिखे गये हैं, पर मुक्तक काव्यों की तुलना में उनकी संख्या नगण्य ही है।

५ ब्रजभाषा की प्रधानता—इस काल में ब्रजभाषा के प्रयोग को ही कवियों ने अधिक महत्त्व दिया और समूचे रीति-कालीन काव्य में इसी भाषा का बोलबाला रहा। इस प्रयागाधिक्य से ब्रजभाषा को भी नई शक्ति, नई सजीवता एवं नई प्राणवत्ता मिली।

६. जीवन-दर्शन का अभाव—रीतिकालीन कवियों के समक्ष यथार्थ जीवन का कोई महत्त्व नहीं था और न जीवन की सम्पूर्णता ही उन्हें वांछित

थी। व तो जीवन के केवल उसी भाग का ग्रहण करते थे जिसमें कल्पनाओं की उड़ानें और वासना की थिरकन थी युवावस्था से युक्त जीवन ही रीतिकालीन कवियों का प्रतिपाद्य था। प्रा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में—

ऐसे लगता है कि रीति कविता के रचयिता यौवन और वसन्त के कवि हैं। जीवन का फूलता हुआ सुघर रूप ही उन्हें प्रिय है। पतझड़ संघर्ष और विनाश सम्भवतः स्वतः जीवन में इतने घोर रूप में विद्यमान था कि कवि काव्य में भी उसका उतारकर नैराश्य और निवृत्ति की भावना को जगाना नहीं चाहता है। वह तो फूलते फलते जीवन का भ्रमर है। उसने जीवन का एक ही स्वरूप लिया एक ही पक्ष लिया, यह इस धारा के कवि की संकीर्णता है दुर्बलता है और एकांगिता है परन्तु जिस पक्ष को उसने लिया है उसके चित्रण में उसने कोई कसर उठा नहीं रक्खी। उसके समस्त वैभव और विलास के चित्रण में उसने कलम तोड़ दी है।

यही कारण है कि रीतिकालीन कवि के पास न तो कोई स्वस्थ जीवन है और न कोई जीवन दर्शन है।

रीतिकाल की दूसरी काव्यधारा रीतिमुक्त कवियों की है। घनानन्द आलम बोधा रसखान आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। ये कवि न तो किसी परम्परा से सबद्ध हैं और न किसी काव्यशास्त्रीय नियमन में। ये भावावेश के कवि हैं। इनके मन में जो भी भाव स्फुरित होता है उसे ये अयत्न सबल एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यंजना के माध्यम से प्रकट करते हैं। इनके अपने सिद्धान्त अपनी रीति और अपनी अभिव्यंजना शैली है। इनको तो वही व्यक्ति समझ सकता है जो व्रजभाषा का अधिकारी विद्वान् होने के साथ-साथ महास्नेही हो। रसखान का सम्बन्ध इसी धारा से है अतः इस धारा का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

भक्ति के युग के पवित्र ब्रह्मद्रव की धारा को पार कर जब हिन्दी के कवियों ने रीति के सामने की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई तो हरे-हरे लता-कुंजों कदम्ब के घने वृक्षों तथा हरियाली से भरे कूलों वाली निर्मल प्रेम की धारा ने उनके मन को अपनी ओर आकर्षित कर लिया, फिर क्या था वहाँ उनका मन श्याम हो समाया यमुना यमुन बस तरंग में कवियों के लिए कविता का एक नया सुन्दर मार्ग मिल गया। यहाँ कविता की शैली में एक

नूतन परम्परा का आविष्कार हुआ। आगे चलकर इस नवीन परम्परा को रीतिकाल के नाम से अभिहित किया गया।

हिन्दी साहित्य का यह रीतिकाल सभी दृष्टियो से ऊंचा और आदर्श माना जाता है। इस युग मे कविता करने की एक ऐसी प्रणाली बन गई, जिसका अवलम्ब सभी परवर्ती कवियो ने लिया। सच पूछा जाए तो भाषा, शैली और विषय तीनो दृष्टियो से यह काल एक एसा राजमार्ग बना, जिस पर चलकर तत्कालीन कवियो को कविता करने मे विशेष सुविधाएँ मिली। इस युग में कविता-पद्धति के हम दो विभिन्न रूप देखते हैं।

एक रीतियुक्त और दूसरा रीतिमुक्त। रीतियुक्त कवियो ने काव्य के लक्षण ग्रन्थो के आधार पर कविताएँ लिखी पर रीतिमुक्त कवियो ने स्वतन्त्र रूप से अपनी रचनाएँ उपस्थित की। इन कवियो म से प्रमुख कवि घनानन्द थे। सच पूछा जाए तो इन कवियो की स्थिति रीतिकाल मे उसी प्रकार की थी जिस प्रकार कमल की स्थिति जल मे होती है। सूक्ष्म रूप स इनके काव्य का अध्ययन करने से इस बात की प्रामाणिकता स्पष्ट हो जाती है।

रीतिकालीन कविता का राजमार्ग आद्योपान्त शृ गार रस से अभिसिंचित है, इसमे सभवत तो किसीको भी सन्देह नही पर रीतिमुक्त कवियो ने इस पथ पर जहाँ तक सचरण किया भक्ति के, अगर, धूप, चन्दन से उसे पवित्र कर दिया। इनकी कविता कवल शृ गार की वशी ध्वनि ही नही, अपितु भक्ति की खन्जडी भी मुखरित सुनाई पडती है। इन्होने शृ गार के साथ भक्ति का मिश्रण करके बिहारी के 'श्याम हरित द्युति होय' से कुछ कम कमाल नही किया। दो शब्दो म यदि हम रीतिमुक्त कवियो को रीति परम्परावादी कवियो मे भक्त कवि मान लें तो अधिक युक्तिसगत होगा। इस परम्परा के अन्तर्गत घनानन्द, बोधा, आलम, निवाज, ठाकुर आदि प्रमुख है। इस धारा के कवियो के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ या समान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं —

१. काव्य रचना का प्रेरणा स्रोत निजी जीवन —यद्यपि इन कवियो मे से कुछ का सबध विभिन्न राजाओ के दरबार से भी रहा। किन्तु फिर भी इन्होंने केवल अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के

लिए काव्य-रचना नही की। इनकी काव्य-रचना का प्रेरणा स्रोत इनका वैयक्तिक जीवन ही था। इन्होने अपने जीवन में प्रेम और विरह की ऐसी अनुभूतियाँ प्राप्त की जिन्होंने इनको काव्य-रचना के लिए विवश कर दिया। यह कविता नही लिखते थे, अपितु कविता स्वत ही इनकी अनुभूतियो से प्रेरित होकर उच्छ्वसित हो जाती थी। घनानन्द ने लिखा है—

> "लोग है लागि कवित्त बनावत,
> मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।"

इसी प्रकार इस धारा के अन्य कवियो ने भी प्रयत्नपूर्वक कविता नहीं लिखी, अपितु उसमे उनकी भावनाओ के सहज स्वाभाविक उद्‌गार हैं। इनके बहुत से समकालीन कवि रीति के लक्षणो को ध्यान मे रखकर कविता करते थे, जो इन्हे पसन्द न थी।

ठाकुर ने एस कवियो की आलोचना करते हुए लिखा है—

> "सीखि लीनो मीन मृग खजन, कमल नयन,
> सीखि लीनो जस और प्रताप को कहानो है।"

इससे स्पष्ट है कि इस धारा के कवियो ने कविता के वास्तविक महत्व को समझा था। यही कारण है कि इनकी कविता मे बाह्य शरीर के चित्रण के स्थान पर हृदय की सच्ची पुकार मिलती है।

२ **स्वच्छन्द प्रेम**—जो प्रेम समाज की मर्यादाओ के प्रतिकूल हो, उसे स्वच्छन्द प्रेम का नाम दिया जाता है। हिन्दी के इन कवियो का प्रेम भी स्वच्छन्द प्रेम की कोटि म आता है। इन कवियों ने जाति, समाज और धर्म की अनुयायिनी की। घनानन्द की सुजान, बोधा की सुभान, आलम की शेख, आदि नायिकाएँ जाति की मुसलमान थी। ऐसी स्थिति मे इन कवियो को प्रेम के क्षेत्र में विविध कठिनाइयो का सामना करना पडा। मित्रो का उपहास, समाज की निन्दा और आश्रयदाताओ के विरोध का उन्हें सामना करना पडा। उन्हें जीवन मे अनेक कष्ट सहन पड़े, किन्तु फिर भी वे अपने प्रेम-मार्ग मे पीछे नही हटे। उनके प्रेम म सच्चाई और एकोन्मुखता के दर्शन होते हैं। बोधा के शब्दो मे व अपनी प्रेयसी के लिए ससार के वैभव को ठुकराने के लिए सहर्ष प्रस्तुत हैं—

> "एक सुभान के आनन पे, कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
> जानि मिले तो जहान मिले, नहिं जान मिले तो जहान कहाँ को॥"

प्रेम की इसी अनन्यता के कारण इनके शृंगार वर्णन मे स्वच्छता, पवित्रता और गंभीरता मिलती है जिसका रीतिबद्ध कवियो मे अभाव मिलता है।

३. सौन्दर्य का सूक्ष्म रूप मे चित्रण: जहाँ रीतिबद्ध कवियो ने अपने काव्य मे नारी के स्थूल अंगों की नाप-जोख की है वहाँ इन्होंने अपनी प्रेयसियों के सौन्दर्य का वर्णन अत्यंत सूक्ष्म रूप में किया है। वह उनके नख-शिख का वर्णन न करके उसके स्थान पर सौन्दर्य की अनुभूतिपूर्ण झलक प्रस्तुत करते है। घनानन्द के अनुसार—

'अंग अंग तरंग उठै द्युति की
परि है मनु रूप अबै घर च्वै।''

अर्थात् नायिका के प्रत्येक अंग से सौन्दर्य की लहरें उठ रही हैं। अभी इसका रूप धरती पर चू पड़ेगा। इसी भाँति वे स्थूल विशेषताओं के स्थान पर सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण करते हैं। नायिका के होंठो की लाली की अपेक्षा इन्हें उसकी मुस्कराहट अधिक आकर्षित करती है। देखिए—

"छवि को सदन, गोरो बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मृदु मीठी मुस्कयानि मे।"

उसकी मीठी मुस्कराहट मे रस टपक रहा है। यह वाक्य हमे छायावादी सौन्दर्य पद्धति का स्मरण कराता है। यहाँ 'मीठी' का प्रयोग विशेषण विपर्यय के रूप में हुआ है जो कि छायावाद की विशेषता मानी जाती है। इसी प्रकार अन्य कवियो ने भी सौन्दर्य का अंकन सूक्ष्म रूप मे ही किया है।

४. शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का चित्रण— स्वच्छन्द धारा के कवियो की विरह और मिलन दोनो मे प्रेमियो के हृदय के अन्त.स्थो को उद्घाटित करने की ही लगी रहती है। वैसे तो इन्होंने शृंगार के दोनों स्वरूपों का चित्रण किया है, परन्तु इनकी मनोवृत्ति वियोग-पक्ष मे अधिक रमी है। प्रेम को ये लोग आन्तरिक और गोपनीय वस्तु मानते है। रीति मार्गीय कवियो की प्रेम-वक्रता के विरुद्ध ये लोग तो यह मानते हैं—

"अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेक सयानप बाँध नही।"

परन्तु सयोग में बाहरी जगत की प्रधानता होती है और उस समय कवि की अन्तर-वृत्ति भी बहिर्मुखी होती है। ऐसी स्थिति मे प्रेम की सघनता व तर-

नता अभिव्यक्त नहा हो पाती । वियोग प्रेम कवि को दृष्टि अन्तर्मुखी होता है । वह प्रेमानुभूति का स्वय प्रेमी बनकर प्रकट करता है । अत उसकी विरह उक्तियाँ हृदय के अन्तस्तल से सच्चे प्रकार से प्रकट होती है । वह प्रेम की अतल गहराइयो तक बढने का आतुर रहता है । वियोग की अमिट प्यास हृदय को सदा द्रवित रखती है । विरह में अनुभूति का स्वरूप अधिक तीव्र होता है । अत इनकी विरह विषयक धारणा अधिक विलक्षण है । वस्तुत इनकी प्रेम तृषा सदा बढ्ती ही रहती है । इनमे विरह का मार्मिक चित्रण है और नित्रा प्रेम की पीर का प्रदर्शन सच्चे रूप मे मिलता है ।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन कवियो को सूफियो से प्रभावित माना है । इनका यह विश्वास है कि इनके काव्य मे वर्णित प्रेम-पीर फारसी काव्य धारा का प्रभाव है जो कि सूफियो के माध्यम मे आया है । उनके ही शब्दो मे इन स्वच्छन्द कवियो ने फारसी का व्यगत वेदना की निवृत्ति के साथ इस प्रेम-पीर का स्वागत किया । इनकी रचना मे वियोग के आधिक्य का कारण यही है । लौकिक पक्ष मे इनका विरह निवेदन फारसी काव्य की वेदना की विवृत्ति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियो की प्रेम-पीर मे । रीतिमुक्त कवियो ने विरह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नही किया है । वह नायिका को रीतिबद्ध कवियो की तरह इतनी जलती हुई नहीं दिखाता कि 'उस पर गुलाब जल की शीशी औंधा दी जाए तो वह भाप बनकर उड जाएगी ।' परन्तु रीतिमुक्त कवि इन सब अन्तर्दशाओं का चित्रण आन्तरिक शैली में करता है ।

इन्होने कृष्ण के सगुण साकार रूप को अपने काव्य का विषय बनाया है अत इन्होने कृष्ण और राधा के सयोग पक्ष के प्रेम की भी बडी मनोहारी और मार्मिक झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं । इनका प्रेम वासना-कलित न होकर स्वच्छ निरकार प्रदर्शन है । सक्षेप मे कहा जा सकता है कि इनका प्रेम बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी अधिक है । उसमें हृदय की मार्मिक सूक्ष्म अनुभूतियों और सौन्दर्य की महान से महान बारीकियाँ हैं । वस्तुत ये प्रेम हृदय और सौन्दर्य के सच्चे पारखी हैं ।

५ भक्ति का स्वरूप—इन कवियो ने राधा और कृष्ण की लीलाओ का उन्मुक्त गान किया है किन्तु इतने भर से ही कृष्णभक्त कवि सूरदास

आदि की कोटि में नहीं रखा जा सकता। क्योंकि लगभग सभी रीतिकालीन कवियों का यह कथन है—

आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमरिन को बहानो है।"

इनको शुद्ध रूप से भक्त कवि नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनका प्रमुख उद्देश्य शृंगार-वर्णन था। इसीलिए इन्होंने भगवद् भक्ति की ओर से अश्लील एवं असंस्कृत चित्र प्रस्तुत किए। आचार्य विश्वनाथप्रसाद के अनुसार पहले इनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है। दूसरे रूप में इन्होंने स्वच्छन्द रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र मे पदार्पण किया। तीसरे मे इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गई।"

आगे वह लिखते हैं कि यदि भक्त कहे बिना सतोष न मिले तो इन्हें उन्मुक्त भक्त कवि मान लिया जा सकता है। इनका भक्त कवियो से पार्थक्य इनकी स्वच्छन्द प्रकृति द्वारा ही हो जाता है। दूसरा इन्होने भक्त कवियो द्वारा त्याज्य विषयो को "प्रिय की वास्तविक कठोरता" आदि का वर्णन विस्तार से किया है। इनकी भक्ति मे साम्प्रदायिकता एव संकीर्णता की भावना नही है। इन्होने अनेक देवी-देवताओ के प्रति उदार आस्था प्रदर्शित की है। रसखान और घनानद को ही इस भक्त कोटि मे रखा जा सकता है।

६. **प्रकृति चित्रण**—प्रायः सभी कवियों ने हिन्दी-साहित्य के प्रथम तीन कालो मे प्रकृति-चित्रण को उपेक्षित रखा है। परन्तु रीतिकाल मे दृष्टि शृंगारपरक होने के कारण शृंगारिक चित्रण मे अधिक रमी इसलिए उनकी दृष्टि भी इसके वर्णन से दूर हट गई। रीतिकाल मे प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप मे हुआ है। सेनापति की रचना से प्रकृति कहीं-कहीं उद्दीपन के बंधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। विरह वारीश मे बोधा मे प्रकृति वर्णन कुछ तो शास्त्र बद्ध और कुछ स्वच्छन्द रीतिबद्ध रहा है।

७. **लोक-जीवन का ग्रहण**—स्वच्छन्दमार्गी कवियो ने लोक-जीवन के मंगल मोद पक्ष को भी लिया है। प्रसिद्ध पर्व त्यौहारो पर रीतिमुक्त शैली मे उत्तम रचनाएं की हैं। अखतीज, हरियाली तीज, झूला, वट पूजन आदि अनेक त्यौहार ठाकुर के काव्य मे वर्णित हुए हैं।

८. **काव्य पद्धति**—स्वच्छन्द कवियो ने रीति का निर्वाह आरम्भ मे स्वीकृत

करके बाद मे त्याग दिया। रीतियुक्त, रीतिबद्ध सभी कवियो मे नेत्र व्यापा सम्बन्धी सभी उक्तियाँ समान रूप से पाई जाती हैं। राजाश्रित कवि ने तो उर्दू या फारसी के काव्यरचना के रकीबो और माशूको की जोड़-तोड़ मे खण्डित को पेश किया। यहाँ पर ये कुछ रीतिबद्ध कवियो के समीप आ जाते हैं स्वच्छन्द कवियो ने खंडिता नायिका के द्योतक चिन्हो के ब्योरे प्रस्तुत न करके उसके हृदय को दिखलाने का प्रयत्न किया। सुरतांत या विपरीत रति के कुत्सित चित्र प्राय इन कवियो मे नही मिलते है। जो मिलते हैं वह भी उस समय के जब इन कवियो ने इस मैदान प्रवेश किया था। बोधा मे कही-कही बाजारू ढंग अवश्य मिलता है।

९. मुक्तक शैली — वैसे तो समूचे रीतिकाल मे मुक्तक शैली की ही प्रधानता पाई जाती है। परन्तु फिर भी कभी कभी फुटकल रूप म प्रबन्ध काव्यों की रचना होती रही। आलम ने "माधवानल' 'कामकदला' 'सुदामा चरित्र' और श्याम स्नेही, बोधा ने 'विरह वारीश' नामक प्रबन्ध काव्य प्रस्तुत किए।

१०. छन्दालकार —इस धारा म अधिकाशत कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छन्दो का प्रयोग किया गया। यद्यपि बीच बीच म छप्पय, व र हरिपद आदि छन्दो का प्रयोग किया गया है किन्तु सभी रीति-कवियो की वृत्ति अधिकतर दोहा-सवैया और कवित्त मे रमी है। रीतिमुक्त धारा के कवियो ने अलकारो का प्रयोग अपन प्रकृत रूप म किया है। इनके यहाँ अल कार साधन रूप म आए हैं न कि साध्य क रूप म।

११ भाषा :—भाषा का परिमार्जन और व्यवस्थापन भी इन स्वच्छन्द कवियो के द्वारा ही हुआ है। क्योकि रीतिबद्ध कवियो के पास इतना अवकाश होते हुए भी उन्होंने भाषा को व्यवस्थित करने का प्रयास नही किया। मति-राम और पद्माकर को छोड़कर दूसरे कविया मे भाषा की सफाई के दर्शन नही होते। भूषण और देव आदि ने स्वेच्छा से शब्दो को तोडा मरोडा है। इनकी भाषा मे प्रादेशिकता की पुट भी बनी रही। परन्तु रीतिमुक्त कवियो म न तो भाषा के अग भग की प्रवृत्ति और न ही प्रादेशिकता का ही पुट है। रसखान और घनानन्द ने तो व्रज भाषा का ऐसा प्रयोग किया है जिसमे व्रज भाषा

का साहित्यिक परिनिष्ठित रूप लोकोक्ति और मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि इनकी कविता सच्ची अनुभूति से पूर्ण है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों की दृष्टि से इनका काव्य प्रौढ़ है। यदि हम इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि घनानन्द को हिन्दी शृंगारी कवियों में सर्वश्रेष्ठ मानें तो अनुचित नहीं होगा।

: २ :

रसखान का जीवन-वृत्त

रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्यधारा के विशिष्ट कवि रसखान का न तो जीवन-वृत्त ही निर्विवाद है और न इनकी रचनाएँ। इनके जीवन-वृत्त को जानने के लिए जो सामग्री उपलब्ध है, उसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—अन्तःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य। अन्तःसाक्ष्य में वे तथ्य होते हैं जो सम्बद्ध कवि की रचना अथवा रचनाओं में मिलते हैं। बाह्य साक्ष्य में अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित तथ्यों का विवेचन होता है। इन्हीं दो आधारों पर हम यहाँ पर रसखान का जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर रहे हैं।

अन्तःसाक्ष्य—जहाँ तक अंतःसाक्ष्य का सम्बन्ध है, अन्य भक्त कवियों की भाँति रसखान भी अपने विषय में प्रायः मौन रहे, चाहे शालीनतावश अथवा राजनैतिक कारणों से। प्रेम-वाटिका में अपने विषय में इन्होंने निम्नलिखित केवल चार दोहे लिखे हैं —

१. देखि गदर हित-साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
   छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छोरि रसखान॥
२. प्रेम-निकेतन श्रीबनहिं, आइ गोवर्धन-धाम।
   लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगल-सरूप ललाम॥
३. तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी मान।
   प्रेमदेव की छविहि लखि, भए मियाँ रसखान॥
४. बिधु सागर रस इन्दु सुभ, बरस सरस रसखान।
   प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान॥

इन दोहों से यह ज्ञात होता है कि जब दिल्ली में शासन-विप्लव के कारण गदर हुआ और दिल्ली नगर श्मशान की भाँति कुरूप एवं भयानक हो गया तो रसखान शाही वंश का गुरुत्व गर्व छोड़कर, तथा अपनी मानिनी प्रिया मान की चिन्ता न करते हुए ब्रज में आए, जहाँ इन्होंने संवत् १६७१ में प्रेमवाटिका की रचना की।

यह कथन समस्या का सरल समाधान नहीं, वरन् समस्या को और उलझा देने वाला है। इस कथन से उपस्थित समस्यायें ये हैं—

१. रसखान का अभिप्राय किस गदर से है? यह गदर कब हुआ?

२ रसखान ब्रज में कब आये?

३. रसखान की प्रेयसी कौन थी जिसे ये ठुकराकर ब्रज आये?

४ 'प्रेमवाटिका' की रचना करते समय रसखान की आयु क्या थी?

हिन्दी-विद्वान् उपर्युक्त प्रथम दो प्रश्नों को तो प्राय उपेक्षित कर गए हैं। 'प्रेमवाटिका' के रचना-काल को सर्वाधिक महत्त्व देकर इसके आधार पर रसखान के जो विभिन्न काल निर्णीत किए गए हैं, वे इस प्रकार हैं—

१ 'शिवसिंह-सरोज' के लेखक शिवसिंह ने इनका जन्म संवत् १६३० माना है।

२. 'शिवसिंह-सरोज' के मत को आधार मानकर ही बाबू राधाकृष्णदास ने 'सूरसागर' की भूमिका में रसखान का जन्म संवत् १६३१ स्वीकार किया है।

मकर रूप से फैल गया, जिसकी लपेट में सूरवंश के पठानों का सर्वनाश हो गया था। इस लगातार दो वर्षों के युद्ध के कारण दिल्ली नगर श्मशानवत् हो गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि रसखान ने संवत् १६१२ की घटना से त्रस्त होकर अपने प्राण रक्षणार्थ या संसार से एकदम विरक्त होकर दिल्ली छोड़ व्रजवास किया। इस तथ्य में सन्देह का कोई कारण नहीं है।'

इस आधार पर कहा जा सकता है कि रसखान का जन्म संवत् १५९० के आसपास हुआ होगा, क्योंकि दिल्ली छोड़ते समय इनकी अवस्था बीस-बाईस वर्ष की होगी।

रसखान व्रज में कब आये? यहाँ पर यह प्रश्न भी विचारणीय है। डॉ० याज्ञिक के अनुसार वे संवत् १६१२ में दिल्ली छोड़कर तुरंत व्रज में आ गये थे, परन्तु तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए यह मत शुद्ध प्रतीत नहीं होता। 'मूल गुसाईं चरित' के अनुसार रसखान ने संवत् १६३४ से १६३७ तक अर्थात् तीन वर्ष तक यमुना तट पर राम-कथा का श्रवण किया। इसका अभिप्राय यह है कि इस समय तक इनमें कृष्णभक्ति का प्रभाव प्रस्फुटित नहीं हुआ था। रसखान के दीक्षा-गुरु श्री विट्ठलनाथ जी का गोलोकवास-काल संवत् १६४२ है। इसका अर्थ यह हुआ कि संवत् १६३७ से १६४२ के अन्तराल में ही रसखान कृष्णभक्ति में दीक्षित हुए और तभी ये व्रज में आकर बसे।

जिस मानवती के मान की उपेक्षा करके रसखान व्रज में आकर बसे, यह मानिनी कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में रसखान से सम्बद्ध सभी साधन मौन हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह मानवती रसखान की कोई प्रेमिका होगी। केवल अनुमान का आधार लेकर इस विषय में इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

रसखान का जन्म-समय निर्धारित कर लेने के उपरांत अब यह कहना कठिन नहीं कि जब इन्होंने 'प्रेमवाटिका' की रचना की, तब इनकी आयु ८१ वर्ष की थी, अर्थात् ये काफी लम्बी आयु तक जीवित रहे। अतः अनेक विद्वानों की यह मान्यता भी असंगत प्रतीत नहीं होती कि ये लगभग ८५ वर्ष तक जीवित रहे। इस आधार पर इनका देहावसान संवत् १६७५ के लगभग माना जा सकता है।

बाह्य साक्ष्य

रसखान से सम्बधित बाह्य साक्ष्य के आधार पर तीन कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, मूल गुसाईं चरित और भक्तमाल।

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—इस कृति म वैष्णव-सम्प्रदाय के २५२ प्रमुख कवियो का परिचय है यद्यपि यह परिचय पूर्ण तथा इतिहास सगत नही है, फिर भी उसे एकदम निराधार अथवा काल्पनिक नहीं कहा जा सकता। इसम ऐसे अनेक तथ्य मिलते हैं जिससे सम्बद्ध कवि के विषय म बहुत कुछ ज्ञातव्य बातो का बोध हो जाता है। इस कृति की २१८ वी वार्ता रसखान से सम्बधित है, जो इस प्रकार है—

'अब श्री गुसाईं जी के सेवक रसखान पठान दिल्ली म रहत तिनकी वार्ता। सो दिल्ली म एक साहूकार रहतो हतो। सो वा साहूकार को बेटा बहुत सुन्दर हतो। वा छोरा सो रसखान को मन बहुत लग गयो। वाही के पाछे फिरयो करै और वाको झूँठो खाय और आठ पहर वाही की नौकरी करै। पगार कछू लेवे नहीं दिन रात वाही म आसक्त रहै। दूसरे बड़ी जात के रसखान की निन्दा बहुत बहुत करते हते। पर रसखान काहू की सुनते नही हते और आठ पहर वा साहूकार के बेटा म चित्त लग्यो रहतो। एक दिना चार वैस्नव मिलके भगवत-वार्ता करते हते। करते करते ऐसी बात निकसी जो प्रभु में एसो चित्त लगावना जैसो रसखान को चित्त साहूकार के बेटा म लग्यो है। इतने मे रसखान वा रस्ता निकस्ये, तिनने यह बात सुनी। तब रसखान ने कही जो तुम मेरी कहा बात करो हो। तब वैस्नव ने जो बात हती सो कही। तब रसखान बोले प्रभु को सरूप दीखै तो चित्त लगाइये। तब वा वैस्नव न श्रीनाथ जी को चित्र दिखायो। सो देखत ही रसखान ने वो चित्र ल लियो, और मन मे ऐसो सकल्प करयो जो ऐसो सरूप देखनो जब अन्न खाना और वहाँ सूँ घोडा पै बैठ कें एक रात म वृन्दावन आयो और सबरे दिन सब मदिरन म भेष बदल कें फिरयो और सब मदिरन म दरसन किये पर वैसे दरसन नही भये। तब गुपालपुर म गया और भेस बदलके श्री नाथ जी के दरसन करने कूँ गयो। तब सिंघपौरिया न भगवदिच्छा सूँ वाके चिन्ह बड़ी जातवारे के पहिचाने। तब वाकू धक्का मार निकास दिया,

भीतर पैठन न दियो। सो जइकें गोविंदकुंड पर रह्यो। तीन दिन ताईं परयो रह्यो। खायवे पीवे की कछू अपेक्षा राखी नाहीं। तब श्रीनाथ जी ने जानी यह जीव दैवी है और शुद्ध है, और सात्विक है और मेरो भक्त है, या कूँ दरसन देऊँ तो ठीक है। तब श्रीनाथ जी ने दरसन दिए। तब वो उठिकें श्रीनाथ जी कूँ पकरिवे दौर्‌या। सो श्रीनाथ जी भाज गये। फेर श्रीनाथ जी ने गुसाईं जी सूं कही, ये जीव दैवी है और म्लेच्छ योनि कूँ पायो है, जासूं याके ऊपर कृपा करो, या कूँ सरन लेओ। जहाँ ताईं तुम्हारो सम्बंध जीव कूँ नाहीं होवे तहाँ ताईं मैं जीव कूँ स्पर्श नाही करत हूँ और वाके हाथ को खाऊँ नाहीं, जासूं अब याको अंगीकार करो। तब श्री गुसाईं जी श्रीनाथ जी के वचन सुनिकें गोविंद कुंड पें पधारे और वाकूं नाम सुनायो और साक्षात् श्रीनाथ जी के दरसन श्री गुसाईं जी के सरूप में वाकूँ भए। तब श्री गुसाईं जी विनकूँ संग लै पधारे और उत्थापन के दरसन कराए। महाप्रसाद लिवायो। तब रसखान जी श्रीनाथ जी के सरूप में आसक्त भए। तब रसखान ने अनेक कीर्तन और कविता और दोहा बहुत प्रकार के बनाये। जैसे-जैसे लीला के दरसन विनकूँ भए, वैसे ही बरनन किये। सो वे रसखान श्री गुसाईं जी के ऐसे कृपापात्र हते जिनकूँ चित्र के दरसन करत मात्र ही संसार सूं चित्त खिंच के श्रीनाथ जी में लग्यो। इनके भाग्य की कहा बड़ाई करनी। वार्ता सम्पूर्ण।'

२. मूल गुसाईं चरित — इस कृति के लेखक बाबा वेणीमाधवदास हैं। इसमें बताया गया है कि जब 'रामचरितमानस' की रचना पूर्ण हो गई तो सबसे पहले उसे मिथिला के रूपारण्य स्वामी ने अयोध्या में सुना। तत्पश्चात् स्वामी नंदलाल के शिष्य दयालदास (अथवा दलालदास) ने 'मानस' की प्रतिलिपि करके उसे यमुना-तट पर अपने गुरु नंदलाल और रसखान को सुनाया—

'मिथिला के सुमंत सुजान हते। मिथिलाधिप भाव पगेर हते।।
सुचि नाम रुपारुन स्वामी जुतो। तिहिं औसर औध में आयो हतो।।
प्रथमैं यह मानस तेई सुने। तिनही अधिकारि गुसाईं गुने।।
स्वामी नंद (सु) लाल को सिप्य पुनी। तिसु नाम दलाल सुदास गुनी।।
लिखि कें सोइ पोथी स्वठाम गयो। गुरु के ढिग जाइ सुनाय दयो।।
जमुना-तट पै त्रय वत्सर लौं। रसखानहिं जाइ सुनावत भौ।।

यद्यपि इस कथा का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु यह जरूर मानना है कि मुगल राजाओं ने कंठी माला धारण पर रोक लगाई हुई थी। यह रोक गोस्वामी गोकुलनाथ जी के प्रयास से जहाँगीर ने समाप्त की। इस विषय पर तत्कालीन अनेक कवियों की उक्तियाँ मिलती हैं।

१. 'जयति बिट्ठल सुवन, प्रगट वल्लभ बली,
प्रबल पन करि तिलक माल राखी।'

—हरिराम जी

२ 'माला तिलक न तजी कबहू, परी जदपि पुकार।'

—कल्याणदास

३. 'बिट्ठलेस के सपूत गोकुलेस के हुलास,
माल राखि सो कलेस काहु म न राख्यो है।'

—प्रसिद्ध कवि

प्रसिद्ध कवि ने तो इस विषय पर एक प्रबंधकाव्य की ही रचना कर डाली थी।

इन उक्तियों से यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि तत्कालीन मुगल उस मुगल को हीन दृष्टि से देखते थे जो हिन्दुओं की भाँति माला तिलक धारण करता था। यह भी संभव है, हिन्दू भी सार्वजनिक स्थानों पर तिलक और माला धारण करके न जा सकते हैं। इसीलिए तो गोस्वामी गोकुलनाथ जी को उक्त आज्ञा को हटवाने के लिए काफी प्रयत्न करना पड़ा। इस पृष्ठभूमि में यह अनुमान लगाना भी असंगत नहीं है कि कंठी धारण करने के कारण रसखान को भी अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ा होगा। वे यातनायें चाहे राजा की ओर से हों, या कट्टर पंथी मुसलमानों की ओर से।

'भक्तमाल प्रदीपन' में रसखान से सम्बद्ध जहाँ अनेक अन्य कथाओं का उल्लेख है, वहाँ यह कंठी वाली वार्ता भी पाई जाती है। 'भक्तमाल प्रदीपन' की कथा इस प्रकार है—

'रसखान जी परम भक्त भगवत के हुए। पहिले मुसलमान थे। बगरज तवाफ (परिक्रमा की इच्छा से) काब (मक्का स्थित एक मंदिर जिसे मुसलमान ईश्वर का घर मानते हैं।) जो बिंदरावन में पहुँचे तो पहले जम्मो के

सवाबो (पुण्यकर्मों का फल) ने जहूर (प्रत्यक्षीकरण) किया। यानी (अर्थात्) व्रिज चंद महाराज ने उस सुरूप सोभायमान व्रिज सुंदर से कि मोर मुकुट सर पर, बनमाला पहने हुए, जेवरात (आभूषण) हरेक उज्व (प्रत्येक अंग) में विराजमान, फूल जा बजा (जहाँ तहाँ) गुँथे हुए, लिबास (पहिचान) जक बर्क (तड़क भड़क वाला) का शोभित, एक हाथ मे मुरली और दूसरे हाथ में छड़ी, गो चराते हैं दरसन हुए। बमूजिब (अनुसार) देखने इस रूप माधुरी और दिलरुबा (चितचोर प्रेमपात्र) के कुछ हालत (दशा) और ही हो गई। इस रूप मे महव (तल्लीन) होकर बेहोश (मूर्च्छित) जमीन पर गिर पड़े। मुरशिद (धर्मगुरु, पीर) हमराह (सहपथी) था। गश (मूर्च्छा) समझकर दरपए इलाज (चिकित्सा का इच्छुक) हुआ और पुकारा कि आँखें खोलो। रसखान जी ने कहा कि उनको उसी वक्त (समय) सब उलूम (विद्याएँ) व मतालिब (अर्थ समूह व्याख्याएं) जाहिर (व्यक्त) व बातिन (अंतर्गत, अंतरंग) व शायरी से बहरूर (काव्यकला-सम्पन्न) हो गया था। कवित्त मे उस मनोहर मूर्ति का, जो देखी थी, बयान (वर्णन) करके आखिर (अंत में) कहा कि आँखें क्या खोलूं, वह मूर्ति दिल में बस गई है। मुरशिद (पीर) ने फिर कहा कि काबे (मक्का स्थित एक मंदिर) को चलो। रसखान जी ने जवाब दिया कि कैसा काबा और कैसा किब्ला (मक्का का वह स्थान जहाँ काबा पत्थर स्थापित है और जिसकी ओर मुँह कर नमाज पढ़ी जाती है) जो है सो सब यहाँ मौजूद (उपलब्ध) है। अब मैं कहाँ जाता हूँ? व्रिज का हो चुका। और एक कवित्त में बयान (वर्णन) किया कि अगर, आदमी जिस्म (शरीर) मुझको मिलेगा तो व्रिज के ग्वाल और लोगों मे रहूँगा और अगर चरिन्द (पशु) हुआ तो नंद बाबा की गौ बछड़ा में और अगर संग (पत्थर) हुआ तो गिर्राज (गिरिराज गोवर्धन) का और अगर परंद हुआ तो व्रिज के दरख्तों (वृक्षों) का। मुरशिद (पीर) वो इन कलामात (वचनों) से ताज्जुब (आश्चर्य) हुआ और चाहा कि रथ पर डालकर जबरदस्ती (बल पूर्वक) ले जाऊँ। रसखान जी भाग-कर बन में जा छिपे और विरन्दावन में बास करके हजारह (सहस्रों) कवित्त विरन्दावन के, व सुभाव (स्वभाव, गुण) व शोभा प्रिया प्रियतम के तसनीफ (पुस्तक निर्माण) भेंट किए। और निवास बैसन्दी धारन किया। माला

कसीर (अधिक, प्रचुर) पहिना करते थे। किसी ने पूछा कि दो माला ही काफी (पर्याप्त) हैं, इस कदर (अत्यधिक) कसरत (बाहुल्य, प्रचुरता) की क्या जरूरत (आवश्यकता) है? जवाब दिया कि माला अशखास मिस्ले संग को (पत्थर जैसे व्यक्तियों को) ससार समदर (सागर) से पार उतार देती है। सो जो शख्स (व्यक्ति) मिस्ल (समान) छोटे पत्थर के है, उसको तो एक-दो माला काफी (पर्याप्त) है, और मैं मिस्ल सग कला (बड़े पत्थर के समान) हूं, मुझको बहुत माला रखना वाजिब (उचित) है।

इस कथा मे कोई ऐतिहासिक तथ्य नही, केवल रसखान से सम्बद्ध अनुश्रुतियों को दोहरा दिया गया है और वह भी श्रद्धा के साथ।

भारतेन्दु जी ने अपने भक्तमाल उत्तरार्द्ध मे रसखान के साथ अन्य मुसलमान हिन्दी कवियों की ओर दृष्टिपात किया है और उनकी हिन्दी-सेवा से भाव-विभोर होकर कह उठे है—

'इन मुसलमान हरिजनन पै, कोटिन हिन्दू वारिए।'

राधाचरण गोस्वामी ने अपने 'नवभक्तमाल' मे रसखान से सम्बन्धित एक छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार है—

'दिल्ली नगर निवास, वादसा बश बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो, भरो मन प्रेम-सुधाकर।
श्री गोबरधन आइ, जबै, दरसन नहिं पाए।
टेढे मेढे वचन रचन निरभय ह्वै गाए।
तब आप आइ सु मनाइ, करि सुश्रूषा मेहमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथ साथ रसखान की।।'

गोस्वामी जी का यह विवरण नाभादासकृत 'भक्तमाल' पर ही आधारित है।

उपर्युक्त वार्ता-साहित्य से रसखान के किसी ऐतिहासिक विवरण पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश नही पडता, वरन् इनमें लेखकों की कृष्णभक्त-कवि रसखान के प्रति श्रद्धाजलियाँ भी उपलब्ध होती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इनमे वर्णित तथ्य अथवा घटनाएँ निरी काल्पनिक हैं। इनसे रसखान के विषय मे जो निष्कर्ष निकलता है, वह यही है कि इनका प्रारंभिक

प्रेम ठोस भौतिक था, किन्तु बाद मे वह ईश्वर-प्रेम में परिणत हो गया और *कृष्ण-भक्त कवियो मे रसखान का विशिष्ट स्थान है।*

जन्म स्थान

रसखान के जन्म-स्थान के विषय मे भी दो मत मिलते है। 'शिवसिंह-सरोज' मे इन्हे जिला हरदोई के पिहानी जन्म-स्थान का बताया गया है और इन्होने 'प्रेम वाटिका' मे अपना जन्म-स्थान दिल्ली बताया है—

> 'देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
> छिनहि बादसा बस की, ठसक छेदि रसखान॥'

अब यह देखना है कि इनमे कौन सा मत सगत है।

डॉ० याज्ञिक शिवसिंह-सरोजकार के मत को असगत मानते हुए लिखते है कि पिहानी की बस्ती को हुमायूँ-अकबर ने सवत् १६१२ के बाद बसाया था। इस कारण रसखान के जन्म के समय पिहानी का कोई अस्तित्व ही नही था। हाँ, रसखान का शिष्य कादिरबख्श वहाँ रहा हो इसकी सभावना हो सकती है और यह भी सभावना हो सकती है कि भूल से शिष्य के निवास-स्थान को ही गुरु का जन्म स्थान समझ लिया हो।

जहाँ तक दिल्ली का सम्बध है रसखान ने दिल्ली को अपना निवास-स्थान अवश्य बताया है, पर उसे जन्म स्थान नही बताया। अत निर्विवाद रूप से यह भी ता नही कहा जा सकता कि दिल्ली ही इनका जन्म-स्थान है, किन्तु रसखान के जीवन पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि इनका भक्त-पूर्व जीवन दिल्ली में ही बीता। इसलिए यह सभावना की जा सकती है कि इनका जन्म भी दिल्ली मे ही हुआ हागा।

निष्कर्ष

अब तक के विवेचन का निष्कर्ष यह है कि रसखान का जन्म सवत् १५९० के लगभग दिल्ली म हुआ। इनका सम्बन्ध तत्कालीन शाही वश से था, किन्तु जब शाही वश का पतन हुआ और दिल्ली उजड गई तो य सवत् १६१२ के लगभग दिल्ली को छोडकर व्रज मे आ गये और वहाँ कृष्ण-भक्ति म तल्लीन रहने लगे।

कहते हैं, कि प्रारभ मे इनका प्रेम ठोस भौतिक था, अर्थात् य एक साहूकार के लडके पर आसक्त थे, पर सयाग से इनके मन को ठेस लगी और इनका

प्रेम भगवद्प्रेम मे परिणत हो गया। दिल्ली छोडने के बाद कुछ वर्षों तक ये इधर-उधर छिपे फिरते रहे। इस दौरान मे ये तीन वर्ष तक यमुना-तट पर भी रहे और रामचरितमानस की कथा सुनते रहे। इससे इनमे हिन्दू-धर्म के प्रति आस्था का जागरण हुआ और तब नियमित रूप से ब्रज मे बसकर कृष्ण-भक्ति में तल्लीन हो गये।

इनका पहनावा वैष्णव भक्तो का सा था। ये कठियाँ बहुत पहना करते थे। इससे मुसलमानो को बडी अप्रसन्नता हुई और इन्हे मुगल बादशाह के सामने पेश किया गया। बादशाह ने पूछा—तुम इतनी सारी कंठी क्यो पहनते हो ? इन्होने उत्तर दिया कि जिस प्रकार पत्थर को नदी से पार होने के लिए लकडी का सहारा लेना पडता है, उसी प्रकार मैंने ससार-सागर से पार होने के लिए इन मालाओ को धारण कर रक्खा है।

ये जब तक जीवित रहे, पूर्णतया कृष्णभक्ति मे तल्लीन रहे और कृष्ण की लीलाओ का गान करते रहे। लगभग ८५ वर्ष की अवस्था मे, अर्थात् सवत् १६७५ के आसपास इनका देहावसान हुआ। मथुरा नगरी से लगभग ६ मील दूर दक्षिण पूर्व की ओर एक पुराने टीले पर स्थित लाल पत्थर की एक बारहदरी को इनकी समाधि बताया जाता है।

कृष्णभक्त-कवियो मे इनका विशिष्ट स्थान है।

———

३

रसखान की रचनाएँ

रसखान, अन्य कृष्णभक्त कवियों की भाँति, मूलतः भक्त थे। कविता इनका कर्म नहीं, वरन् भावाभिव्यक्ति का एक साधन मात्र था। इन्हें जब भी भावावेश हुआ, वह सवैया या कवित्त के माध्यम से फूट पड़ा। इनके छंदों की संख्या कितनी है? इस प्रश्न का निर्विवाद उत्तर देना असम्भव है। तुलसीदास जी के 'भक्तमाल प्रदीपन' के अनुसार इन्होंने सहस्रों कवित्तों की रचना की।[1] पर अब रसखान के नाम से प्राप्त होने वाले असंदिग्ध और संदिग्ध छंदों को मिलाकर कुल ३३४ छंद प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत संकलन में इन छंदों को पाँच भागों में विभाजित किया गया है—

१	सुजान रसखान	२५५ छंद
२	प्रेम वाटिका	५३ छंद
३.	दान-लीला	११ छंद
४	स्फुट-छंद	५ छंद
५	संदिग्ध छंद	१० छंद

इन भागों का क्रमशः परिचय निम्नलिखित है।

सुजान-रसखान

सुजान रसखान में संकलित छंदों का विषय कृष्ण भक्ति के विविध पहलुओं से सम्बद्ध है। इन छंदों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है—

१ भक्ति भावना, २ कृष्ण का अलौकिकत्व, ३ अनन्यभाव, ४ मिलन

१. रसखान जी भागकर बन मे जा छिपे और विरन्दाबन मे बास करके हजारह (सहस्रों) कवित बिरन्दाबन के व सुभाव (स्वभाव, गुण) व शोभा प्रिया प्रियतम के तसनीफ (पुस्तक लिखकर) भेंट किये।

५ बाललीला, ६. रूप-माधुरी, ७. प्रेम-लीला, ८. बंक विलोचन, ६ मुसकान-माधुरी, १०. कृष्ण सौन्दर्य, ११. रूप-प्रभाव, १२ कु ज-लीला, १३ नटवर-कृष्ण, १४. मुरली-प्रभाव, १५ कालिय-दमन, १६ चीर-हरण, १७ प्रमासक्ति, १६ प्रेम-बन्धन, १६. प्रम-वेदना, २० रासलीला, २१. फागलीला, २२. राधा-सौन्दर्य, २३. मानवती राधा, २४. सखी-शिक्षा, २५ संयोग-वर्णन, २६. वियोग-वर्णन, २७. सपत्न-भाव, २८. कुवलयापीड-भाव, २६. उद्धव-उपदेश, ३० ब्रज-प्रेम, ३१ गंगा-महिमा, ३२. शिव-महिमा।

१ भक्ति-भावना—यो तो रसखान के सभी छद भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं, किन्तु इस शीर्षक के अन्तर्गत रखे गये छदो की भक्ति-भावना मे एक विशेषता यह है कि इसमे कवि प्रत्यक्ष रूप से भक्त के रूप मे परिलक्षित होता है। वह कृष्ण तथा उनकी जन्मभूमि ब्रज के प्रति अनन्य प्रेम प्रदर्शित करता हुआ कहता है कि यदि मुझे मनुष्य की योनि मिले तो मैं वही मनुष्य बन सकूँ जो ब्रज के गोकुल गाँव मे निवास कर सकूँ, यदि पशु-योनि मिले तो नन्द की गाय बनूँ, यदि पत्थर का जन्म मिले तो गोवर्धन पर्वत की शिला बनूँ और यदि पक्षी की योनि मिले तो यमुना-तट पर उगे हुए कदम्ब वृक्ष की डालो पर बैठकर सानन्द चहचहाता रहूँ। रसखान अपने शारीरिक अगो की सार्थकता भी इसी मे मानते हैं कि वे ईश्वरोनन्मुख हो। इसीलिए वे रसना की सार्थकता कृष्ण-जाप मे, हाथो की कु ज-कुटीरो की सफाई करने मे ही मानते है। अपने आराध्य देव कृष्ण की जन्मभूमि ब्रज से इन्हें इतना प्रेम है कि उसके एक-एक कण पर ये समस्त सिद्धियो और समृद्धियो को न्योछावर करने की क्षमता रखते है। भक्त को अपने भगवान पर दृढ एव अटल विश्वास होता है। उसकी सरक्षता प्राप्त करके वह स्वय को हर प्रकार के सकटो से मुक्त मानता है। इसीलिए तो अपने माखन चाखनहारे के सरक्षण मे ये किसी चुगल और लबार की चिन्ता नही करते। रसखान अपने प्रिय के रूप मे उसी प्रकार एकाकार हैं जिस प्रकार गोपियाँ थी। उसके प्राण सदैव राधा और कृष्ण के सरस एव नूतन प्रेम से सपृक्त है।

२. कृष्ण का अलौकिकत्व—कृष्णभक्त-कवियो ने कृष्ण को साकार मानकर उसके माधुर्य रूप की भक्ति की है, पर वे अपनी कविताओ मे यथावसर

उसके अलौकिकत्व का प्रदर्शन भी करते रहे हैं। कृष्णकाव्य की यह प्रमुख विशेषता है। सूरदास ने विस्तारपूर्वक कृष्ण के अलौकिकत्व का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए यह पद प्रस्तुत है—

चरन गहे अंगुठा मुख मेलत।
नंद घरनि गावति हलरावति पलना परिहरि खेलत।
जे चरनारविंद श्री भूषन उर तें नेकु न टारति।
देखौं धौं का रस चरननि मैं मुख मेलत करि आरति।
सो रस है मोहूँ कौं दुरलभ तातैं लेत सवाद।
उछरत सिंधु धराधर काँपत कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे हरि पीवत जब पाइ।
बढ्यौ वृच्छ बट सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात।
करुना करी छाँड़ि पग दीन्हौ जानि सुरन मन संस।
सूरदास प्रभु असुर निकंदन दुष्टनि कैं उर गंस।।

स्वच्छंद काव्यधारा के कवि भी इस प्रवृत्ति से उन्मुक्त नहीं हो सके हैं। घनानंद कृष्ण के अलौकिकत्व का स्पष्ट संकेत देते हुए लिखते हैं—

तोहि सब गावैं एक तोही कौं बतावैं वेद
पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल व्यापी सदा अंतरजामी उदार
जगत में नाव जान राय रह्यौ परि रे।
एते गुन लाय हाय छाय घनआनंद यौं
कैंधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं विरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं
दई गयौ तू हूँ निरदई ओर ढरि रे।।

रसखान ने भी इस प्रवृत्ति का पालन किया है। कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करने वाले इनके आठ छंद उपलब्ध होते हैं जिनमें बताया गया है कि जिस कृष्ण का जप शंकर जैसे महादेव करते हैं जिसका ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म में वृद्धि करते हैं जिस पर देव किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणों को न्यौछावर करके सजीवता प्राप्त

करती हैं, जिसके गुणो का गान शेषनाग, गणेश, शिव, सूर्य, इन्द्र आदि निरन्तर करते रहते है, वेद जिसे अनादि, अनन्त, अखड, अछेद्य, अभेद्य आदि विशेषणो से विभूषित करते हैं, योगी, यति, तपस्वी जिसके लिए निरन्तर समाधि लगाये रहते है, उसी कृष्ण को अहीर की छोकरियाँ थोडी-सी छाछ के लिए नचाती हैं। इस प्रकार रसखान ने पूर्ण स्पष्टता के साथ कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन किया है।

३ अनन्य भाव—भक्त का अपने आराध्यदेव के प्रति अनन्य भाव होता है, अर्थात् उसके लिए उसका आराध्य ही सर्वोपरि तथा सर्वश्रेष्ठ है। उसकी इच्छा केवल उसे ही प्राप्त करने की होती है। उसके अतिरिक्त अन्य सारी वस्तुएँ उसकी दृष्टि मे नगण्य हैं, भले ही वे कितने ही महत्त्व की क्यो न हो। सूरदास ने भी कृष्ण के प्रति अपने अनन्य भाव की भक्ति को व्यक्त करते हुए कहा है कि कृष्ण को छोडकर अन्य देवो की भक्ति करना कामधेनु को छोडकर छेरी को दुहना है, अथवा परम गगा को छोडकर जलप्राप्ति के लिए अन्यत्र कूप खोदना है। रसखान ने भी इसी अनन्य भाव को व्यक्त करते हुए कहा है कि चाहे कोई शेष, सुरेश, दिनेश, गणेश, प्रजेश, महेश, भवानी की अराधना करके अपने मनोरथो को पूर्ण कर ले, चाहे कोई लक्ष्मी की भक्ति करके बहुत सारा धन एकत्र कर ले, चाहे तीनो लोक रहे या नष्ट हो जायें, पर इनका एकमात्र आधार कृष्ण है और कृष्ण को छोडकर ये ससार के और किसी पदार्थ की अभिलाषा नही करते। इस अनन्य भाव के पीछे कृष्ण की भक्त-वत्सलता मुखरित है। जो कृष्ण द्रौपदी, गणिका, गृद्ध (जटायु), अजामिल, अहिल्याबाई, प्रह्लाद आदि भक्तो का उद्धार करने वाले है, उनकी शरण मे पहुँचकर आवागमन के दु खों से छूट जाना स्वाभाविक ही है। कृष्ण अपने भक्तो का निरतर ध्यान रखते हैं और उनकी रक्षा के लिए सदैव सन्नद्ध रहते हैं, अत किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसे कृष्ण ही सच्ची सम्पत्ति हैं, ससार का ऐश्वर्य तो दुखद और नश्वर है। कोई भी मनुष्य चाहे वह कितना ही वैभव सम्पन्न क्यो न हो, पर यदि वह कृष्ण-भक्ति से विमुख है तो उसकी सम्पूर्ण सम्पन्नता व्यर्थ और निस्सार है।

४. मिलन—इस शीर्षक से सम्बन्धित छदो के अन्तर्गत रसखान ने राधा-

कृष्ण के मिलन का वर्णन किया है। वैष्णव भक्ति-पद्धति के अनुसार कृष्ण भगवान हैं और राधा उनकी शक्ति। बिना शक्ति के भगवान के ईश्वरत्व की सम्पूर्णता कुंठित रहती है और कृष्ण को सम्पूर्ण ईश्वर बनाने के लिए उनका राधा से मिलन अनिवार्य है। सभी कृष्णभक्त-कवियों ने राधा कृष्ण-मिलन का वर्णन किया है। रसखान ने भी तीन सवैयों में इस परम्परा का निर्वाह किया है।

५. बाललीला—हिन्दी में प्रचलित कृष्ण काव्यधारा के अन्तर्गत कृष्ण के माधुर्य रूप का ही मुख्यतया वर्णन किया गया है। अतः इनके काव्यों में बाललीला की प्रमुखता है। सूरदास तो इस क्षेत्र के सम्राट् ही माने जाते हैं। रसखान ने भी कृष्ण की बाललीला से सम्बद्ध कुछ छंद लिखे हैं, पर ये संख्या में बहुत ही कम हैं। प्रस्तुत संकलन में इस विषय के केवल चार छंद हैं, और अभी तक एतद्विषयक ये ही छंद प्राप्त भी हुए हैं। पहले छंद में कृष्ण की छठी के उत्सव का वर्णन है। दूसरे छंद में कृष्ण की उस अवस्था का वर्णन है, जब कृष्ण कुछ बड़े हो जाते हैं और पैरों चलने लगते हैं। यशोदा जी उनके साथ खिलवाड़ करती है और 'ता' शब्द कहकर गौओं के पीछे छिप जाती हैं। कृष्ण उन्हें ढूंढ़ते हैं, पर जब यशोदा जी उन्हें नहीं मिलतीं तो वे उठकर पृथ्वी पर लेट जाते हैं। तब यशोदा जी उन्हें गोद में उठा लेती हैं। तीसरे छंद में कृष्ण की सज्जा का वर्णन है। यशोदा जी उनके शरीर में तेल लगाती हैं, आंखों में अंजन लगाती हैं और साथ ही डिठौना भी लगा देती हैं ताकि उनके लाड़ले पुत्र को किसी की नजर न लग जाये। चौथे सवैया में कृष्ण की उस अवस्था का वर्णन है जब वे काफी बड़े होकर खेलने के लिए घर से बाहर निकलने लगते हैं। उनका शरीर धूल से सना हुआ है। वे खेलते और खाते हुए अपने आंगन में घूम रहे हैं कि अचानक एक कौआ आता है और उनके हाथ से माखन तथा रोटी छीनकर ले जाता है।

पर गोरज, वाणी मे माधुर्य आदि। कृष्ण की शोभा को बढाने वाली प्रायः उन्ही क्रियाओ का वर्णन किया गया है, जो कृष्ण-काव्य मे परम्परागत रूप से वर्णित होती आई हैं। कुंजो से निकलना, अन्य गोपियो के साथ छेडखानी करना, कदम्ब वृक्ष पर चढकर बांसुरी बजाना, कटाक्ष करना, मुस्कराना, आदि क्रियाएँ कृष्ण-काव्य की चिर-परिचित क्रियाएँ हैं। रसखान का यह वर्णन संश्लिष्ट है, अर्थात् इन्होने कृष्ण-सौन्दर्य का वर्णन प्रत्येक अंग अथवा क्रिया को अलग-अलग लेकर नही किया है, वरन् सबका एक साथ वर्णन किया है।

७. प्रेम-लीला—प्रेम-लीला के अन्तर्गत वस्तुत कृष्ण के सौन्दर्य के द्वारा आकृष्ट गोपियो की प्रेमानुभूति का वर्णन है। प्रत्येक गोपी अपनी सखी से उसी सौन्दर्यजन्य प्रभाव का वर्णन करती है। यदि कोई गोपी अधीर होकर कदम्ब और करील के वृक्षो से पूछती है कि तुम्हारे साथ रहने वाला कृष्ण कहाँ गया तो एक गोपी अपनी सखी से अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण की भौंहे भरी हुई थी, पलकें सुन्दर थी, अधर लाल थे। उसके कानो मे कुंडल थे जो हिल-डुलकर कृष्ण के कपोलो की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे। वह मुस्कराता हुआ कुंजो मे से निकला और उसे देखते ही गोपियाँ मूर्च्छित हो गई अर्थात् अपनी सुधि-बुधि भूल गईं। दही का मटका सिर से गिरकर फूट गया। कही अवसर पाकर कृष्ण गोपियो को घेर लेते हैं। उनका मटके फोड देते है और अपनी मधुर वाणी तथा आकर्षक क्रियाओ से उन्हें मुग्ध करके अपने वश म कर लेते हैं। कृष्ण के इस अपार सौन्दय का प्रभाव गोपियो पर इतना अधिक पडता है कि वे उसे देखकर लोक और कुल की मर्यादा को तिलांजलि दे देती हैं और जब भी कृष्ण को देखती हैं, वे उसकी ओर इस प्रकार दौडती हैं जैसे नदी निर्बाध गति से सागर की ओर भागती है। उसके रूप-सौन्दर्य का ध्यान आने से ही वे स्वयं को भूल जाती हैं। सास के त्रासो की, ननद के तीक्ष्ण व्यग्यो की उन्हे कोई चिन्ता नही रह जाती। कहने का भाव यह है कि वे पूर्णतया कृष्ण के हाथो बिक जाती है।

८. वक्र-विलोचन—प्रेम-व्यापार मे वक्र दृष्टि का महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसीलिए साहित्य म इस प्रकार की दृष्टि का और इसके द्वारा उत्पन्न प्रभाव

का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। गोपियाँ कृष्ण के सौंदर्य से ही नहीं, वरन् उनकी वक्र दृष्टि भी उन्हें आकुल किये रहती हैं। जिस गोपी ने भी कृष्ण की दृष्टि को देख लिया, वह फिर कृष्ण से पृथक न हो सकी, भले ही उसे लोक लाज को तिलाजलि देनी पड़ी, सास और ननद के त्रासों को सहना पडा। कृष्ण की दृष्टि में ही कुछ ऐसा जादू है कि वह एक बार भी जिस गोपी की ओर देख लेता है, उसी के मन को चुरा लेता है।

६. मुसकान माधुरी—प्रेम के व्यापार में जितना महत्त्व वक्र विलोचन का है, उतना ही मुसकान के माधुर्य का भी है। गोपियो को वशीभूत करने वाले जहा कृष्ण के अन्य गुण हैं वहाँ मुसकान का माधुर्य भी है। जिसने भी इस मुसकान को देख लिया, यह फिर उसके दिल मे ऐसी गडी कि निकाल से नही निकली। इस मुसकान का कोई मूल्य भी तो नही, ससार के समस्त रत्नागार इस पर न्योछावर किये जा सकते है। खरिक मे जाकर कृष्ण की मुसकान देखने वाली गोपी की जो दशा होती है, उसका वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! अभी अभी वह गोशाला मे गाय का दूध निकालने के लिए गई थी लेकिन वह अपने हाथ के दूध के पात्र को फेंक-कर पागल सी होकर वापस आ गई है। उसकी दशा को देखकर कोई गोपी तो यह कहती है कि उसे किसी ने छल लिया है, कोई कहती है कि वह स्तब्ध हो गई है कोई कहती है कि वह डर गई है, कोई कहती है कि वह अभी हो गई है। उसको अच्छा करने के लिए सास अनेक प्रकार के व्रता को करने का सकल्प करती है, ननद दौड-दौडकर सयाना को बोलकर लाती है। सारी सखियाँ उसकी मूर्च्छा को पहचानकर हसती हैं और कहती हैं कि इसने आनन्द-सागर कृष्ण की नही मुस्कराहट को देख लिया है और यह उसी का प्रभाव है। एक अन्य गोपी अपनी सखी से कृष्ण की मुसकान के प्रभाव का व ेन इन शब्दा म करती है कि ह सखि। वह कामदेव के समान मधुर वाणी बोलती है। उसके शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है। उसके शरीर की कांति इस प्रकार चमकती और दमकती है, मानो काले बादलों म बिजली चमक रही हो। उनके मुख का सौन्दर्य और मुसकान कुलागनाओं की लज्जा को नष्ट करने म पूर्णतया समर्थ है।

इस प्रकार गिने चुने छंदों में रसखान ने कृष्ण की मुसकान का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है।

१० कृष्ण सौन्दर्य--प्रत्येक कृष्णभक्त कवि ने कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन किया है, पर यह वर्णन इतना अधिक परम्पराबद्ध हो गया है और सूर ने इसका इतने अधिक विस्तार से वर्णन कर दिया है कि बाद के कवियों को नवीनता के लिए गुंजायश ही नहीं रह गई। कृष्ण सौन्दर्य के उपकरण प्राय रूढ़िबद्ध हो गये हैं—मोर-मुकुट, वैजन्तीमाला, कुंडल पीताम्बर, वक्रदृष्टि, मधुर मुस्कान आदि। रसखान भी इस परम्परा से बाहर नहीं निकल पाये हैं। इन्होंने कृष्ण सौन्दर्य का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है कृष्ण के सिर पर मोरपखा का मुकुट और कानों में कुंडल सुशोभित हैं। उनके केशों की शोभा उनके कपोलों पर बिखरी हुई है। वह दुःख का हरण करनेवाली तथा मन को मोहनवाली है। उनकी वक्रदृष्टि आनंद देनेवाली और विशाल है। उनका श्याम शरीर नवीन विशाल बादल के समान है जिस पर पीले वस्त्र की शोभा बहुत ही प्रभावशाली है।

जिस प्रकार कृष्ण के अंग और आभरण रूढ़िबद्ध हो गये हैं, उसी प्रकार उनकी क्रियाएँ परम्परा से बंध गई हैं गौओं का चराना, गोधन गाना, बाँसुरी बजाना, वक्र दृष्टि से देखना, मुसकराकर चलना आदि। इन सौन्दर्यवर्द्धक क्रियाओं के अन्तर्गत भी रसखान अधिकांशत परम्परावादी ही रहे हैं।

११ रूप प्रभाव—कृष्ण के अमित अंग सौन्दर्य को तथा उनकी क्रियाओं के माधुर्य को देखकर कोई भी ब्रजवासी ऐसा नहीं है जो उनसे अप्रभावित रह सकता है विशेषत गोपियाँ तो एकदम अपनी सुधि बुधि भूल जाती हैं। कृष्ण के रूप प्रभाव का उपयोग संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में किया गया है। संयोग में गोपियाँ उनके रूप को देखते ही किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाती हैं और अपने होश हवाश गँवा बैठती हैं। अपनी प्रेमदशा का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! कृष्ण का यौवन कामदेव की शोभा से भरा हुआ है। उनकी मनोहर मूर्ति सदैव आँखों में समाई रहती है। उन्होंने मुझसे जो प्रेमभरी बातें की थी वे मन की मन में ही रह गई हैं अर्थात मैं उन्हें किसी से कह नहीं पाती। प्रेम की घातें हृदय के बीच में अड़ी हुई हैं। कृष्ण के वियोग में मेरी आँखों में सारी रात आँसुओं की लगी रहती है अर्थात् मैं

रातभर कृष्ण का स्मरण करके रोती रहती हूँ। किसी-किसी गोपी पर कृष्ण के रूप का प्रभाव इतना पड़ा है कि वह बिना मोल ही कृष्ण के हाथों बिक गई है। उसके लिए नंदपुत्र कृष्ण कामदेव से भी अधिक मनोहर हैं, उनकी वक्रदृष्टि प्रेम के पाश में बाँधनेवाली है, उनके मुख की सुन्दरता से करोड़ों चन्द्रमा पराजित हो गये हैं। इसीलिए कोई गोपी तो अपनी सखी के सामने अपनी आँख इसलिए नहीं खोलती कि उनमें कृष्ण की छवि बसी हुई है। अतः जब भी गोपियाँ कृष्ण को देखती हैं, उनके नेत्र बरबस उनकी ओर दौड़ पड़ते हैं ठीक बिहारी की नायिका के उन नेत्रों के समान जो लाज लगाम का शासन नहीं मानते। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कतिपय छंदों में ही रसखान ने रूप प्रभाव का जो वर्णन कर दिया है, वह हृदय को प्रभावित करने के लिए काफी है।

१२ कुंज लीला—कुंजलीला का वर्णन भी परम्परागत है। कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! आज प्रातःकाल जब मैं कुंजगली में निकली तो अचानक कृष्ण से भेंट हो गई। कृष्ण के मुख की मुस्कान में मेरा मन इतना डूब गया कि उसकी छवि पर से हटाने से भी नहीं हटा। उस मुस्कान ने मेरे नयनों को बाँध लिया चित को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फंदा डाल दिया। इस प्रकार के वर्णन में कोई नवीनता तथा मौलिकता नहीं है।

१३ नटखट कृष्ण—इस शीर्षक के अन्तर्गत संकलित छंदों में कृष्ण के नटखटपन का वर्णन है। यह वर्णन कहीं गोपियों की सहज स्वाभाविकता में परिपूर्ण है और कहीं तीक्ष्ण व्यंग्य में। कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे कृष्ण! तुम और किसी जगह से नहीं आये हो। तुम्हारा जन्म हमारे इसी गाँव में हुआ है। बचपन में हमने तुम्हें दूध पिला पिलाकर माँ बाप की तरह पाला है। उसी पहिचान और मर्यादा को तुम छोड़ना चाहते हो। तुम बचपन में द्वार द्वार पर नाचा करते थे और अब हमारे सामने अपनी आँखें नचा रहे हो। तुम्हें तुम्हारी माँ की सौगन्ध है, यदि तुमने हमारी मटकी उतारी। हम न तो अपनी इस मटकी के उतर जाने का सोच है, न गोरस बिखर जाने का और न वस्त्रों के फट जाने का। हमें दुःख तो इस बात का है कि तुम हमारे होकर ही हमें इतना तंग करते हो। इन वाक्यों में गोपियों के

मन की सहज स्वाभाविकता वर्णित है। इसी प्रकार एक अन्य गोपी कृष्ण के नटखट व्यवहार की शिकायत अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण एक से बढ़कर एक शरारतियों को अपने साथ लेकर वन में घूमता रहता है। यह जितनी शरारतें करता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह न तो किसी की अनुनय-विनय पर ध्यान देता है और न किसी प्रकार की मान-मर्यादा की ही लज्जा करता है। आती-जाती गोपियों की दधि-मटकियाँ फोडकर उन्हें कृष्ण ने जिस प्रकार तंग किया है, उस सबका वर्णन इस शीर्षक के अंतर्गत संकलित छन्दों में मिलता है।

१४. मुरली-प्रभाव—वैष्णव सम्प्रदाय के अन्दर मुरली को भगवान् की वशीकरण शक्ति माना गया है। कृष्ण जब भी मुरली बजाते है, तब जड और चेतन स्थिर बन जाते हैं। ब्रज की गोपियों की दशा तो विलक्षण ही हो जाती है। मुरली की ध्वनि सुनते ही गोपियाँ अपना काम करना छोड़ देती है, अतः दुहा हुआ दूध ठंडा पड जाता है, जामन दिया हुआ दूध रक्खा-रक्खा ही खटा जाता है। सभी के हाथ-पैर अपना-अपना काम करना छोड देते हैं। यह दशा नारियों की ही नही, बल्कि पुरुषो की भी हुई। कहने का भाव यह है कि सारा ब्रज ही व्याकुल हो गया। उसकी समस्त व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। इसी प्रकार एक अन्य गोपी मुरली-प्रभाव का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले, कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण के मधुर वचनों ने मेरा मन मोह लिया है। उसकी बाँकी चितवन को देखकर मैं सज्ञाशून्य हो गई और कुल की मर्यादा छोड बैठी। इसीलिए गोपियाँ चाहती हैं कि कोई व्यक्ति कृष्ण के हाथ से बाँसुरी छीनकर उसे जला डाले, तभी वे उससे छुटकारा पा सकती हैं। कृष्ण अपनी बाँसुरी से इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे हर समय उसे अपने अधरो से लगाये रहते हैं। इससे गोपियो के मन मे बाँसुरी के प्रति ईर्ष्या-भाव उत्पन्न हो गया है। वे तो यह चुनौती भी दे देती हैं कि ब्रज में या तो हम रहेंगी या यह कृष्ण-प्रिया बाँसुरी ही रहेगी।

इस प्रकार काफी विस्तार के साथ रसखान ने मुरली-प्रभाव का वर्णन किया है।

१५. कालियदमन—कृष्ण की अन्य प्रमुख लीलाओ के अन्तर्गत कालिय-दमन लीला भी प्रमुख है। सूरदास ने इस लीला का विस्तार से वर्णन किया

है पर रसखान के इस विषय में केवल दो छंद ही प्राप्त हैं। एक छंद में यशोदा जी का विलाप है और दूसरे छंद में कृष्ण द्वारा नाग पर विजय कर लेने के कारण व्रज वासियों की प्रसन्नता को व्यक्त किया गया है।

१६ चीरहरण—चीरहरण-लीला के अन्तर्गत रसखान का केवल एक छंद प्राप्त है।

ही नहीं मानती । यह बंधन-उनके लिए भगवान् का दिया हुआ है, अर्थात् उनके भाग्य में ही इस प्रकार बंदिनी होना लिखा था, यही सोचकर गोपियाँ चुप रह जाती हैं, अपनी बंदिनी-दशा के प्रति संतोष कर लेती हैं । उनकी दशा तो उन मधु-मक्खियाँ जैसी हो गई है जो अपने ही बनाये हुए शहद में लिपटकर असहाय सी बन जाती है । गोपियाँ इस बंधन से छुटकारा पाने में स्वयं को असहाय और असमर्थ समझती हैं । इसी प्रसंग के अन्तर्गत रसखान ने जलक्रीडा का वर्णन किया है । एक दिन सभी व्रज-गोपियाँ यमुना में स्नान करने के लिए जाती हैं, पर वहाँ पर कृष्ण को पहले से ही खड़ा देखकर वे ठिठक जाती हैं और दोनों ओर से दृग्-बाण चलने लगते हैं । गोपियाँ कृष्ण के प्रेम के बंधन में इतनी अधिक बंध जाती हैं कि उन्हें लोक-लाज का भय नहीं रहता । वे तो इस बात के लिए कटिबद्ध हो गई हैं कि एक न एक दिन इस प्रेम का भंडाफोड़ होगा, क्योंकि चन्द्रमा को हाथ में छुपाया नहीं जा सकता, फिर डरने से अथवा लज्जित होने से कोई लाभ भी तो नहीं है । कृष्ण गोपियों के हृदय में जिस बीज का वपन कर देते है, वह पूर्णतया अंकुरित होकर गोपियों को व्यथित कर देता है । रात-दिन आँखों से आँखें लड़ती हैं, प्रेम-व्यापार चलते हैं, पर कहीं भी न तो भय का प्रदर्शन होता है और न लज्जा का । जब सभी गोपियाँ पूर्णरूपेण कृष्ण के आधीन हो गई है तो फिर डर और लज्जा की बात ही क्या रह जाती है ।

कहने का भाव यह है कि इस प्रसंग के अन्तर्गत रसखान ने गोपियों के विविध हावों तथा भावों का कुशलता से वर्णन किया है ।

✓ १९ प्रेम वेदना—'प्रेम करि काहू सुख न लह्यौ' फिर गोपियाँ किस प्रकार सुखी रह सकती थीं । उनके हृदय में रसखान बस गया और उसके कारण उन्हें जो पीड़ा हुई उसका अनुभव वे स्वयं ही कर सकती थीं, क्योंकि घायल की गति को घायल ही जानता है । कृष्ण की मुसकान और तान पर अपने प्राणों को न्यौछावर करनेवाली गोपियाँ समाज में भी विमुख हुईं और कृष्ण का मनचाहा प्यार भी उन्हें न मिल सका । यही उनकी विवशता थी और यही समाज में ख्वारी होने का कारण था । वे कृष्ण को भूलने का जितना प्रयत्न करतीं, वह उतना ही अधिक याद आकर पीड़ा को बढ़ावा देता । फलत. किंकर्तव्यविमूढ़ होना स्वाभाविक ही था । वे क्या करें, क्या न करें, इसका

उन्हें ज्ञान ही नहीं रहा। उन्हें ज्ञान रहा केवल कृष्ण की क्रीडाओं का। इसी दशा का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि आनंद-सागर कृष्ण का कुंज-कुंज में घूमना, वंशी बजाना, गौओं को चराना, गोचारण के गीत गाना, प्रेम से दही माँगना और मुसकराकर देखना किस प्रकार भूला जा सकता है। इस प्रकार रसखान ने प्रेम वेदना का मार्मिक और स्वाभाविक वर्णन किया है।

२० रासलीला—रसखान ने रासलीला का भी वर्णन किया है। इस विषय के इनके सात छंद उपलब्ध हैं। इस रासलीला का उद्देश्य भी गोपियों को अपने प्रेम के बंधन में बाँधना है। फलतः जो भी गोपी रासलीला को देखती है वह कृष्ण की ही होकर रह जाती है। सास चाहे जितना त्रास दे, ननद चाहे जितने व्यंग्य कसे पर रासलीला की दिवानी गोपी तो उसमें सम्मिलित होकर ही रहती है। रासलीला के द्वारा कृष्ण व्रज में नवीन जीवन का संचार करते हैं। इसीलिए प्रत्येक गोपी अपनी सखी से आग्रह करती है कि वह रास लीला में अवश्य सम्मिलित हो और कृष्ण के सौंदर्य को देखकर अपनी आँखों को लाभान्वित करे। वैसे गोपियाँ स्वयं भी नहीं रुक पातीं, चाहे उन्हें रोकने की जितनी चेष्टा की जाये, क्योंकि कौवे की काँव-काँव से आगमन कभी नहीं रुका करता।

२१ फागलीला—कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत फागलीला का भी महत्त्व है। सभी भक्त कवियों ने फागलीला का वर्णन किया है। इस विषय में सम्प्रदाय रसखान के आठ छंद उपलब्ध हैं जिनमें विस्तार से इस लीला का हृदय स्पर्शी वर्णन है। कृष्ण जब फाग खेलते हैं तो उस समय उनकी जो शोभा होती है वह अवर्णनीय है। कृष्ण और गोपियाँ परस्पर पिचकारी चलाते हैं, एक दूसरे पर रंग डालते हैं पर प्रेम की आग और अधिक प्रज्वलित हो जाती है उनकी तृप्ति होती ही नहीं। फागलीला के कारण ही व्रज में धूम मच जाती है। इसमें कोई नहीं बच पाता, न तो नवेली गोपियाँ ही और न मनुष्य उनि ता" ही। सम्मान किसी का भी सुरक्षित नहीं रहता अर्थात् सभी गोपिकाएँ लोक-लाज को तिलांजलि देकर फागलीला में मस्त रहती हैं।

२२ राधा-सौंदर्य—प्रेम की परिपूर्णता के लिए यह आवश्यक माना गया है कि नायक की भाँति नायिका भी रूपवती तथा सुंदर हो। इसीलिए रसखान ने

२४ सखी शिक्षा—साहित्यिक परम्परा के अन्तर्गत सखी-शिक्षा का विषय भी सन्निहित है। जो सखी प्रौढ़ होती है, जिसे प्रेम संसार के समस्त अनुभव होते हैं वह अपनी मुग्धा सखी को—जिसने अभी-अभी प्रेम जगत् में प्रवेश किया है और जो प्रेम रहस्यों से अपरिचित है—शिक्षा दिया करती है। इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य उन साधनों को बताना होता है जिससे प्रियतम वश में किया जा सकता है। रसखान ने भी इस परम्परा का पालन किया है। कोई सखी अपनी सखी को कृष्ण से मिलने के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि हे सखि! वह वही कृष्ण है, जो रासलीला में तनिक नाचकर सबको नचाया करता है। यह ही आनन्द सागर कृष्ण है जो अनेक मनुहारें करने पर भी पलभर के लिए भी सीधा नहीं देखता। न जाने तुझमें वह कौनसा मनोहर भाव देखकर तेरी ओर आकृष्ट हुआ है अतः इस अवसर को हाथ से न जाने दे और तुरन्त उससे मिल। कहीं-कहीं सखी अपनी सखी को सुरक्षा के उपाय बताती है। एक गोपी अपनी सखी को कृष्ण के प्रति सचेत रहने के लिए कहती है कि हे सखी! मेरी बात को ध्यान से सुनो। जिस गली में कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाता हुआ रहता है उस गली में बिल्कुल मत जाओ क्योंकि देखते ही वह प्राणों को हर लेता है और फिर गोपियाँ बेचारी प्रेम की विरक्ति लेकर ही अपने घरों को लौटती हैं। उसने अपनी बाँसुरी की तानों का ब्रज में तानतान रखा है। अतः मैं तुमसे साफ बात कहती हूँ कि बहुत सोच-समझकर पैर रखो क्योंकि यह कृष्ण युवतियों को अपने जाल में इस प्रकार फँसाता है जिस प्रकार चारा फेंककर मछली को फँसाया जाता है। इसी प्रकार की अनेक शिक्षाएँ सखियों द्वारा अपनी सखियों को दी गई हैं।

के साथ अपने प्रियतम को छाती में लगा सोई हुई थी। उसके खुले हुए केश बाहर निकल कर हिल रहे थे। उसकी शोभा को देखकर कामदेव तिरस्कृत हो रहा था। प्रिय के साथ आनंद में डूबी रहकर रातभर जागने की बात का पता उसकी आँखों से चल रहा था। उसका अलसाया हुआ मुख, लाल आँखों के सफेद कोए और रातभर जागने के कारण जम्भाई के कारण निकले हुए आँसू ऐसे प्रतीत होते थे मानो चन्द्रमा पर बिम्ब, बिम्ब पर कुमुद और कुमुद पर मोती हो।

यह वर्णन काफी सयत है। इसमे विद्यापति और सूरदास जैसी असयमता नही है।

२६ वियोग वर्णन—सयोग के पश्चात वियोग अवश्यम्भावी है। रसखान का वियोग-वर्णन काफी मार्मिक और स्वाभाविक है। वियोग-वर्णन मे प्रकृति का उद्दीपन रूप मे चित्रण करने की जो परिपाटी चली आ रही हैं, रसखान ने भी उसका अनुसरण किया है। विरहिणी गोपी अपनी सखी से कहती है कि सारे बागों मे फूल खिल गये है। बसन्त के आगमन के कारण भौंरे उन पर गूँज रहे हैं। कोयल की कू कू सुनकर सबके प्रियतम विदेश से वापिस लौट रहे है। लेकिन मेरे आनद सागर कृष्ण इतने निष्ठुर है कि मेरी विरह वेदना की तनिक भी चिन्ता नही करते। जब कोयल बोलती है तो उसकी कूक हृदय मे बरछी के समान लगती है। इसी प्रकार का आगतपतिका का चित्रण है—वह गोपी अपने प्रियतम के वियोग से इतनी दुखी थी कि उसके शरीर की शोभा भी मद पड गई थी। उसका कमल जैसा मुख भी मुरझा गया था। उसके हृदय की साँसें लपट बनकर जलने लगी थी। इसी बीच उसने अपने प्रियतम के आगमन की खबर सुनी। वह इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी कचुकी की डोर भी कसमसाने लगी। उसका शरीर इस प्रकार शोभायुक्त हो उठा, मानो दीपक की बत्ती को उकसा दिया गया हो। लेकिन सर्वत्र ऐसी स्वाभाविकता तथा मार्मिकता रसखान के वर्णन मे नही मिलती। कही कही ऊहात्मक चित्र भी आ गए है। यथा—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य विरहिणी गोपी की विरह-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि जब उसके शरीर मे वियोग की आग बहुत अधिक बढ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना जल मे कूद पडी। विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के

प्रभाव के कारण यमुना के तल में बैठ गई। उस आग के कारण जब यमुना का पानी खौलने लगा तो उसकी गर्मी से पाताल लोक में स्थित शेषनाग भी जलने लगा। पर एसे वर्णन परम्परागत ही समझने चाहिए।

२७ सपत्नी भाव—इस प्रसंग की अवतारणा नारियों के मन की स्वाभाविकता को चित्रित करने के लिए की गई है। नारी यह सहन नहीं कर सकती कि उसके प्रिय को अन्य कोई नारी भी प्रेम करे। यदि ऐसा होता है तो उसके मन में जलन होती है। इसी जलन को सपत्नी भाव कहते हैं। कृष्ण काव्य में कुब्जा को लेकर ही इस भाव की अभिव्यक्ति की गई है। रसखान ने भी इस परम्परा का अनुसरण किया है। इनकी गोपियां उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! उस आनन्द सागर कृष्ण के गुणों को सुनकर हमारा हृदय सौ-सौ टुकड़े होकर फट गया है। हम नहीं जानती कि कौनसा मंत्र पढ़कर कुब्जा ने कृष्ण पर चला दिया है। हम अपने मन में विचार करके यह बात सत्य कहती हैं और जानती हैं कि कृष्ण ने इस प्रकार से कितना यश प्राप्त किया है? अर्थात् वे बहुत बदनाम हो गये हैं क्योंकि ब्रज के सब नर-नारी यह कहते हैं कि कृष्ण कुब्जा के दास बन गए हैं। कहीं-कहीं यह सपत्नी भाव आक्रोश के रूप में फूट पड़ा है। एक गोपी कहती है कि वह कुब्जा यहाँ पर होती तो उसे लात घूँसे मारती और उसका शरीर चोट देती। अपने हृदय का सारा गुस्सा निकाल लेती और उसकी नाक को छेदकर उसमें कौड़ा पहना देती। उस रांड को मैं ऐसा नाच नचाती कि उसे कृष्ण को रिझाने का फल मिल जाता।

२८ कुवलयापीड-वध—सभी कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करने के लिए इस कथा का वर्णन किया है। रसखान ने इस परम्परा का निर्वाह केवल एक छंद में ही कर दिया है।

२९ उद्धव उपदेश—इस शीर्षक के अन्तर्गत रसखान के चार सवैये उपलब्ध हैं। कथा परम्परागत है। उद्धव गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आते हैं और गोपियाँ उनकी परिहासपूर्ण भर्त्सना करती हैं।

३० ब्रज प्रेम—इस विषय के दो छंद रसखान के मिले हैं। कृष्ण को द्वारिका में रहकर ब्रज की याद आती है और वे अपनी वेदना की अभिव्यक्ति अपनी रानी रुक्मिणी से करते हैं।

३१ गंगा महिमा—इस विषय में रसखान के दो छंद हैं जिनमें गंगा की महिमा का वर्णन किया गया है।

३२ शिव महिमा—इस विषय का केवल एक छंद प्राप्त है जिसमें शिव की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

यही सुजान रसखान का प्रतिपाद्य है। इस प्रतिपाद्य पर दृष्टि डालने से यह अनायास ही सिद्ध हो जाता है कि अपने काव्य के उपलब्ध लघु कलेवर में भी रसखान ने उन सभी विषयों को समाविष्ट करने का प्रयास किया जो कृष्ण-काव्य के लिए महत्त्वपूर्ण और आवश्यक हैं। इस प्रतिपाद्य को देखते हुए यह अनुमान लगाना असंगत नहीं कि रसखान के अभी बहुत सारे छंद ऐसे हैं जो प्राप्त नहीं हुए, क्योंकि रसखान जैसा भक्त और भावुक कवि कृष्ण विषयक किसी किसी लीला का एक-दो छंदों में ही वर्णन करके रह जाय, यह बात मान्य नहीं है। 'भक्तमाल प्रदीपन' में रसखान के सहस्रों कवित्तों का उल्लेख है। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय रसखान के निश्चय ही हजार के लगभग (हजार से कुछ थोड़े अथवा कुछ अधिक) छंद अवश्य प्रचलित रहे होंगे। जो कवि केवल प्रेम को लेकर ही एक पुस्तक की रचना कर सकता है, उसने निश्चय ही कृष्ण लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया होगा। रसखान के भक्तिकाल की लम्बी अवधि भी इस अनुमान की पुष्टि करती है। अतः जब तक रसखान के अन्य छंद प्राप्त नहीं हो जाते, तब तक उपलब्ध छंदों पर ही परितोष करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

प्रेम वाटिका—

रसखान की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति प्रेम वाटिका है जिसमें ५३ दोहों में प्रेम के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस स्वरूप का उल्लेख करने से पूर्व प्रेम-वाटिका की प्रामाणिकता पर विचार कर लेना आवश्यक है।

अनेक विद्वानों की यह धारणा है कि प्रेम वाटिका रसखान द्वारा रचित नहीं है और इस धारणा का मुख्य आधार प्रेम वाटिका की किसी हस्तलिखित प्रति का प्राप्त न होना है। श्री बटेकृष्ण ने अनेक उक्तियों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह कृति किशोरीलाल गोस्वामी (प्रेम-वाटिका के सर्वप्रथम सम्पादक) की है। श्री बटेकृष्ण के तर्क ये हैं—

१ प्रेम वाटिका का एक दोहा यह है—

'कमल तं तु सो छीन ग्ररु, कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो टेढो बहुरि, प्रेम पंथ अनिवार॥'

इसी भाव से मिलता-जुलता बोधा कवि का यह सवैया है—

'अति खीन मृनाल के तारहु ते, तिहि ऊपर पांव दै आवनो है।
सुई बेह ते द्वार सकीन तहाँ, परतीत को टाडो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहुँ ते, चढ़ि तापै न चित्त डिगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा, तरवार की धार पै धावनो है॥'

इस तुलनात्मक अध्ययन से श्री वटेकृष्ण का यह अनुमान है कि प्रेम-वाटिका की रचना बोधा के पश्चात् हुई है। शिवसिंहसरोजकार के अनुसार बोधा का जन्म-काल सवत १८०४ है। आचार्य शुक्ल ने इनका कविता-काल सवत् १८३० से १८६० तक माना है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेम वाटिका की रचना सवत् १८६० के पश्चात् हुई।

२ अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए श्री वटेकृष्ण ने प्रेम वाटिका के इस दोहे की ओर सकेत किया है—

विधु सागर रस इन्द्र सुभ, वरस सरस रसखान।
प्रेम-वाटिका रचि रुचिर चिर हिय हरषि बखान॥'

और इसमें 'रस' शब्द को ६ अंक का सकेत मानकर प्रेम वाटिका का रचनाकाल सवत १६७१ निर्धारित किया है।

श्री वटेकृष्ण की यह मान्यता सगत नहीं है। जहाँ तक पहले आक्षेप का सम्बन्ध है, उसके प्रत्युत्तर मे दो बातें कही जा सकती हैं। पहली बात तो यह है कि रसखान ने बोधा के सवैया से भाव ग्रहण किया है, बोधा ने रसखान के दोहे से नहीं, इस बात का क्या प्रमाण है? दूसरी बात यह कि स्वच्छन्द धारा के कवियों ने प्रेम को टेढ़ा', सीधा', 'खड्ग की धार' आदि बताया है। उदाहरण के लिए घनानन्द का यह सवैया देखिए—

'अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँच चलें तजि आपुनपौ, झझकें कपटी जे निसाँक नहीं।

घनआनंद प्यार सुजान सुनौ, इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौ पाटी पढे हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥'

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम वाटिका मे बोधा के भावो को ग्रहण नहीं किया गया। प्रेम-वाटिका म प्रेम का दार्शनिक निरूपण है, बोधा म इस दृष्टि का अभाव है। अत इस दृष्टि से भी बोधा का काव्य प्रेम-वाटिकाकार का उपजीव्य काव्य नहीं हो सकता। डा० याज्ञिक के शब्दो म —

'प्रेम-वाटिका की रचना रसखान द्वारा संवत् १६७१ म ही हुई' इस तथ्य पर सदेह करना असगत है। जो पुस्तक पहली बार संवत १६४८ के आस-पास और दूसरी बार संवत १६६३ ६४ म प्रकाशित हुई, उसकी रचना संवत् १६७१ म कैसे मानी जा सकती है? जिस पुस्तक की खण्डित प्रति भारतेन्दु के पास थी और जिसके आधार पर संवत् १६३० म 'प्रेम सरोवर' की रचना हुई। उसकी रचना संवत १६५० मे जन्म लेने वाले गोस्वामी जी कैसे कर सकते थे? सार की बात यह है कि प्रेमवाटिका की रचना रसखान द्वारा संवत १६७१ म हुई थी। इस ग्रथ के ५३ दोहा म से लगभग १० मे रसखान छाप की श्लिष्ट अथवा स्पष्ट कवि नाम रूप म है। प्रेमवाटिका की प्रामाणिकता पर सदेह करने का कोई कारण हमे दिखाई नहीं पडता।'

प्रेमवाटिका का प्रतिपाद्य प्रेम है। इसे रूपकत्व प्रदान करने के लिए राधा और कृष्ण को मालिन माली का जोडा माना गया है। इसम रसखान जी ने प्रेम के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया है। इनका मत है कि सच्चा प्रेम अकारण होता है उसम किसी आवश्यक साधन की आवश्यकता नहीं। इसीलिए माता पिता पुत्र स्त्री आदि के प्रति जो प्रेम किया जाता है वह विशुद्ध नहीं है। विशुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि यह अनुपम, अमित और सागर के समान होता है। जो व्यक्ति एक बार इस प्रेम को प्राप्त कर लेता है वह फिर इसे नहीं छोड पाता। श्रुति पुराण, आगम स्मृति आदि सभी प्रेम के सार हैं। प्रेम ही साधना का आधार है, क्योकि हृदय, कर्म और उपासना ये सब अहकार के मूल हैं। जब तक हृदय म प्रेम का अकुर अकुरित नहीं होता, तब तक ज्ञान आदि व्यर्थ है और ये साधना मे किसी प्रकार भी सहायक नहीं हो सकते। प्रेम ही भगवान् का स्वरूप है। जिस प्रकार भगवान् के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार

प्रेम भी अवर्णनीय है। जो व्यक्ति प्रेम-पाश मे बँधकर मर जाता है, वह अमर हो जाता है। प्रेम के विविध रूप हैं। इसीलिए कोई इसे फाँसी कहता है, कोई तलवार, कोई नेजा, कोई भाला, कोई तीर और कोई प्राणरक्षक अनोखी ढाल। इसीलिए प्रेम को सब प्रकार की युक्तियों में श्रेष्ठ माना गया है। इसी प्रेम के नियमो से ही ससार का चक्र चल रहा है। प्रेम मे इतनी शक्ति होती है कि स्वयं भगवान् भी इसके आधीन रहते हैं। रसखान ने गोपियो के प्रेम को आदर्श प्रेम माना है। कहने का भाव यह है कि प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट सत्ता है और यही जड-चेतन समस्त पृथ्वी का निमायक है।

दानलीला

दानलीला के ११ छद प्राप्त हैं। डा० याज्ञिक इसे सदिग्ध रचना मानते हैं। अपनी मान्यता का आधार वे इन शब्दो में प्रस्तुत करते हैं—

१. स्व-रचित छदो मे अपना कवि-नाम देने की प्रवृत्ति रसखान में विशप रूप से पाई जाती है। रसखान के छाप-रहित सवैया सख्या मे नगण्य ही हैं, किन्तु दानलीला के ११ छदों मे केवल एक ही छंद मे 'रसखान' शब्द आया है। 'प्रेमवाटिका' के ५३ दोहों मे भी १० बार श्लिष्ट अथवा स्पष्ट नाम मे कवि की छाप मिलती है।

२. इस छद मे 'रसखानि' शब्द का प्रयोग कृष्ण की उक्ति मे राधा को संबोधन करते हुए किया है। रसखान कवि ने अपने मुक्तको मे 'रसखानि' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग जहाँ कहीं किया है, कृष्ण के अर्थ मे किया है, राधा के लिए नही।

३. रसखान कवि मुख्यत सवैयाकार हैं। घनाक्षरी का उपयोग तो बहुत थोडा किया गया है। यह प्रवृत्ति दानलीला मे नही देखी जाती, उसमे घनाक्षरी का उपयोग तो सवैया से भी अधिक हुआ है।

४ रसखान के मुक्तक छदो मे कृष्ण ने राधा अथवा अन्य गोपियो को सम्बोधित करते हुए एक शब्द भी नहीं कहा है। रसखान की गोपियो के प्रति कृष्ण सदैव मौन ही रहे हैं, परन्तु दानलीला के कृष्ण मुखर हैं। यह बात रसखान की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

५. रसखान के मुक्तकों मे दानलीला-सम्बन्धी कुछ उत्कृष्ट और लोकप्रिय छंद मिलते हैं। ये छद राधा अथवा गोपियों की कृष्ण के प्रति उक्तियाँ हैं जो

संवादात्मक कथोपकथन के रूप में हैं। यदि दानलीला वास्तव में रसखान रचित है तो ये छंद उसमें क्यों नहीं स्थान पा सके ? जिस दानलीला में रसखान के तद्विषयक लोकप्रिय उत्कृष्ट छंदों में से एक भी न हो, उसे रसखान रचित मानने में संकोच होना स्वाभाविक है। इस प्रकार के छंदों के प्रतीक निम्नलिखित हैं—

(१)

दानी भय नये माँगत दान सुनै जु पै कंस तो बाँधे न जैहो।
रोकत हो बन में रसखान पसारत हाथ महा दुख पैहो।
टूटै घरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै परि दैहो।
जैहै अभूषन काहु सखी को तो मोल छला के लला न बिकैहो॥

(२)

छीर जो चाहत चीर गहे ए जु लेहु न केतिक छीर अँचैहो।
चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक मैहो।
जानति हों जिय की रसखान सु काहे को एतिक बात बढ़ैहो।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जु नेकु न पैहो॥

(३)

नागर छैल है गोकुल में पग सेकत संग सखा ठिग तै है।
जाहि न ताहि दिखावत आँख मुकौन गई अब तोसों करै है।
हाँसी में हार हर्‍यो रसखान जु जो कहुँ नेकु तगा टुटि जै है
एक ही मोती के मोल लला सिगरे ब्रज हाटहिं हाट बिकै है॥

६. म्युनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग की प्रति में 'दानलीला' के वास्तविक रचयिता विषयक कोई संकेत नहीं है। सभा की खोज के विवरणकार ने इसे रसखान रचित माना है, किन्तु यह मान्यता निराकार जान पड़ती है।

सार यह है कि जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो, इस दानलीला को रसखान-रचित मानना ठीक नहीं कहा जा सकता।

डॉ० याज्ञिक के ये तर्क काफी सबल हैं। प्रस्तुत दानलीला की भाषा को देखते हुए भी ऐसा ही लगता है कि ये छंद रसखान द्वारा रचित नहीं हो सकते। पर यहाँ पर एक समस्या और उत्पन्न हो जाती है। सुजान-रसखान में अब तक

जितने छंदों का संग्रह किया गया है, वे छंद इस बात के साक्षी हैं कि रसखान कृष्ण भक्ति विषयक धारा के पूर्णतया अनुसरणकर्ता हैं। दानलीला इस धारा का प्रमुख प्रतिपाद्य है। सूरदास ने इस लीला का वर्णन बहुत ही विस्तार से किया है। उसके कुछ पद यहाँ उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है—

ग्वालिनि यह भली नहिं करति।
दूध दधि घृत नितहिं बेंचति, दान देतैं डरति।
प्रात ही लै जाति गोरस, बेंचि आवति राति।
कहौ कैसे जानियै तुम, दान मारे जाति।
कालिंदी-तट स्याम बैठे, हमहिं दियौ पठाइ।
यह कहयौ हरि दान माँगहु, जाति नितहिं चुराइ।
तुम सुता ब्रजभानु की, वै बड़े नंद-कुमार।
सूर प्रभु कौ नाहिं जानति, दान हाट बाजार।

× × ×

यह सुनि हँसी सकल ब्रजनारि।
आइ सुनौ री बात नई इक, सिखए हैं महतारि।
दधि माखन खैबे कौ चाहत, माँगि लेहु हम पास।
सूधें बात कहौ सुख पावै, बाँधत कहत अकास।
अब समची हम बात तुमारी, पढ़े एक चटसार।
सुनहु सूर यह बात कहौ जानि जानती नंदकुमार।।

× × ×

दान दिये बिनु जान न पैहौ।
जब ढैहों ढराइ सब गोरस, तबहि दान तुम दैहौ।
तुमसौं बहुत लेन है मोकौं, पहिलै ताहि सुनाऊँ।
चोरी अावति बेंचि जाति हौ, पुनि गोरस कहँ पाऊँ।
माँगनि छाँड़ कहा दिखराऊँ, का दही हमकौ जानत।
सूर स्याम तब कयौ ग्वालि सौं, तुम मोकौं नहिं मानत।।

× × ×

कहा हमहिं रिस करत कन्हाई।
यह रिस जाइ करौ मथुरा पर, जहँ है कंस कन्हाई।
अब हम कहाँ जाइ गुहरावैं, बसति तिहारे गाउँ।
ऐसे हाल करत लोगनि के, कौन रहै इहिं ठाउँ।
अपने घर के तुम राजा हो, सब का राजा कंस।
सूर स्याम हम देखत बाढ़े, अब सीखे ये गंस।
× × ×

मोसौं बात सुनहु ब्रज-नारी।
इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं, तुमसौं कहौं उघारी।
कबहूँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी।
जोइ मन करै सोइ करि डारै मूँड चढ़त हैं भारी।
बात कहत अठिलाति जाति सब, हँसति देत कर तारी।
सूर कहा ये हमकौं जानैं छाँछहिं बेचनहारी॥
× × ×

यह जानति तुम नंद-महर सुत।
धेनु दुहत तुमकौ हम देखतिं जबहिं जाति खरिकहिं उत।
चोरी करत रहौ पुनि जानतिं घर घर ढूँढ़त भाँड।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तैं छाँडे।
और सुनो जसुमति जब बाँधे तब हम कियौ सहाइ।
सूरदासप्रभु यह जानति हम तुम ब्रज रहत कन्हाइ॥

कृष्ण भक्तो की भाँति स्वच्छंद काव्यधारा के कवियों ने भी इस लीला का वर्णन किया है। घनानंद ने दानघटा शीर्षक के अंतर्गत इस विषय के १६ छंद लिखे हैं। दानघटा और रसखान की दानलीला में बहुत अधिक साम्य है, अतः यहाँ दानघटा के समस्त छंदों को उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है। ये छंद इस प्रकार हैं—

सवैया

गोपी—
छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत काम अरैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत चैन रचावत मैन तए हौ।

लाज मँचे बिन काज सगो तिनहीं सों पगो जिन रग रए हौ ।
ऐंड सबै निकसैगी अबै घनग्रानद ग्रानि कहा उनए हौ ॥ १ ॥

सवैया

श्रीकृष्ण—

हैं उनए गु नए न कछू उफटै कित ऐंड ग्रमेंड ग्रयानी ।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति है क्यों इती इतरानी ।
दान दिये बिन जान न पाइ है ग्राइ है जो भलि लोरि बिरानी ।
ग्रागें ग्रछूती गईं सो गईं घनग्रानंद ग्राज भई मनमानी ॥ २ ॥

सवैया

गोपी—

जाइ करौ वहि माय पं लाड बढाय बढाय किये इतने जिन ।
मीत की दौरनि खोरनि है सठता हठ ग्रौरनि सो समझै बिन ।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे को कौनैं दयौ सु लयौ किन ।
टौहिक लै घनग्रानद डाटत वाटत क्यौं नही दीनता सो दिन ॥ ३ ॥

सवैया

श्रीकृष्ण –

देहिगी दान जो ऐहै इतैं नही पैहै ग्रबै सु किये को सबै फल ।
बाबा दुहाई सुहाई करौ जिय जानि कै मानि छुटैं न कियें छल ।
एक ही ग्रोल दै जाहु चली झगरो सगरो मिटि वात परै सल ।
नावैं पर्यौ अबला घनग्रानद ऐ ठति ग्वठति मौंह किते बल ॥ ४ ॥

सवैया

गोपी—

जीभ सम्हारि न बोलति हौ मुँह चाहत क्यों ग्रब खायों थपेरें ।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि कनौड त्यौं मूढ चड़े बढे आवत नेरें ।
खाय कहा फल माय जने जिम देखौ बिचारि पिता-तन हेरें ।
कज-कनेरहि फेर बडो घनग्रानद न्यारे रहौ कनौं टेरें ॥ ५ ॥

सवैया

श्रीकृष्ण—

लेहु ग्रया गहि सोतन तें दधि की मटुकी ग्रत्र करनि करौ कित ।
जैसे सो तैसे मए ही बनें घनग्रानद धाम धरौ जित को तित ।

एकहि एक बराबरि जाहु करो अपने अपने चित को हित ।
फोरि के नयौ दुहूँ हाथ सकेदियै जो बिघना घर बैठें दयो वित ॥ ६ ॥

सवैया

गोपी—

गोद भरे बित धाम के जाय धरो गहि गोद सों माय के आगे ।
पेट परे को लखै फल ज्यौं निपजै हौ सपूत सु भागनि जागे ।
बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जातें महा पति पागे ।
दास दिये को यहै गुन है घनआनद जो छिन दोष न लागै ॥ ७ ॥

सवैया

मधुमंगल—

नंद लला रससागर सो ललिता रिस की सलिला न बढ़ैयै ।
नागरि आगरि हौ सहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैयै ।
चोखन तोष नहि उपजै घनआनद क्यौं गुन दोष कढ़ैयै ।
नेकु ढरें सुधरें सब काज अकाज इतो अपलोक चढ़ैयै ॥ ८ ॥

सवैया

ललिता—

सुनि रे मधुमगल ! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठ है ।
कर ओढि दिखाय दया मृदु है चलियै वहु भाँति बिनै करि नै ।
घनआनद ऐंठ अमैठ कियें कहा पैयत है रिझवारन पैं ।
गुन गाय रिझयावहु देहि अबै वृषभानलली की निछावर कैं ॥ ९ ॥

सवैया

सखा—

स्याम सुजान सबै गुनखानि बजावत बैन महा सुर साँचनि ।
अंग त्रिभंग अनंग भरे दृग भौंह नचाय नचावत नाँचनि ।
कीरतिदा कुलमंडन जो निरखै भरि नैन बढै सुख-माँचनि ।
दान हँसें चुकि है घनआनद रीझ नहीं सकि है हित-आँचनि ॥ १० ॥

सवैया

सखी—

आयौ सखी चलि कुंज मैं बैठि लखै घनआनद की सुघराई ।

पाठन देहि न एव सखै प्रकिले इन्हैं छेकि करै मनभाई।
भावती टेक रहो यहु भांति किये न बनै ग्रति ही कठिनाई।
लेता हों राधे बलाय कढ़्यौ करि ग्राज मनौ इतनी हम पाई॥ ११॥

राजदुलार मरी इक्सार सुभाय मये मन डारति पी को।
गु ज चली सुखपुंज ग्रली सग भाल बिराजत लाज को टीको।
लोचनि-कोरनि घोरनि ध्वै मुसिकानि मैं ह्वं दरसै हित ही को।
बोलनि बापुरी डारियै वारि लसै घनग्रानद रूप लली को॥ १२॥

रग रह्यौ सुन जात कह्यौ उनह्यौ सुखसागर कुंज मैं ग्राएँ।
फैलि परयौ रस को भगरो मलि ही भगरो निबरै न चुकाएँ।
काहू सँम्हार रहो न पटू तन को तन मैं घनग्रानंद छाएँ।
प्रेम-पगे रिझवारन की तहँ रीझ के रीझ ही लेत बलाएँ॥

दोहा

दानफटा मिलि छवि-छटा, रसघारनि सरसाय।
जियत वियत ग्रौर न छियत, रसिक-पपीहा पाय॥ १४॥

दानघटा-रसखान के, चातक रसिक सुजान।
चलनि लखत चसके चखत, रखत तृपित ही कान॥ १५॥

दानघटा सीचत सदा, मधुर केलि नव बेलि।
ग्रालबाल पचि रचि सुमन, लेत रसिक रस केलि॥ १६॥

इन उद्धरणो को उद्धृत करने से हमारा तात्पर्य केवल यह दिखाना है कि कृष्ण-काव्य के रचयिताग्रो मे दानलीला का वर्णन करना एक ग्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण परम्परा थी। रसखान ने भी इस परम्परा का निश्चय ही पालन किया होगा। इनके नाम से जो दानलीला मिलती है, यद्यपि कुछ बातो को देखते हुए वह रसखान की प्रवृत्ति के ग्रनुकूल नही जान पडती, तथापि यह कहने मे सकोच नही होता कि ग्रनेक बातो मे यह परम्परा की प्रवृत्तियो का ग्रनुसरण करती है, जैसा कि उपर्युक्त सूरदास ग्रौर घनानन्द के छदो से प्रकट होता है। इसे रसखान द्वारा विरचित न मानने के दो ही कारण प्रबल हैं—

१ इसकी भाषा रसखान की भाषा से मेल नही खाती।

२. सुजान रसखान मे ग्रनेक पद ऐसे हैं जो दानलीला से सम्बधित हैं ग्रौर उनका इसमे समावेश नहीं किया गया।

इन कारणों का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है—

१. जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, किसी भी लोकप्रिय कार्य की भाषा का वही रूप नहीं मिलता, जो उसने अपनाया है। उनकी भाषा को उनके प्रशंसकों ने अपने अनुसार मोड़ दे दिये हैं। उदाहरण के लिए मीरा को लिया जा सकता है। मीरा की भाषा तो अपने मूल स्वरूप को ही छोड़ गई है। उदाहरण के लिए ये पद देखिए—

'म्हाँ गिरधर रंग राती, सैंया म्हाँ ॥ टेक ॥
पंचरंग चोला पहर्या सखी म्हाँ, झिरमिट खेलण जाती।
याँ झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, देख्याँ तन मण राती।
जिणरो पिया परदेश बस्याँरी, लिख-लिख भेज्याँ पाती।
म्हारा पियाँ म्हारे हीयडे बसताँ, णा आवाँ णा जाती।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, मग जोवाँ दिण राती॥

× × × ×

'मैं गिरधर रंगराती, सैंयाँ मैं ॥ टेक ॥
पचरंग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो खोल मिली तन गाती।
जिनका पिया परदेश बसत है, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, का कहूँ आती जाती॥'

एक ही पद की इन दोनों भाषाओं मे आकाश-पाताल का अन्तर है। इसी प्रकार रसखान की भाषा के विषय मे भी कहा जा सकता है कि दानलीला के पदो की भाषा और प्रवृत्ति मे इतना परिवर्तन होना असभव नहीं है। श्रुति-पथ से चलनेवाली भाषा का एक रूप रहता भी नहीं है।

२. जहाँ तक दूसरे कारण का सम्बन्ध है, इसके विषय मे यह कहा जा सकता है कि रसखान ने स्वयं किसी संकलन की योजना नहीं की। इनके भक्तो ने ही इनके छंदो का सकलन किया है। पहले दानलीला से सम्बन्धित कुछ ही पद मिले होगे जिन्हे सुजान-रसखान मे संग्रहीत कर दिया गया होगा और बाद में मिलने वाले और पदो को 'दानलीला' शीर्षक के अन्तर्गत रख दिया गया होगा।

इस दृष्टि से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नही कि प्रस्तुत मानलीला म निहित भाव रसखान के ही हैं और भाषा का परिवर्तन इनके भक्तो की दन है।

दानलीला म राधा और कृष्ण का सवाद है ठीक वैसा ही जैसा सूरदास और घनानन्द म मिलता है। राधा दधि माँगने पर कृष्ण की भत्सना करती है और कृष्ण भी उस भत्सना का वैसे ही शब्दो मे उत्तर देते है।

स्फुट पद—

स्फुट पदो क अन्तगत पाँच पद सग्रहीत हैं। प्रथम पद मे कृष्ण और गोपी का सवाद है। माग मे जाती हुई किसी गोपी को कृष्ण छेड देते है। इस पर वह चिढ जाती है और कृष्ण को भला बुरा कहने लगती है। इसी बात पर दोनों म वाद विवाद प्रारभ हो जाता है। यह वाद विवाद इस प्रकार है—

कृष्ण—यदि तू अपने मन म इतनी होशियार बनती तो इस रास्ते से निक लती ही क्यो है ?

गोपी—यह रास्ता तेरे बाबा का नही है। और न पहले पहल ही इस रास्ते से जा रही हूँ। पहले भी इस रास्ते से गई थी तब किसी ने कुछ नही कहा। यह रास्ता तो सभी के चलने के लिए है। अब तुम हमारा रास्ता क्यो रोकते हो ? हमे छोडकर या तो सीधे सीधे यहा से चले जाओ अन्यथा हम तुम्हारी शिकायत तुम्हारे पिता नन्द मिहिर से कर देंगी।

दूसरे पद मे भी गोपी द्वारा कृष्ण की भत्सना का वणन है। गोपी की फटकारें सुनकर कृष्ण को क्रोध आ जाता है और वे उसके सिर से दही की मटकी उतार कर पृथ्वी पर फेंक देते है। मटकी फूट जाती है दही नालियो मे बहने लगती है। तब विवश होकर गोपी उनसे दूसरे दिन मिलने का वचन देती है।

तीसरे पद म फाग का वणन है। कोई गोपी अपनी सखी को कृष्ण के साथ फाग खेलने के लिए प्रेरित करती है।

चौथे पद म भी फाग का वणन है। कोई गोपी कृष्ण को फाग खेलने के लिए घर मे बाहर निकलने के लिए ललकारती है और जब कृष्ण बाहर आ जाते हैं तो उनसे बिजली की तरह लिपट जाती है।

पाँचवें पद मे उस विरहिणी गोरी का वर्णन है जिसे सास और ननद ने कृष्ण से फाग खेलने की अनुमति नही दी।

संदिग्ध पद

इस शीर्षक के अन्तर्गत १० छद हैं। डा० याज्ञिक ने अनेक प्रमाणो द्वारा यह सिद्ध किया है कि ये छंद रसखान-रचित नही हैं।

पहला पद है—

> हेरत कुंज भुजा धरे स्याम सौं नेक तबै हँसती न लुगाई।
> लाज न कानि हुती जिय माँझ सुभेटत जो मग माँहि कन्हाई।
> हेरे परै न गुपाल सखी इन जोबन आनि कुमात चलाई।
> होत कहा अब के पछ्नाए जो हाथ तें छूटि गई लरिकाई ॥'

यह सवैया किसी रामगोपाल कवि का रचा हुआ है। प्रबोध रस सुधासागर मे इसे राजगोपाल के नाम से ही सगृहीत किया गया है। नवीन ने भी इसे राजगोपाल के नाम से ही दो बार उद्धृत किया है। एक बार परकीया के वर्णन मे और दूसरी बार ब्रजकेलि के वर्णन मे। सरदार कवि के शृंगार-संग्रह मे भी यह छद रामगोपाल के नाम से ही मिलता है। इस सवैया की तीसरी पंक्ति के पूर्वार्द्ध मे रायगोपाल (गुपाल) की छाप भी अंकित है।

दूसरा पद है—

> 'मीरा की चटक और लटक नव कुंडल की,
> भौंह की मटक मोहि आँखिन दिखाउ रे।
> मोहन सुजान गुन रूप के निधान कान्ह,
> बाँसुरी बजाय तन तपन सिराउ रे।
> ए हो बनवारी बलिहारी जाऊँ तेरी आज,
> मेरी कुंज आय नेक मीठी तान गाउ रे।
> नंद के किसोर चितचोर मोरपख वारे,
> बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे ॥'

'शिवसिंह-सरोजकार' ने इस कवित्त को आदिल कवि द्वारा रचित माना है। इसीलिए उसने 'मोहन सुजान' के स्थान पर 'आदिल सुजान' पाठ दिया है।

तीसरा छंद है—

'तट की न घट भरें मग को न पग धरें,
घर की न कछु करें बैठी भरें साँसु री।
एकें सुनि लोट गई एकें लोट पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।
कहै रसखान सो सबै ब्रज बनिता बधि,
बधिक कहाय हाय भई कुल हाँसु री।
करिये उपाय बाँस डारियै कटाय, नाहिं
उपजैगो बाँस नाहिं बाजै फेरि बाँसुरी॥'

'शिवसिंह-सरोजकार' ने इसे रसनायक कृत माना है और 'कहै रसखान' के स्थान पर 'कहै रसनायक' पाठ दिया है।

चौथा पद है—

'भिक्षुक तिहारो कहाँ बलि मखशाला जहाँ,
सर्पन को संगी कहाँ ह्वै है छीरनिधि में।
ऐ री बहुरंगी बैलवारो कहाँ नाचत है,
कीने तिरभंगा कहीं ह्वै है ग्वालगन में।
चाउर चबैया कहाँ होय है सुदामा पास,
विष को अहारी कहाँ पूतना के घर में।
सिन्धु सुता आन मिली तर्क सों तरक करी,
गिरजा मुसकाति जाति हारी लिए कर में॥

केवल प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा सम्पादित 'रसखान पदावली' में यह कवित्त रसखान के नाम से मिलता है। यह कवित्त संस्कृत-कवियों की प्रवृत्ति के अधिक निकट है। अतः निश्चय ही यह संस्कृत के किसी श्लोक का अनुवाद है।

पाँचवा पद है—

'खेलिए फाग निसंक ह्वै आज मयंकमुखी कहै भाग हमारो।
लेहु गुलाल दुऔ कर में पिचकारिन रंग हिये मह डारो।
भावै सु मोहि करौ रसखान जू पाँव परौं जनि घूँघट टारो।
बीर की सौंह हौं देखिहौ कैसे अबार तो आँख बचाय कै डारो॥'

'स्वतन्त्र भारत'

५ मार्च सन् १९२८ के होली विशेषांक में श्री पुत्तूलाल शर्मा ने यह सवैया रसखान के नाम से उद्धृत किया है। शर्मा जी को यह सवैया कहाँ से मिला, इसकी ओर कोई संकेत नहीं किया गया है। नवीन कवि इसे रसखान-कृत न मानकर किसी अन्य अज्ञात कवि द्वारा रचित मानते हैं। इस सवैये के अंश 'भावै सुमोहि करो रसखान' के स्थान पर 'भावै तुम्हे सु करो मुहि लालन' पाठ भी मिलता है। नवीन ने वसंत ऋतु के अन्तर्गत फाग-प्रसंग में इस सवैये को उद्धृत किया है।

छठा छंद है—

'नन्द महर के बगर तनु अब मेरे को जाय।
नाहक कहुँ गढ़ि जायगो, हित काँटो मन पाय॥'

यह दोहा रसनिधि-कृत 'रतन हजारा' का है। हिन्दी शब्द-सागरकार ने भूल से इसे रसखान का मान लिया है।

सातवाँ छंद है—

'सुरतर लतानि चार फल है ललित कैधौ,
कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी।
कैधौं चिन्तामनिन की माल उर सोभित,
बिसाल कंठ में धरे है जोति झलकावनी।
प्रभु की कहानी ते गुसाई की मधुर बानी,
मुक्ति सुखदानी रसखानि मन भावनी।
खाँड की खिजावनी सी कंद की कुढ़ावनी सी,
सिता को सतावनी सी सुधा सकुचावनी॥'
(वर्ष ५, खंड १, श्रावण १९८७ वि० में)

'कल्याण' मासिक पत्रिका में यह कवित्त प्रकाशित किया गया था। इसे रसखान-कृत मान लेने का भ्रम संभवत 'मुक्ति सुखदानी रसखानि मनभावनी' के कारण हुआ है। इसे रसखान-कृत मान लेने का मर्मी तक कोई दृढ़ प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है।

आठवाँ पद है —

'अग अभूत लगाये महा गुन है कोउ ऐसो सा प्रमहू पागे ।
नाथ को नाम सुनै विगमै हियो कान्ह को नाम सुनै अनुरागै ।
जोग लिए हरि प्यारो मिलै तो पै कान वटाये कहा दुख लागै ।
मोहन के मन मानी यही तो सबै री कहो मिलि गोरख जागै ।।'

यह सवैया किसका रचा हुआ है यह बताना असम्भव है। नवीन ने इसे किसी नाथ कवि का माना है। यह भ्रम नाथ शब्द के कारण हुआ है। यह शब्द नाथपंथियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

नवाँ पद है —

'कैसा है यह देश निगारा। जग होरी ब्रज होरा।
मैं जल जमुना भरन जात रही, देखि बदन मेरा गोरा।
मोसो कहैं चलो कु जन म, तनक-तनक स छोरा।
परे आँखिन म डोरा ।।
जियरा देखि डरात सखी री लाज भरम को ओरा।
का बूढ़े का लाग लुगाई एक ते एक ठिठोरा।
न काहू सो काहू को जोरा।
मन मेरो हरयो नन्द के ने सखि चलत लगावत चोरा।
कहै रसखान सिखाइ सखन सो सब मेरा अग टटोरा।
न मानत करत निहोरा ।।

इस पद को श्री अखिलश मिश्र ने १८ सितम्बर १९६० के स्वतन्त्र भारत' म रसखान का मानकर उद्धृत किया है। इस भ्रम का कारण कहै रसखान' वाक्यांश है। यहाँ रसखान का अर्थ कृष्ण है।

दसवाँ पद है —

'परम चतुर पुनि रसिक बर कैसो हू नर होय।
बिना प्रम रूखो लगै बादि चतुरई सोय ।।'

गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'प्रेमयोग' नामक पुस्तक मे यह दोहा रसखान के नाम से दिया गया है। अन्यथा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।

———

: ४ :

रसखान का प्रेम-दर्शन

प्रेम शब्द 'प्रिय' का भाववाचक रूप है। 'प्रिय' शब्द का अर्थ है तृप्ति प्रदान करने वाला—प्रीणातिति प्रिय। अत. प्रेम उस प्रभाव को कह सकते हैं जो हृदय को आनन्द देकर तृप्त करने वाला हो।

प्रेम-भाव की महत्ता असदिग्ध है। इसीलिए भारतीय एव पाश्चात्य साहित्य दोनो मे इसके स्वरूप का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। भारतीय आचार्यों के एतद्विषयक प्रमुख मत निम्नलिखित हैं—

१ चित्त रूपी समुद्र मे जब सत्त्व गुण का जल भर जाता है तो उसमे दृष्टि, परिचय, हार्द्र तथा प्रेम नाम की चार प्रकार की तरगें उठा करती हैं। प्रेम का मूलोपादान आत्मा का सत्त्व गुण है। विषय तो केवल निमित्त कारण है। वह उद्दीपन है और भाव की जिस स्थिति को प्रेम कहते हैं, वह अनुभूति की चरम कोटि है। उससे पूर्व तीन विकास-क्रम दृष्टि परिचय और हार्द्र समाप्त हो लेते हैं। इनमे दृष्टि चित्त की वह वृत्ति है जिसमे चचल चित्त विषय की ओर हठात् प्रवृत्त होता है। परिचय से विषय के विविध सस्कार मन मे उत्पन्न होते हैं। दोषों पर ध्यान न देना हार्द्र है। जीव मे आत्मा का ही रूप जो रस है वह जिस उपाधि का आश्रय लेकर शृगार बनता है, वह उपाधि प्रेम है, अर्थात् प्रेम रसमय आत्मा के बहिर्विकास का साधन है, उसी का अभूगत तत्त्व है।

—प्रेमरसायनकार विश्वनाथ

२. अत करण की वृत्ति जिससे वस्तु के सयोगकाल मे भी वियोग सा बना रहता है, प्रेम है।

—शाडिल्य

३ चित्त की द्रवावस्था को प्रेम कहते हैं।

—आचार्य भरत

४. प्रेम इच्छा विशेष को कहा जाता है।

—आचार्य अभिनव

५. प्रेम वह भाव है जो अनुभवैकगम्य है। यह वाणी का विषय नहीं है। मूकास्वादवत् अनिर्वचनीय है। यह पहले तो विषयजन्य होता है, गुणों के कारण उत्पन्न होता है, पर बाद में भावात्मक, विषयानपेक्ष बन जाता है।

—नारद-भक्तिसूत्र

६. प्रेम ऐसा सान्द्र भाव है जो हृदय को स्निग्ध करता है और ममत्व के अतिशय से संयुक्त होता है।

—जीवगोस्वामी

इन सब लक्षणों का सार यही है कि सात्विक हृदय का उदात्त भाव है।

पाश्चात्य आचार्यों ने प्रेम-लक्षण न देकर प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। यथा—

१. प्रेमानुभव से रहित व्यक्ति सदा अंधकार में भटकता रहता है।

—प्लेटो

२. प्रेम से ही हमारे अन्तर्चक्षु खुलते हैं।

—नीत्शे

३. प्रेम के द्वारा ही अभेद की स्थिति प्राप्त होती है।

—हेगेल

४. तुच्छ वासना के रहते हुए प्रेम का कमल नहीं खिल सकता।

—हैवलॉक

५ प्रेम का अर्थ है अहंकार के त्याग द्वारा अपनी मुक्ति।

—विलेडीमीर सॉलोविन

उपर्युक्त उद्धरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम वासना का नाम नहीं है और न वह स्वयं को आबद्ध करने का बंधन है, वरन् प्रेम हृदय की वह परिष्कृत, उदात्त और अनिवचनीय भावना है जो मन को शुद्ध करती है, भावों का परिष्कार करती है और व्यक्ति को अहं के बंधन से छुड़ाकर उसे सार्वजनीन बना देती है।

प्रेम का मुख्य कार्य है प्रेमी के चित्त का संस्कार करना। इसीलिए प्रेम उल्लास, ममता, विश्रम, अभिमान, द्रवीभाव, अतिशय अभिलाषा, नव नवत्व

की अनुभूति और उन्माद, ये आठ गुण माने गये है।

१. उल्लास—उल्लास मन का वह भाव है जिसकी व्यजक प्रीति को रति कहते हैं। इसके उत्पन्न होने से केवल प्रिय मे ही प्रेम होता है। अन्य पदार्थों और व्यक्तियो के प्रति तुच्छत्व बुद्धि हो जाती है।

२ ममता—प्रेमा प्रीति से उत्पन्न होने वाला भाव ममता है। इस गुण के उत्पन्न होने पर प्रीति इतनी दृढ बन जाती है कि उसे भग करने के लिए न तो प्रेम के उद्यम को ही कम कर सकते हैं और न उसके स्वरूप को ही। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार ममतातिशय ही प्रेम समृद्धि का कारण है।

३. विश्रभ—प्रेम म विश्वास की अवस्थिति अनिवार्य है। इसी अव-स्थिति का द्योतक यह गुण है। इसके उत्पन्न हो जाने पर सदेहास्पद स्थलो पर भी प्रेमी को सदेह नही होता।

४. अभिमान—प्रिय के गुणो का अभिमान प्रेमी के प्रम को दृढतर बनाता है। अत प्रिय को अधिक प्रिय समझ कर उसके प्रति इस प्रकार के प्रणय का प्रदशन—जो कुटिलता के आयास से कुछ विभिन्न हो जाये—अभिमान या मान गुण कहलाता है।

५ द्रवीभाव—भरत ने चित्त की द्रव्यावस्था को ही प्रम बताया है। इसका अथ है कि प्रेम मे द्रवीभाव की महत्ता असदिग्ध है। इस गुण के उत्पन्न हो जाने पर प्रिय के सम्बन्ध क आभास से ही हृदय मे सत्व का उद्रेक हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात प्रिय के दर्शन आदि से ही प्रेमी की तृप्ति नही होती। उसके समय होने पर भी उसके अनिष्ट की आशका प्रेमी के मन मे निरन्तर बनी रहती है।

६ अतिशय अभिलाप—प्रेमी के हृदय म जब अभिलाषा इस सीमा तक पहुँच जाती है कि उसे अपने प्रेमी का क्षणिक वियोग भी सह्य नही होता और सयोग म भी वियोग की आशका से दुखी रहता है तो उस अवस्था को अतिशय अभिलाप गुण से सम्पन्न माना जाता है।

७ नवनवत्व की भावना—जब प्रेमी अपने प्रिय मे नित नई बातो का अथवा भावो का दर्शन करने लगता है तो इस अवस्था मे वह नवनवत्व की भावना से युक्त बन जाता है।

८. उन्माद—उन्माद का अर्थ है पागलपन। प्रेमी में जब अपने प्रिय के प्रति इतना ममत्व आ जाता है कि वह उसके बिना पागल सा बन जाता है तो उसकी यह दशा उन्माद कहलाती है। उन्माद गुण के उदय होने पर महाभाव की दशा आती है। इस दशा में संयोग के कल्प निमेष की भाँति और वियोग के निमेष कल्प की भाँति प्रतीत होते हैं।

प्रेम के गुणों पर दृष्टिपात करने के उपरांत अब यह जान लेना आवश्यक है कि प्रेम के कितने भेद होते हैं। इस वर्गीकरण के तीन आधार हो सकते हैं—

१ प्रेम की मात्रा का आधार।
२ प्रेम के आलम्बन का आधार।
३ प्रेम के स्वरूप का आधार।

प्रेम की मात्रा के आधार पर प्रेम के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। प्रेम के आलम्बन के आधार पर प्रेम के अपार भेद हो सकते हैं। यथा—देश प्रेम, जाति प्रेम, मानव प्रेम, पशु प्रेम पक्षी प्रेम, पुस्तक प्रेम, दुग्ध प्रेम आदि। प्रेम के स्वरूप के आधार पर प्रेम के दो भेद हैं—पार्थिव प्रेम और अपार्थिव प्रेम। पार्थिव प्रेम के भी दो भेद होते हैं—प्राकृत प्रेम और सात्विक प्रेम। इन्हें पाश्चात्य आचार्यों ने क्रमश 'नैच्युरल लव' (Natural Love) और 'प्लेटोनिक लव (Platonic Love) कहा है।

सहज मानव प्रेम ही को प्राकृत प्रेम कहा जाता है। पार्थिव आलम्बन के प्रति पार्थिव आश्रय की सहज वासनात्मक प्रणयाभिव्यक्तियाँ इसी प्रेम के अन्तर्गत आती हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि नर-नारी की सहज प्रीति ही प्राकृत प्रेम है। ऐसे प्रेम का आलम्बन पार्थिव होता है अत शरीर-सुख की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर जिस प्रेम का निवेदन किया जाता है, वह स्वभावत ही वासनात्मक होता है। रीतिकालीन काव्य में ऐसे ही वासनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति है।

सात्विक प्रेम इस प्रेम से भिन्न होता है। प्लेटो ने आत्मा की प्रीति का वर्णन किया है। उसने पार्थिव आलम्बन के प्रति अशरीरी आकांक्षा अथवा वासनायुक्त शुद्ध प्रीति और शुद्ध राग को ही सात्विक प्रेम की संज्ञा दी है।

सहज ऐन्द्रिय सुख से ऊपर का प्रेम ही आत्मा की प्रीति है। ऐसे प्रेम मे वस्तुत. वासना का परिष्कार एवं उन्नयन हो जाता है और वह वासना त्याग तथा सयम का प्रतिरूप बन जाती है।

जिस प्रेम का आलम्बन अपार्थिव हो, उसे अपार्थिव प्रेम कहते हैं। अपार्थिव प्रेम को चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

१ अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की वासनामूलक प्रणयाभिव्यक्ति।

२. सगुण साकार अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की दाम्पत्य प्रणयाभिव्यक्ति।

३. सगुण निराकार के प्रति मानव आत्मा की रीति-भावना।

४. निर्गुण निराकार के प्रति मानव आत्मा की ज्ञानमूलक आनदबद्ध प्रणयाभिव्यक्ति।

अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की वासनामूलक प्रणयाभिव्यक्ति सगुण साकार के प्रति ही सम्भव है। अत सगुण और साकार अपार्थिव आलम्बन आश्रय की भावना के लिए नितात आवश्यक है। पार्वती-शिव, राधा कृष्ण, सीता राम का शक्ति और परम पुरुष के रूप मे वर्णन अपार्थिव प्रणयमूलक प्रेम है। सगुण साकार अपार्थिव आलम्बन के प्रति अपार्थिव आश्रय की दाम्पत्य प्रणयाभिव्यक्ति मे पार्थिव आश्रय सगुण और साकार अपार्थिव आश्रय मे वासना का आरोप कर लेता है। फलत ऐसे प्रेम मे ऐन्द्रिय भावना का समावेश हो जाता है, किन्तु आलम्बन की अपार्थिवता के कारण ऐन्द्रिय भावना उदात्त रूप मे ही व्यक्त होती है। सगुण निराकार के प्रति मानव आत्मा की रीति भावना मे पार्थिव आश्रय का रति भाव साकार के प्रति ही सम्भव है, निराकार के प्रति नही। इसका कारण यह है कि निराकार ब्रह्म प्रेम का आश्रय नही हो सकता। प्रेम के लिए प्रतिपादन, प्रतिक्रिया आवश्यक है जो सगुण द्वारा ही सम्भव है, निर्गुण द्वारा नही। अत साहित्य मे कई स्थानो पर अपार्थिव आलम्बन को सगुण निराकार-रूप मे चित्रित करके आत्मा का उसमें रति भाव आरोपित किया है। सूफी कवियो की प्रेममयी तथा सन्त-कवियो की रहस्यमयी भक्ति ऐसी ही है। निर्गुण और निराकार के प्रति रति-भाव का प्रद

शंन नही हो सकता, अत. निर्गुण निराकार के प्रति मानव आत्मा की ज्ञानबद्ध अपार्थिवव्यक्ति में प्रेम की आनंदमग्नता की संज्ञा दी जाती है। ज्ञानमूलक होने के कारण इस प्रेम के क्षेत्र से बाहर की वस्तु माना जा सकता है, किन्तु तथ्य यह नही है। इस अपार्थिव सम्बन्ध मे भावना की मग्नता है, इसीलिए इसे प्रेम ही कहा जायेगा। उपनिषदों मे आत्मा के इसी आनंद की व्याख्या की गई है।

रसखान का प्रेम दर्शन

रसखान ने अपार्थिव प्रेम का निरूपण किया है। इन्होंने स्पष्ट कहा है कि राधा और कृष्ण ये दोनों ही प्रेम के आलम्बन हैं, प्रेम वाटिका के मालिन और माली हैं। प्रेम-तत्त्व सुबोध और सर्वगम्य नहीं है। अतः इस तत्त्व को सभी मनुष्य नहीं जान सकते। पर विडम्बना यह है कि प्रेम के ज्ञाता होने का सभी दावा करते हैं। जो व्यक्ति प्रेम-तत्त्व को जान जाता है, वह ससार के सभी दुखों एव क्लेशों से मुक्त हो जाता है। प्रेम अगम, अनुपम, अमित और सागर के समान गंभीर होता है, जो इस प्रेम सागर के समीप आ जाता है वह फिर यहाँ से लौट कर वापिस नहीं आता। प्रेम कमल-नाल से भी पतला होता है, तलवार की धार पर चलने की भाँति दुष्कर होता है। इसका मार्ग सीधा भी है और टेढा भी। इस प्रकार प्रेम-तत्त्व अनुपम और विलक्षण है। ज्ञान की सीमा भी प्रेम मे ही है। कोई व्यक्ति चाहे जितना गुणवान बन जाय, पर यदि उसमें प्रेम-तत्त्व नहीं है तो उसका ज्ञान फीका और निस्सार है। वेद, पुराण, आगम, स्मृति सभी का सार प्रेम है। बिना प्रेम के हृदय में भगवद् भक्ति का अकुर प्रस्फुटित नही होता। प्रेम के बिना किसी भी प्रकार के आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता। प्रेम ज्ञान, कर्म आदि सभी उपलब्धियों से श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्ञान, कर्म, उपासना ये सब अहकार के कारण है। जब तक हृदय में प्रेमोत्पत्ति नही होती, तब तक किसी भी साधना अथवा धर्म के प्रति मनुष्य में दृढ निश्चय की भावना नहीं आती।

जो प्रेम सासारिक आकर्षणों से उत्पन्न हुआ करता है, वह पार्थिव प्रेम है। इसे सच्चा प्रेम नहीं कहा जा सकता। सच्चे प्रेम में, अपार्थिव प्रेम मे, गुण, यौवन, रूप, धन स्वार्थ और कामना आदि कारण नहीं होते, अर्थात् यह इन सबसे रहित मानस का सहज भाव होता है। प्रेम भगवान् की भाँति सर्व-

व्यापक तत्व है। इसीलिए इस संसार में अन्य सभी वस्तुओं को देखा जा सकता है, उनका वर्णन किया जा सकता है, पर प्रेम और भगवान् ये दो तत्व ऐसे हैं जिन्हें न तो देखा जा सकता है और न जिनका वर्णन किया जा सकता है। प्रेम ऐसा ज्ञान है जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् अन्य किसी ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। मित्र, स्त्री, बन्धु, पुत्र, आदि के प्रति मनुष्य के मन में यद्यपि स्वाभाविक प्रेम होता है पर इसे सच्चा प्रेम नहीं कहा जा सकता। सच्चा प्रेम किसी भी प्रकार के कारण की अपेक्षा नहीं रखता। वह सदैव समान रहता है और सदैव प्रिय की हित कामनाओं से परिपूर्ण होता है। इस संसार में अपने तन की ममता सर्वाधिक मानी जाती है, पर सच्चा प्रेम इससे भी अधिक प्यारा होता है। इस प्रेम को प्राप्त कर लेने के पश्चात् प्रभु-प्राप्ति की भी इच्छा नहीं रह जाती। ऐसा ही प्रेम अलौकिक शुद्ध, शुभ और सरस कहलाता है।

इस प्रेम के अनेक नाम तथा रूप हैं। कोई इसे फाँसी कहता है कोई तलवार कहता है, कोई नेजा कहता है कोई भाला कहता है, कोई बरछी कहता है, कोई तीर कहता है और कोई अनोखी रक्षा करनेवाली ढाल बताता है। इस प्रेम की मार इतनी सरस होती है कि जिसको यह मार पड़ जाये, वह इसके आनन्द में सब कुछ भूल जाता है। इस प्रेम में द्वैत भावना नहीं रहती वरन् दोनों प्रेमी मिलकर एकाकार हो जाते हैं। जहाँ द्वैत भावना बनी रहेगी वहाँ सच्चे प्रेम का अभाव होगा। इसीलिए इस प्रेम को सब प्रकार की मुक्तियों से श्रेष्ठ माना गया है। प्रेम का अभाव नाश का कारण है। प्रेम से ही संसार की स्थिति है। भगवान भी प्रेम के आधीन होते हैं। जो प्रेम आनन्दपूर्ण स्वाभाविक, निस्वार्थ अचल महान् और एकरस होता है वही शुद्ध प्रेम कहलाता है। शुद्ध प्रेम स्वयं ही अंकुर है स्वयं ही बीज है स्वयं ही सिंचन है और स्वयं ही डाल, पात, फल तथा फूल है। यही स्वयं कारण और कार्य है, कर्त्ता, कर्म, क्रिया और करण भी यही स्वयं है। कहने का भाव यह है कि अलौकिक प्रेम की महत्ता, और उसका स्वरूप वैविध्यपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ईश्वर, व्यापक, रूपधारी, एवं सामर्थ्यवान है।

रसखान का यह प्रेम दर्शन भारतीय पद्धति पर आधृत है। निम्नलिखित

कतिपय तुलनात्मक उद्धरणों से यह मान्यता सिद्ध होती है—

१. 'लोक वेद मरजाद सब, लाज काज संदेह ।
देत बहाये प्रेम करि, बिधि-निषेध को नेह ॥'

—रसखान

'सर्वमेव तदा सिद्धं, मर्त्तव्यं ना विशिष्यते ।'

—बोधसार

२. 'बिन गुन जोबन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि ।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥'

—रसखान

'गुणरहितं, कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ।'

—नारद-भक्तिसूत्र

३. 'जिहि पाए बैकुण्ठ अरु, हरिहू की नहिं चाहि ।
सोइ अलौकिक शुद्ध शुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥'

—रसखान

'यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति, शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति ।'

—नारद-भक्तिसूत्र

४. 'दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि ।
होय जबहि द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि ॥'

— रसखान

'प्रेमानन्दप्रकारेण द्वैत विस्मरणं गतम् ।

—बोधसार

५. 'याहीं तें सब मुक्ति ते, लही बड़ाई प्रेम ।
प्रेम भए नसि जाहि सब, बँधे जगत के नेम ॥'

—रसखान

'सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥'

—भागवत

६. 'हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम आधीन।
याही तें हरि आपु ही, याहि बड़प्पन दीन ॥'

—रसखान

'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥'

—भागवत

अन्त मे, रसखान का प्रेम दर्शन भारतीय दर्शन पर आधृत है। भारतीय दर्शन मे प्रेम को जिस रूप मे वर्णित किया है, शुद्ध प्रेम का जो वैविध्य दिखाया है, वही रूप रसखान ने प्रेम-वाटिका मे प्रतिपादित किया है।

. ५ .

रसखान की भक्ति-पद्धति

'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजन। इसलिए भक्ति का अर्थ हुआ भगवान् का भजन अथवा स्मरण। मनुष्य आनन्द प्राप्त करने का अनादिकाल से ही इच्छुक रहा है और इसके लिए सदैव प्रयत्न शील रहा है। इन्द्रियों के सहयोग से भी आनन्द प्राप्त होता है, पर इसे वास्तविक आनन्द नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह सासारिक, क्षणिक और दुःख-पर्यवसायी है। इसी सत्य को गीता मे इन शब्दो मे प्रतिपादित किया गया है—

'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥'

इसीलिए बुद्धिमान लोग इन सासारिक सुखो की ओर आकर्षित नहीं होते। महर्षि पतंजलि ने भी विवेकी के लिए ससार के समस्त भोगो को दुःख का कारण बताया है—

'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वमेव दुःखं विवेकिनः।'

सभी आचार्यों ने इस मत को एक स्वर से स्वीकार किया है कि वास्तविक आनन्द तो भगवत्सान्निध्य से ही प्राप्त हो सकता है। इसी सान्निध्य के सान्निध्य का प्रयास भक्ति है। इस सान्निध्य को प्राप्त करने के लिए दो मार्ग प्रमुख माने गये हैं—प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग। प्रवृत्ति मार्ग का अर्थ है शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियो द्वारा परमेश्वर को प्राप्त करना अर्थात् विषयो को भगवदाभिमुख कर देना। इस मार्ग के दो भेद हैं—कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। निवृत्ति मार्ग का अर्थ है प्रतिकूल वृत्तियो की निवृत्ति करके विवेक द्वारा अनात्म को त्यागते हुए भगवान् का साक्षात्कार। इस मार्ग के भी दो भेद हैं—योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। योगमार्ग का अर्थ है विषयो से चित्तवृत्तियों का निरोध करके ईश्वर मे मग्न करना, और ज्ञानमार्ग का अर्थ है आत्म अनात्म का भेद

करना। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि भगवप्राप्ति के चार मार्ग हैं—कर्म-मार्ग, भक्तिमार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। इन मार्गों मे भक्तिमार्ग को ही सवश्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि यह सहज साध्य है—

'अयस्मात् सौलभ्य भक्तौ।'

आचार्यों द्वारा भक्ति की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी गई है। महर्षि नारद के अनुसार भक्ति परमप्रमरूपा और अमृतस्वरूपा है जिसे प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध, अमर तथा तृप्त हो जाता है—

'त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।

भक्तराज शाडिल्य ने ईश्वर मे प्रगाढ अनुरक्ति को भक्ति कहा है—

'सापरानुरक्तिरीश्वरे।'

भागवतकार के अनुसार सासारिक विषयो का ज्ञान देने वाली इन्द्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप से जब भगवदान्मुख हो जाती है तो उसे भक्ति कहते हैं—

देवाना गुणलिंगानामनुश्रविक कर्मणा सत्व एवैक मनसो वृत्ति स्वाभाविकी तु याऽनिमित्ता भागवती भक्ति सिद्धगरीयसी।'

रूपगोस्वामी के मत से श्रीकृष्ण का अनुकूल रूप म अनुशीलन जिसमे अन्य किसी प्रकार की अभिलाषा न हो और जिस पर ज्ञान, कर्म आदि का आवरण न हो भक्ति कहलाता है—

'अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशील भक्तिरुत्तमा॥'

वल्लभाचार्य के अनुसार भगवान के महात्म्य का ज्ञान रखते हुए उनम सबसे अधिक दृढ स्नेह करना भक्ति है—

'महात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सवतोऽधिक।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तयामुक्तिर्न चान्यथा॥'

इन सभी परिभाषाओ मे एक तत्त्व सर्वथा विद्यमान है। वह है ईश्वर के प्रति अनुराग। प्राय सभी भक्त-सम्प्रदायो ने अनुराग को भक्ति का अनिवार्य अग माना है। वल्लभीय सम्प्रदायी हरिराम अनुराग की महत्ता इन शब्दो मे प्रतिष्ठित करते हैं—

'सो ठाकुर जी भक्त के स्नेहवश होय भक्त के पाछे पाछे डोलते हैं। सो जहाँ ताई ऐसो स्नेह नही होय तहाँ ताई महात्म्य रखनो तासो महात्म्य विचारि और अपराध सो डरनो सो कृपा होय। जब सर्वोपरि स्नेह होयगो तब आपही ते स्नेह एसो पदार्थ जो महात्म्य कूँ छुडाय देयगो।'

भक्ति के अनेक भेद हैं। इसके विभाजन के मुख्यतया चार आधार माने जाते हैं--

१. साधना का आधार।

२ अधिकारी का आधार।

३ प्रेरणा का आधार।

४ विकास का आधार।

साधना के आधार पर, भागवतकार ने भक्ति के नौ भेद किये हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। अष्टछाप के प्रमुख कवि नन्ददास ने पहले छ भेदो को दो भागो के अन्तर्गत सपादित किया है--नादमार्ग और रसमार्ग। पहले तीन प्रकार अर्थात् श्रवण, कीर्तन और स्मरण नादमार्ग के और पादसेवा, अर्चन तथा वन्दन रसमार्ग के अन्तर्गत आते हैं।

अधिकारी के आधार पर भक्ति के चार भेद माने गये हैं—सात्विकी, राजसी तामसी और निर्गुण। जो भक्त पापो के नाश के लिए अपने पाप पुण्य सब भगवदर्पित कर देता है और अनन्य भाव से ईश्वर में आसक्ति रखता है, उसकी भक्ति सात्विकी कहलाती है राजसी भक्ति लौकिक विषय, यश, ऐश्वर्य आदि की दृष्टि मे रखकर की जाती है। तामसी भक्ति मे हिंसा दम्भ, क्रोधादि के वशीभूत होकर इच्छाओ की पूर्ति के लिए भगवत-उपासना की जाती है। निर्गुण भक्ति मे परमेश्वर को सब मे सम भाव से व्याप्त जानते हुए अपने समस्त कर्म परमेश्वर को अर्पित किये जाते हैं। इसमे निष्काम आसक्ति रहती है।

प्रेरणा के आधार पर भक्ति के अनेक भेद हो सकते हैं, क्योकि प्रेरणाओ की कोई सख्या निर्धारित नही की जा सकती। गीता मे आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्त बताये गये हैं—

'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।'

इन्हीं भक्तों के आधार पर भक्ति के भी चार भेद किये जा सकते हैं। आर्त भक्त की भक्ति तामसी, जिज्ञासु की सात्विकी, अर्थार्थी की राजसी और ज्ञानी की निर्गुण कहलाती है।

रूपगोस्वामी ने, विकास के आधार पर भक्ति के तीन भेद माने हैं— साधनरूपा, भावरूपा और प्रेमरूपा। साधनरूपा भक्ति भक्त की प्रथम अवस्था की द्योतिका है। इसमें भक्त का परमेश्वर से पूर्ण राग तो नहीं होता, किन्तु अर्चना आदि कर्मों के द्वारा वह उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। भावरूपा भक्ति उसका साध्य होती है। भावरूपा भक्ति के दो भेद हैं— वैधी और और रागानुग। जब परमेश्वर में स्वतः राग नहीं होता, वरन् शास्त्रों के शासन से अर्जित किया जाता है तो उसे वैधी भक्ति कहते हैं। वैधी भक्ति में शास्त्र-ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान होता है। रागानुसार भक्ति में अनुराग का प्राधान्य होता है। इसमें शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती, वरन् भावना का अतिरेक आवश्यक है। परमेश्वर की ह्लादिनी, संगिनी और संवित् नाम की जो तीन शक्तियाँ हैं इनमें से पहली का जीवों में प्रेम-रूप से प्रकट होने वाला अंश शुद्ध तत्त्व कहलाता है। यही भाव है। इसी भाव की भक्ति को भावरूपा भक्ति कहते हैं। हृदय जब भाव से अत्यन्त द्रवीभूत और प्रगाढ़ ममता से संयुक्त हो जाता है तो यही प्रगाढ़ावस्था प्रेम कहलाती है। इस भाव की भक्ति को प्रेमरूपा भक्ति कहते हैं। साधनारूपा भक्ति से प्रेमरूपा भक्ति तक आने के लिए भक्त को भक्ति-विकास के अनेक सोपानों को पार करना पड़ता है।

भक्ति के स्वरूप पर विहंगम दृष्टिपात करने के पश्चात् अब उन कृष्ण-भक्ति के समुदायों का संक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है जिन्होंने भक्ति-जगत् एवं साहित्य को प्रचुरता से प्रभावित किया है। इन समुदायों में से मुख्य सम्प्रदाय ये हैं—

१. वल्लभ सम्प्रदाय।
२. गौडीय सम्प्रदाय।
३. राधावल्लभीय सम्प्रदाय।

४. सखी-सम्प्रदाय।

५ निम्बार्क सम्प्रदाय।

वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य हैं। वल्लभाचार्य ने प्रेम-लक्षणा भक्ति को महत्ता प्रदान की है और नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति को प्रधानता दी गई है और राधा को उनकी (भगवान् की) आल्हादिनी शक्ति अथवा रसशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। कृष्ण-भक्त साहित्य में इस सम्प्रदाय को सर्वाधिक मान्यता मिली है और इसका प्रचार सबसे अधिक हुआ है।

गौडीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु हैं। इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण के समान महत्त्व को स्वीकार किया गया है और दोनों की समान पूजा का विधान माना गया है। इसमें सत्संग, नाम तथा लीला-कीर्तन, व्रज-वृन्दावन, कृष्ण-मूर्ति की सेवा पूजा आदि भक्ति के साधनों को विशेष महत्त्व दिया गया है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हितहरिवंश हैं। इस सम्प्रदाय में राधा की पूजा को प्रधानता दी गई है, यद्यपि कृष्ण पूजा की भी उपेक्षा नहीं है। इसमें राधा-कृष्ण की कुंजलीला तथा शृंगारकेलि को प्रधानता देने के कारण रति क्रीडा का ही एक मात्र आलंबन ग्रहण किया गया है। इसमें विप्रलम्भ शृंगार का अभाव तो है, किन्तु सूक्ष्म विरह की अनोखी सृष्टि की गई है।

सखी सम्प्रदाय का दूसरा नाम हरिदासी सम्प्रदाय भी है, क्योंकि हरिदास इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की युगल-उपासना का विधान सखी-भाव से किया गया है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य निम्बार्क हैं। वल्लभ और गौडीय सम्प्रदायों की भाँति इस सम्प्रदाय में भी मधुर भाव की उत्कृष्टता स्वीकार की गई है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण को आराध्य माना गया है जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य अह्लादिनी गोपी स्वरूपा शक्तियों से घिरे रहते हैं। इस सम्प्रदाय में कृष्णोपासना के साथ साथ राधा की उपासना का भी विशेष महत्त्व माना गया है।

रसखान की भक्ति पद्धति

रसखान वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, अत इनकी भक्ति-पद्धति वैष्णव-भक्ति है। वैष्णव भक्ति पद्धति मे नवधा भक्ति को पूर्ण महत्व दिया गया है। नवधा भक्ति के नौ सोपान हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद-सेवा, अर्चन, वन्दन दास्य,सख्य और आत्मनिवेदन। सूरदास ने इसमे मधुर भाव को जोडकर इसके दस सोपान बना दिये हैं। श्रवण मे भक्त अपने आराध्य के गुणो को सुनता है, कीर्तन के द्वारा उन्हे प्रकट करता है, । गाकर तथा गाकर सुनाता है। पद-सेवा का अर्थ है भगवान के चरणो की पूजा करना अथवा उनके चरणो की महत्ता का वर्णन करना। अर्चन का अर्थ है पूजा करना, वन्दन का अथ है स्तुति करना। दास्य मे भक्त दास-भाव से अपने आराध्य की सेवा करता है अथवा उसका गुण-गान करता है और आत्मनिवेदन मे भक्त अपने भगवान के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देता है। रसखान के काव्य मे ये सभी सोपान प्राप्त नही होते। वस्तुत रसखान किसी बाँधी हुई पद्धति पर चलनेवाले भक्त नहीं हैं। ये प्रेमोमग के भक्त है अत इनके काव्य मे माधुर्य भक्ति ही अधिक दिखाई पडती है।

माधुर्य भक्ति के तीन अग प्रमुख है— रूप-वणन, विरह वर्णन और पूर्णतया आत्मसमर्पण। रसखान काव्य म ये तीनो अग पाये जाते हैं। रूप वर्णन के कुछ उदाहरण देखिए —

१. 'मोतिन माल बनी नट कै, लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अग ही अग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चार्‌यौ दिसानि की लै छवि आनि कै झाँके झरोखे मैं बाँकेबिहारी॥'

२. 'गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैयाँ पाछें ग्वाल गावैं मृदु तानि री।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर जैसी,
बक चितवनि मद मद मुसकानि री।

कदम बिटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपनि बुझावै नैन,
माननि रिझावै वह आवै रसखानि री।

३ 'नैननि बंक बिसाल के बानमि झेलि सकै अस कौन नवेली।
लालत हैं हिय तीछन कोर सुमार गिरी तिय कोटिक हेली।
छोडै नही छिनहूँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सों जनु बेली।
रौरि परि छवि की ब्रजमडल कुडल गडन कुतल केली॥'

४ 'बाँकी बड़ी अँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि की कल बानी।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रग सुधारस-सानी।
ऐसी नबेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही मुखदानी।
डोलति है बन बीथिन मैं रसखानि मनोहर रूप लुभानी॥'

५ 'लाल लसै पगिया सब के पट कोटि सुगधनि भीने।
अगनि अग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीनै।
मुकता गल माल लसै सबके सब ग्वार कुमार सिगार सो कीने।
पै सिगरे ब्रज केहरि ही हरि ही कै हूरै हियरा हरि लीने॥'

६ 'साँझ समै जिहि देखती ही तिहि पेखन का कौ मन यों ललकै री।
ऊँचो अटान चढ़ी ब्रजबाल गुलाब सनेह दुरै उमकै री।
गोधन धूरि की धुँधरी मैं तिनकी छवि यों रसखानि लखै री।
पावक न गिरि तें बुझि मानो धुँवा लपटी लपटै लपकै री॥'

जिस प्रकार रसखान ने कृष्ण के रूप का, सौन्दर्य का वर्णन किया है उसी प्रकार राधा के सौन्दर्य का भी विस्तार से वर्णन किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

१ 'प्यारी की चारु सिगार तरगनि जाय लगी रति की दुति कूलनि।
जोबन जब कहा कहियै उर पै छबि मजु मनोज दुकूलनि।

कंचुकी सेत में जावक बिन्दु बिलोकि मरें मघवानि की मूलनि।
पूजे हैं भाजु मनो रसखान सुभूत के भूप बंधूक के फूलनि ॥'

२. 'बाँकी मरोर गही भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि तें दुति दूनी हिया की।
सोहैं तरंग अनंग की अंगनि ओप उरोज उठी छतिया की।
जोबन-जोति सु यो दमकै उमकाइ दई मनो बाती दिया की ॥'

३. 'बासर तूँ जु कहूँ निकरै रवि को रथ माँझ अकास अरै री।
रैन यहै गति है रसखानि छपाकर आँगन तें न टरै री।
औस निस्वास चल्योई करै निसिद्योस की आसन पाय करै री।
तेरो न जात कछू दिन राति बिचारे बटोही की बाट परै री ॥'

४. 'प्रेम-कथानि की बात चलें चमकै चित चंचलता चिनगारी।
लोचन बंक बिलोकनि लोलनि बोलनि मैं बतिया रसकारी।
सोहैं तरंग अनंग की अंगनि कोमल यों झमकै झनकारी।
पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी ॥'

५. 'जाको लसै मुख चंद समान कमानी सी भौंह गुमान हरै।
दीरघ नैन सरोजहुँ तें मृग खंजन मीन की पाँन दरै।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधिन जाहि टरै।
जिहि नीके नवै कटि हार के भार सो तासो कहैं सब काम करै ॥'

इस प्रकार रसखान ने रूप का वर्णन काफी विस्तार से किया है। माधुर्य भक्ति की सफल अभिव्यंजना के लिए यह विस्तार आवश्यक भी है।

माधुर्य भक्ति का दूसरा अंग है विरह-वर्णन। रसखान ने इस अंग का भी काफी विस्तार से वर्णन किया है। सारे बागो मे फूल खिल गये हैं। बसन्त के आगमन के कारण भौंरे उन पर गूँज रहे हैं। कोयल की कू-कू सुनकर सबके प्रिय विदेश से वापिस लौट चले है, लेकिन कृष्ण इतने कठोर हैं कि वे इस मादक ऋतु की तनिक भी चिन्ता नहीं करते। जब कोयल बोलती है तो कृष्ण की प्रियतमा के हृदय मे वह बरछी के समान लगती है—

'फूलत फूल सबै बन बागन बोलत मौर बसंत के आवत।
कोयल की किलकार सुनै सब कंत बिदेसन तें सब आवत।
ऐसे कठोर महा रसखान जू नेकहु मोरी ये पीर न पावत।
हूक सी सालत है हिय मैं जब वैरिन कोयल कूक सुनावत ॥

वियोग के कारण विरहिणी के शरीर की द्युति मन्द पड़ गई है। उसका कमल जैसा कोमल मुख भी मुरझा गया है। उसके हृदय की साँसें लपट बन कर जलने लगी हैं। ऐसे ही अवसर पर जब उसे यह सूचना मिलती है कि उसका प्रियतम आ गया है तो उसकी क्षीण होती हुई शरीर द्युति इस प्रकार दमक उठती है मानो दिये की बाती उकसा दी हो—

'रसखान सुनाहु वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सौ मुख गौ मुरझाय लगी लपटैं बरैं स्वास हिमा की।
ऐसे मे आवत कान्ह सुने हुलसे सुतनी तरकी अँगिया की।
यों जग जोति उठी तन की उकसाय दई मनो बाती दिया की ॥'

विरह वर्णन मे कहीं कहीं रसखान परम्परा से इतने जड़ीभूत हो गये हैं कि भावलोक की क्षति का ध्यान भी भूल गये हैं और परम्परा के अबाध प्रवाह में बह गये हैं। यथा—

'बिरहा की जु आँच लगी तन में तब जाय परी जमुना जल में।
बिरहानल तें जल सूखि गयौ मछरी बही छाँड़ि गई तल मे।
जब रेत फटी रु पताल गई तब शेष जर्‌यो धरती तल मैं।
रसखान तबै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगैं गल मे ॥'

अर्थात् जब विरहिणी के शरीर में वियोग दुख की अग्नि बढ़ गई तो वह उसे शान्त करने के लिए यमुना के जल मे कूद गई। तब विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के अभाव के कारण यमुना के तल में बैठ गई। उस आग के कारण जब यमुना का जल अत्यन्त गरम हो गया तो उसकी गरमी से पाताल लोक में स्थित शेषनाग भी जलने लगा। रसखान कहते हैं कि यह ज्वाला तभी शान्त हो सकती है जब कृष्ण उसके गले से आकर लगेंगे।

लेकिन सर्वत्र ऐसी ऊहात्मकता नहीं है। एक भावपूर्ण कवि के लिए यह

भव भी नहीं था । यथा —

'बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हिये जिन टारो ।
कंज की माल करौ जु बिछावन होत कहा पुनि चंदन गारो ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखान को काहे को जारै पै जारौ ।
चाहति हौ जु जिवायौ पट्ठ तौ दिखावौ वडी बड़ी भ्रांखिनवारौ ॥'

इस सवैया मे हृदय की सहज भावनाएँ मुखरित हैं । विरहिणी के विरह का सच्चा इलाज यही है कि उसका प्रियतम उसे मिल जाये । अन्यथा अन्य इतर उपचारो से कोई लाभ नही है । इसीलिए तो विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि मेरे हृदय पर गुलाबजल और खस छिड़कना बेकार है । कंज-माला का बिछावन करने से तथा चदन का लेप करने से भी कोई लाभ नही है । ये सारे उपचार व्यर्थ हैं, वरन् ये तो मेरी पीडा को, जलन को, और भी अधिक बढाते हैं । हे सखि ! यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मुझे विशाल नेत्र वाले कृष्ण का दर्शन करा दो । यही एकमात्र उपचार मेरे विरह-रोग को ठीक कर सकता है ।

माधुर्य भक्ति का तीसरा प्रमुख अंग है पूर्णतया आत्मसमर्पण । जब तक भक्त स्वय को अपने आराध्य के प्रति पूर्णतया समर्पित नही कर देगा, तब तक उसका उसके प्रति प्रेम और विश्वास अधूरा ही रहेगा । रसखान को अपने आराध्य पर पूर्ण विश्वास है । उसके सरक्षण मे ये सब प्रकार के दुखो से तथा कष्टो से स्वय को सुरक्षित समझते हैं—

'कहा करै रसखानि को कोऊ चुगुल लबार ।
जो पै राखनहार है, माखनचाखनहार ॥'

इसीलिए इनका मन कृष्ण के लिए चातक बना हुआ है —

'बिमल सरस रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि ।
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि ॥'

अपने आराध्य के प्रति इनका इतना घनिष्ठ स्नेह है कि ये युग-युगान्त तक उसका सान्निध्य प्राप्त करना चाहते है । इनकी इच्छा है कि यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य-योनि मिले तो मैं व वही मनुष्य बनूँ जिसे ब्रज और गोकुल के ग्वालों के मध्य खेलने का अवसर मिले । यदि पशु-योनि मिले तो उस गाय का

जो नंद की गायों के साथ विचरण कर सके। यदि पाषाण-योनि मिले तो उसी पर्वत की शिला बनूँ जिसे कृष्ण ने इन्द्र का गर्व खंडित करने के लिए अपने हाथ से उठाया था और यदि पक्षी बनूँ तो मुझे यमुना-तट पर उगे हुए कदम्ब-वृक्षों पर निवास करने का अवसर मिले –

> 'मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
> जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
> पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
> जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥'

इसी प्रकार ये अपने शरीरावयवों की सार्थकता इस बात में मानते हैं कि वे आराध्यदेव के काम आयें –

> 'जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
> मो कर नीको करैं करनी जु पै कुंज कुटीरन देहु बुहारन।
> सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज-रेनुका-अंग-सवारन।
> खास निवास मिलै जु पै तो वही कालिन्दी-कूल कदंब की डारन॥'

और—

> बैन वही उनको गुन गाइ और कान वही उन बैन सों सानी।
> हाथ वही उन गात सरैं अरु पाय वही जु वही अनुजानी।
> जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
> त्यों रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी॥

उस आराध्यदेव के समक्ष दुनिया का सारा वैभव तुच्छ और निस्सार है। कोई व्यक्ति चाहे जितना वैभव संचित कर ले, यदि उसकी कृष्ण में भक्ति नहीं है तो उसके संचित वैभव का कोई मूल्य नहीं, क्योंकि कृष्ण की भक्ति ही सर्वोच्च और सत्य वैभव है—

> 'संपति सौं सकुचाइ कुबेरहिं रूप सौं दीनी चिनौती अनंगहिं।
> भोग कै कै ललचाइ पुरन्दर जोग कै गंग लई धर मंगहिं।
> ऐसे भए तो कहा रसखानि रसै रसना जो जु मुक्ति-तरंगहिं।
> दै चित ताके न रंग रच्यो जु रह्यो रचि राधिका रानी के रंगहिं॥'

× × × ×

'कचन मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाय सदा झलकैयत ।
प्रात ही तें सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि जो साँवरे ग्वार सों नेह न लैयत ॥'

× × × ×

'कहा रसखानि सुखसम्पत्ति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अग छार को ।
कहा साध पचानल कहा सोए बीच जल,
कहा जीति लाए राज सिन्धु आर पार को ।
जप बार बार तप सजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को ।
कीन्हों नही प्यार नही सैयौ दरबार चित,
चाह्यौ न निहार्‌यौ जो पै नन्द के कुमार को ॥'

× × × ×

'कचन के मदिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सो ।
और प्रभुताई अब कहाँ लौं बखानौ, प्रति,
हारन की भीर भूप हटत न द्वारे सो ।
गगाजी मैं न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ वेद,
बीस बार गाई ध्यान कीजत सबारे सो ।
ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जो पै,
चित दै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सो ॥

इन उद्धरणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि रसखान के मन मे अपने आराध्य के प्रति पूर्ण आत्मसमपण विश्वास एव अनुराग है । कि तु अन्य कृष्ण भक्तो की भाँति इनका हृदय सकीण नही है । सूरदास कृष्ण को छोडकर अन्य देव की उपासना इसी प्रकार हास्यास्पद समझते हैं जिस प्रकार कामधेनु को छोड-कर छेरी का दूध निकालना । पर रसखान में यह सकीर्णता नही है । ये यद्यपि कृष्ण के प्रति अपनी पूण आस्था प्रकट करते हैं पर शिव और गगा के प्रति

भी इनके मन में श्रद्धा भाव है। शिव की स्तुति करते हुए ये कहते है—

'यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सों धूलि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अटकै लटकै फनि सो कफनी फहरावत हैं।
रसखानि जेई चितवै चित दै तिनके दुख दुन्द भजावत हैं।
गज-खाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत है॥'

गगा महिमा से सम्बद्ध इनके दो सवैये उपलब्ध हैं। वे ये है—

१ 'इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि अधिक ओठ पै अधिक नाद से बाजत री।
रसखानि पितम्बर एक कँधा पर एक बघम्बर राजत री।
कोउ देखउ सगम लै बुडकी निकरै यहि भेख सो छाजत री॥'

२ वेद की औषद खाई कछु न करै बहु सजम री सुनि मोसें।
तो जल पान कियो रसखानि सजीवनि जानि लियो रस तोसें।
ए री सुधामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य बनै तोहि पोसें।
आक धतूरो चबात फिरै विष खात फिरै सिव तेरे भरोसें॥'

इस प्रकार हम देखते है कि यद्यपि रसखान वल्लभाचार्य की परम्परा में आते है पर ये इस परम्परा के भक्तों की भाँति नियमों का कठोर पालन करते नहीं चले हैं। नियमों की अपेक्षा इनकी भक्ति पद्धति भावों पर अधिक आधृत है। यही कारण है कि इनके मन में जितनी कृष्ण के प्रति आस्था है, उतनी ही अन्य देवताओं के प्रति विशेषकर गगा और शिव के प्रति। उदार मन की यह उदारता रसखान के अतिरिक्त न तो अन्य कृष्ण भक्तों में मिलती है और न स्वच्छंदतावादी कवियों में।

: ६ :

रसखान की रस-योजना

रस काव्य की आत्मा है, अतः प्रत्येक सजीव काव्य के लिए रस-योजना अनिवार्य है। भावपूर्ण कवियो के काव्य मे रस-योजना श्रमसाध्य नही होती, वरन् स्वाभाविक होती है। विविध रसो की योजना रसखान का ध्येय नही है। ये तो भक्त हैं और भक्ति के आवेश में आकर ही इनकी वाणी फूटी है। इनकी भक्ति माधुर्य भाव की है। अतः शृंगार रस की योजना ही इनके काव्य में पाई जाती है। भक्त होने के नाते इनकी इस शृंगारिक योजना को अलौकिक शृंगार के अन्तर्गत ही परिगणित किया जायेगा।

शृंगार रस के दो भेद होते हैं—सयोग शृंगार और वियोग शृंगार। इन्हें ही क्रमशः सम्भोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार कहते हैं।

संयोग शृंगार

सयोग शृंगार के अन्तर्गत नायक और नायिका के मिलन की अवस्था एवं तज्जन्य आनंद का वर्णन होता है। यह मिलन-अवस्था एकदम नही आती, बल्कि इसे प्राप्त करने के लिए दोनों को अनेक सोपान पार करने पड़ते है। पहले वे अचानक मिलते हैं, एक-दूसरे को देखते हैं और पारस्परिक रूप का लावण्य उन्हे सान्निध्य प्राप्त करने को प्रेरित करता है। तत्पश्चात् उन दोनों की प्रेम-क्रीडाएँ चलती हैं। सयोग शृंगार के अन्तगत मुख्यतया तीन बातो का वर्णन किया जाता है—

१ रूप-वर्णन।

२ प्रेम-व्यापार का वर्णन।

३ नायिका-भेद-वर्णन।

१. रूप-वर्णन— रूप अथवा सौन्दर्य के प्रति आकर्षण प्रेम का प्रथम सोपान है। नायक नायिका के सौन्दय मे और नायिका नायक के सौन्दर्य के कारण ही दोनो एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। हिन्दी मे विशेषतः रीतिकालीन

साहित्य में—केवल नायिका के सौन्दर्य का ही वर्णन किया गया है। यह वर्णन एकांगी है। रसखान ने नायक और नायिका—कृष्ण और राधा—दोनों के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए इन्होंने बताया है कि उस नटवर कृष्ण के गले में मोतियों की माला पड़ी हुई है। उनकी घुँघरवारी केश-राशि लटक रही है। अंग के प्रत्येक भाग में जड़ाऊ आभूषण और सिर पर जरी वाली पगड़ी सुशोभित है। ऐसे सौन्दर्य के दर्शन पूर्ण पुण्य के कारण ही हुआ करते हैं—

'मोतिन माल बनी नट के लटकी लटवा लट घूँघरवारी।
अंग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरन पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चार्‌यौ दिसानि की लै छवि आनि कै झाँकै झरोखे मैं बाँके बिहारी॥'

कृष्ण जब शाम को गाय चराकर अपने अन्य साथियों के साथ वन से वापिस लौटते हैं तो उस समय उनका जो सौन्दर्य होता है, उसे देखकर ब्रज की वनिताएँ अपने सारे दिन की थकान को भूल जाती हैं—

'आवत हैं बन तें मनमोहन गाइन संग लसै ब्रज ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला।
हेरत हेरि चकै चहूँ ओर तें झाँकि झरोखन तें ब्रज बाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यौ सब द्यौस को ताप कसाला॥'

कृष्ण जितने सुन्दर हैं, उनकी वाणी में उतना ही माधुर्य है और कुंजों में घूमने फिरने की उतनी ही आकर्षणमयी आतुरता है। जो भी गोपी उनके सौन्दर्य को तथा उनकी सुन्दर चेष्टाओं को देख लेती है, वह उनके सौन्दर्य-सागर में डूबे बिना नहीं रह पाती—

'अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाँठन खोलत है।
सुन री सजनी अलबेलो लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है।
रसखानि लखैं मन बूड़ि गयौ मधि रूप के सिन्धु कलोलत है॥'

जो भी गोपी कृष्ण के सौन्दर्य को देख लेती है, वह दीवानी बन जाती है, कृष्ण का सौन्दर्य उसके हृदय में अटक जाता है—

'तैं न लख्यौ जब कुंजनि तें बनिकै निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ उठ कैसो किरीट लसैं लटक्यौ री।
को रसखानि फिटै फटक्यौ हटक्यौ ब्रजलोग फिरै भटक्यौ री।
रूप सबै हरि वा नट को हियरें अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री॥'

जितना मधुर कृष्ण का शरीरगत सौन्दर्य है, उतना ही आकर्षक उनका चेष्टागत सौन्दर्य भी है। उनके वक्र नेत्रों की मार इतनी पैनी और प्रभावशाली है कि जिस गोपी पर भी वह पड जाती है, वह अपनापन भूल जाती है और क्षणभर को भी कृष्ण स्मृति को नही छोड पाती—

'नैननि बंक बिसाल के बाननि झेलि सकै अस कौन नवेली।
बेधत हैं हिय तीछन कोर सुमार गिरी तिय कोटिक हेली।
छोडै नही छिनहूँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सो जनु बेली।
रौरि परी छवि की ब्रजमंडल कुंडल गंडनि कुंतल केली॥'

कृष्ण की वाणी और उनकी चंचल दृष्टि विलक्षण है। उनके कपोलो पर कुंडलो की छवि हाथी के गंडस्थल पर पडी हुई छवि की भाँति अद्वितीय है। जब वे वृक्ष की डाली पकडकर त्रिभंगिमा से खडे होते हैं तो उस समय उनकी जो शोभा होती है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उनकी सरस मुस्कान तो वशीकरण मंत्र है ही—

'अलबेली बिलोकनि बोलनि औ अलबेलियै लोल निहारन की।
अलबेली सी डोलनि गंडनि पै छबि सो मिलि कुंडल वारन की।
भट्टू ठाढो लख्यौ छबि कैसें कहौं रसखानि गहे द्रुम डारन की।
हिय मैं जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की॥'

उनके विशाल नेत्र सुख देने वाले हैं, उनके कपोल पुष्ट हैं, वाणी मे माधुर्य है, हँसी मे आकर्षण है, मुख मे चन्द्रमा जैसी सुन्दरता और स्निग्धता है। इस सौन्दर्य-राशि को देखकर सभी गोपियाँ इसकी मनोहरता पर मोहित हो जाती हैं—

'बाँकी बडी अँखियाँ वडरारे कपोलनि बोलनि कौं कल बानी।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रंग सुधारस सानी।
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डोलति है बन बीथिन मे रसखानि मनोहर रूप लुभानी॥'

रसखान ने जिस प्रकार कृष्ण के सौन्दय का वर्णन किया है, उसी प्रकार राधा के सौन्दर्य के भी झलक चित्र चित्रित किये हैं। राधा के नेत्रों में वह सुन्दरता तथा मादकता है, मानो ब्रह्मा ने संसार को प्यासा जानकर उसकी तृप्ति के लिए उसके नेत्रों में सुधा सागर भर दिया है। मुख इतना सुन्दर है जैसे अपने समस्त अमृत सार को संजोकर चन्द्रमा स्वयं उपस्थित हो गया हो। उसके शरीर का गठन ऐसा है जैसे सोने में मणिमुक्ताओं को जड़ने के लिए कुशल जड़िया यौवन ने रत्न जड़ने के लिए स्थान स्थान पर सुन्दर स्थान निर्धारित किये हुए हों। उसके अधरों की लाली काम कामना के समान सुशोभित है। उसकी नासिका का छिद्र उस भौंरे के समान है जिसमें पड़कर ज्ञान की नौका का गर्व नष्ट हो जाता है और उसकी मनोहर चिबुक पर तो सैंकड़ों रति और रम्भा की शोभा को न्योछावर किया जा सकता है—

'कैधों रसखान रस कोम दृग प्यास जानि,
आनि कै पियूष पूष कीनो बिधि चंद घर।
कैधों मनि मानिक बैठारिबे को कंचन मैं,
जग्यिा जोबन जिन गरिपा सुघर घर।
कैधों काम कामना के गञत अधर चिन्ह,
कैधों यह भौंर ज्ञान बोहित गुमान हर।
एरी मेरी प्यारी दति कोटि रति रम्भा की
वारि डारौं तेरी चित्तचोरनि चिबुक पर॥

राधा का मुख इतना सुन्दर है कि उसकी सुन्दरता का किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका सौन्दर्य प्रकाशित करने वाला है। उसके रूप का बोध वही व्यक्ति कर सकता है जिसने नक्षत्रों की अनुपम शोभा को देखा है। उसके मस्तक पर लगा हुआ टीका इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो चन्द्रमा अपनी गोद में मंगल को लिये हुए हो—

'श्री मुख यौं न बखान सकै वृषभान सुता जू को रूप उजारो।
हे रसखान तू ज्ञान संभार तरैनि निहार जु रीझनहारो।
चारु सिन्दूर को लाल रसाल लसै ब्रज बाल को भाल टिकारो।
गोद में मानौं बिराजत है घनश्याम के सारे को सारे का सारो॥'

राधा का यह स्वाभाविक सौन्दर्य सौन्दर्य साधक उपकरणों से विभूषित होता है तो उसकी शोभा द्विगुणित हो जाती है। उसका गहरे लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है। उसकी काली केश-राशि भौंरे के समान सुशोभित है। काले रेशम की डोरियों मे बँधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा-सम्पन्न हैं। उसके मोती कदम्ब और आम की मंजरियों के समान शोभायमान हैं। उसकी वाणी मे इतना माधुर्य है कि उसके वचनों को सुनकर कोयल भी लज्जित हो जाती है—

> 'अति लाल गुलाल दकूल ते फूल अली ! अलि कुंतल राजत है।
> मखतूल समान के गुंज घरानि मैं किंसुक की छबि छाजत है।
> मुकता के कदम्ब ते अम्ब के मौर सुने सुर कोकिल लाजत है।
> यह भावनि प्यारी जु की रसखानि बसन्त-सी आज विराजत है।''

जब राधा ने अपने शरीर पर चन्दन का लेप कर लिया तो वह ऐसी प्रतीत होने लगी मानो चन्द्रमा की पत्नियो तारिकाओं को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी सात्विक शोभा को बाहर निकालकर वह सुधा की मानसपुत्री बैठी हो। उसके कुचों के बीच मे हार का चन्दा इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर मे जड़ दिया गया हो, अथवा वह दृग-बाणों का घाव दमक रहा हो, अथवा-श्वेत पर्वत के संधि-स्थान मे कोई जलाशय हो—

> 'तन चन्दन खोर के बैठी भट्ट रही आजु सुधा की सुता मनसी,
> मनौ इन्दुवधून लजावन कौं सब ज्ञानिन काढि धरी गन सी।
> रसखानि बिराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन-सी।
> दमकै दृग-बान के घायन कौं गिरि सेत के संधि के जीवन-सी'।

कहीं-कहीं राधा-सौन्दर्य का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन श्री रसखान ने किया है—

> 'बासर तूं जु कहूँ निकरै रवि को रथ माँझ अकास अरै री।
> रैन महै गति हैं रसखानि छपाकर आँगन तें न टरै री।
> धौस निस्वास चल्योई करै निसि द्यौस की आसन पाय धरै री।
> तेरो न जात कछू दिन राति बिचारे बटोही की बाट परै री।'

हे राधा ! यदि तू दिन मे अपने घर से बाहर निकल जाती है तो तेरे सौन्दर्य से सूर्य इतना चकित हो जाता है कि उसका रथ आकाश मे ही रुक

जाता है; अर्थात् सूर्य अपनी गति भूलकर एकटक तुझे ही देखता रह जाता है। तेरा सौन्दर्य देखकर चन्द्रमा तेरे घर के आँगन में ही ठहर जाता है और आगे नहीं बढ़ता। दिन में तो पवन चलता ही रहता है, पर रात में भी वह दिन की आशा से तेरे पीछे लगा रहता है; अर्थात् तेरी सुगंध का लोभी पवन रात-दिन तेरे इर्द-गिर्द चलता रहता है। इस पवन के रात-दिन चलते रहने के कारण तेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता, पर बेचारे पथिक का रास्ता रुक गया है; अर्थात् पवन-वेग के कारण वह अपने मार्ग पर नहीं चल पाता।

२. प्रेम-व्यापार का वर्णन – जिस प्रकार रसखान ने रूप का पर्याप्त विस्तार से वर्णन किया है, उसी प्रकार प्रेम-व्यापार का भी किया है। यह व्यापार कुंजलीला, रासलीला, दानलीला और फागलीला में विशेष रूप से मुखरित हुआ है।

कोई गोपी कृष्ण से मिलकर आई है। अपनी मिलन-दशा का वर्णन वह अपनी सखी से करती है कि हे सखि! मैं आज प्रातःकाल जब कुंजगली से निकली तो अचानक कृष्ण से भेंट हो गई। कृष्ण के मुख की मुस्कान में मेरा मन इतना अधिक डूब गया कि वह उस मुस्कान की छवि पर से नहीं हटता, हटाने पर भी नहीं हटता। उस मुस्कान ने मेरे नेत्रों को बाँध लिया, चित्त को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फंदा डाल दिया। तुम्हीं बताओ, अब मैं क्या करूँ? मेरे चित्त में बसा हुआ कृष्ण कैसे बाहर निकाला जा सकता है। उस आनंद-सागर कृष्ण के सौन्दर्य ने तो मेरे सारे शरीर को ही घेर लिया है—

'कुंजगली मैं अली निकसी तहाँ साँवरे ढोटा कियौ भटभेरो।
माई री वा मुख की मुसकान गयौ मन बूड़ि फिरै नहिं फेरो।
डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डार्‌यौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करौं अब क्यौं निकसौ रसखानि पर्‌यौ तन रूप को घेरो।'

रासलीला में प्रेम-व्यापारों का कुंजलीलाओं की अपेक्षा अधिक वर्णन है। रासलीला के समय नटखट कृष्ण अपनी बाँसुरी में जिस गोपी का नाम ले देते हैं वह तो अपना सर्वस्व भूलकर कृष्ण के ऊपर न्यौछावर ही हो जाती है—

'अधर लगाइ रस प्याइ बाँसुरी बजाइ,
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियौ मन मैं।

नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करिकै अचेत चेत हरिकै जतन मैं ।
झटपट इलट पुलट पट परिधान,
जान लागी लालन पै सबै बाम वन मैं ।
रस रास सरस रगीलो रसखानि ग्रानि,
जानि जोर जुगुति बिलास कियो जन पै' ।

कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि जब कृष्ण ने अपनी बांसुरी बजाई और मेरा नाम उसमे गाया तो मेरे मन पर वह जादू कर गया । नटखट, युवक और सुन्दर कृष्ण ने मुझे अचेत करके यत्नपूर्वक अपने ध्यान मे लगा लिया अर्थात् मेरी वह अवस्था कर दी कि मैं उसके बिना नही रह सकती थी । बासुरी की ध्वनि को सुनकर सारे व्रज की स्त्रियां जल्दी से अपने वस्त्रो को उलटा सीधा पहनकर वन म पहुँच गई । तब सुन्दर रास रचने वाले सरस और रगीले कृष्ण ने वहां आकर रास-लीला की तथा युवतियो का समूह एकत्र करके उनके साथ आनन्द मनाया ।

'आज भटू मुरली बट के तट नन्द के सांवरे रास रच्यो री ।
नैननि सैननि बैननि सो नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यो री ।
जद्यपि राखन कौं कुल कानि सबै ब्रज बालन प्रान बच्यो री ।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानी को अ्रत लच्यो पै लच्यो री ।।'

अर्थात् जब कृष्ण ने मुरली-बट के नीचे रास रचा तो उन्होंने प्रेम की सभी भगिमाओ का प्रदर्शन किया, कोई भी भाव इनसे बचा न रह सका। उनकी भगिमाओ को देखकर व्रज-वनिताएं इतनी भाव-विभोर हुई कि प्रयत्न करने पर भी वे अपनी कुल-मर्यादा को न बचा सकी, अर्थात् कृष्ण के वशीभूत हो ही गई ।

फागलीला में प्रेम व्यापारो का रूप और भी अधिक स्पष्ट है । इसी लीला का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि ह सखि ! कल गोकुल का एक ग्वाला (कृष्ण) चारो ओर की गोपियों को घेरकर, भांवर रचा कर, धूम मचा गया । वह बांकी बांसुरी की तान सुनाकर तथा हृदय को उल्लसित करके सहज स्वभाव से सब गांव वालो को ललचा गया है । वह अपनी

पिचकारी चलाकर तथा समस्त युवतियों को प्रेम से भिगोकर और अपनी आँखों को नचाकर मेरे सारे अंगों को नचा गया है। वह हमारी ही गली में मेरी सास को तथा भोली ननद को नचाकर और पुराने वैरो को बदला लेकर मुझे लज्जित कर गया—

'गोकुल को ग्वाल काल्हि चौमुँह की ग्वालिन सों
चाँचर रचाइ एक धूमहिं मचाइगो।
हियो हुलसाय रसखानि तान गाइ बाँकी,
सहज सुभाइ सब गाँव ललचाइगो।
पिचका चलाइ और जुवती भिजाइ नेह
लोचन नचाइ मेरे अंगहि नचाइगो।
सासहि नचाइ भोरी नदहि नचाइ खोरी,
बैरनि सचाइ गोरी मोहि सकुचाइगो॥'

कृष्ण पर फागलीला का इतना अधिक भूत सवार है कि वे रास्ते में आती-जाती ग्वालिनों को भी नहीं छोड़ते। इतनी जबरदस्ती से उनके मुख पर गुलाल मलते हैं कि उनकी साड़ियाँ भी फट जाती हैं, पर वे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करते। यहाँ तक कि मनचाही किये बिना वे किसी को नहीं छोड़ते। ऐसी ही एक घटना का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से कर रही है—

'आवत लाल गुलाल लियें मग सूने मिली इक नार नवीनी।
त्यों रसखानि लगाइ हियें भटू मौज कियौ मन माहिं अधीनी।
सारी फटी सुकुमारी हटी अँगिया दरकी सरकी रग भीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अंक रिझाइ बिदा करिदीनी॥'

दानलीला में भी प्रेम के ये व्यापार पूर्णतया मुखरित हुए हैं। एक उदाहरण देखिए—

'छीर जौ चाहत चीर गहे एजू लेउ न केतिक छीर अचैहौ।
चाखन के मिस माखन मांगत खाउ न माखन केतिक खैहौ।
जानति हौं जिय की रसखानि सु काहे कौं एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्हजू नेकु न पैहौ॥'

अब हम देखते हैं कि रसखान ने प्रेम व्यापारों का पर्याप्त और सफल

चित्रण किया है ।

३. नायिका-भेद—प्रेम-व्यापार में नायिका को प्रमुख स्थान दिया गया है, अत इसके भेदों के वर्णन का विधान भी सयोग शृंगार के अन्तर्गत किया जाता है । रसखान आचार्य नही, कवि हैं । अत यह आवश्यक नही कि सभी काव्यशास्त्रीय विधान इनके काव्य मे उपलब्ध हो । जहाँ तक नायिका-भेद का प्रश्न है, इस ओर से ये प्राय· उदासीन ही रहे हैं । इस उदासीनता का कारण इनका भक्त-हृदय है । फिर भी कुछ नायिकाओ के भेद इनके काव्य मे स्वतः आ ही गये हैं । यथा—

'बाँकी मरोर गही भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की ।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि तें दुति दूनी हिया की ।
सोहैं तरग अनग की अगनि ओप उरोज उठी छतिया की ।
जोवन-जोति सु यों दमकै उसकाइ दई मनोबाती दिया की ।।'

इसमे मुग्धा नायिका की वय सधि का वर्णन है । और—

'जो कबहूँ मग पाँव न देत सु तो हित लालन आपुन गौनै ।
मेरो कह्यो करि मौन तजौ कहि मोहन सो बलि बोल सलौने ।
सौंहैं दिवावत हौ रसखानि तू' सौंहैं करै किन लाखनि लौने ।
नोखी तूँ मानिनि मान कह्यो किन आन बसत मैं कीनो है कौने ।।'

× × ×

'मान की औधि है आधी घरी अरी जो रसखानि डरै हित कें डर ।
कै हित छोडियै परियै पाइनि ऐसें कटाछनही हियरा-हर ।
मोहनलाल को हाल विलोकियै नेकु कछू किनि छवै कर सो कर ।
नाँ करिवे पर वारे है प्रान कहा करि हैं अब हाँ करिवे पर ।।'

इन सवैयो मे मानवती नायिका का वर्णन है ।

'खेलै अलीजन के गन मैं उत प्रीतम प्यारे सो नेह नवीनो ।
बैननि बोध करै इन कौं, उत सैननि मोहन को मन लीनो ।
नैननि की चलिबी कछु जानि सखी रसखानि चितबै कौ कीनो ।
जा लखि पाइ जँभाइ गई चुटकी चटकाइ बिदा कर दीनो ।।'

यहाँ क्रियाविदग्धा नायिका है । यह नायिका अपने प्रेम-व्यापारो को अपनी क्रियाओ के द्वारा छिपाने का प्रयास करती है ।

'नाह वियोग बढ़्यो रसखानि मलीन महा दुति देह तिया की।
पङ्कज सौ मुख गौ मुरझाय लगीं लपटें बरि स्वांस हिया की।
ऐसे मैं आवत कान्ह सुने हुलसैं तरकी जु तनी अँगिया की।
या जग जोति उठी अंग की उसकाइ दई मनो बाती दिया की॥'

इसमें आगतपतिका है, क्योंकि विरहिणी को उसके प्रियतम के आने का समाचार मिल गया है।

नायक और नायिका का संयोग कराने में नायिका की सखियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। वे उसे प्रेरित करके नायक के पास भेज ही देती हैं। निम्नलिखित सवैये में अपनी सखी को प्रेरित करती हुई एक गोपी कहती है कि न जाने मिलन का ऐसा अवसर फिर मिले या न मिले, अतः तुम शीघ्र ही कृष्ण से जाकर मिल लो—

'सोई है रास मैं नैसुक नाचि कै नाच नचायौ कितौ सबको जिन।
सोई है री रसखानि किते मनुहारिन सूँघे चितौत न हो छिन।
तो मैं धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयौ बस हाहा करी तिन।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिरि लगर मोडो कनोडो करै छिन॥'

संयोग शृंगार के अन्तर्गत रसखान ने मिलन का वर्णन भी दिया है और सुरत का भी। मिलन का वर्णन इस सवैये में निहित है—

'एक समै इक ग्वालिन को ब्रजजीवन खेलत दृष्टि पर्‌यौ है।
बाल प्रवीन सकै करिकै सरकाइ कै भीरन चीर धर्‌यौ है।
यौं रस ही रस ही रसखानि सखी अपनो मनभायो कर्‌यौ है।
नन्द के लाड़िले ढाँकि दै सीस इहा हमरो वह हाथ भर्‌यौ है॥'

रसखान ने सुरत और सुरतान्त का भी वर्णन किया है। यथा—

'वह सोई हुती परजंक लली लला लीनो सु आइ भुजा भरिकै।
अकुलाइ कै चौंकि उठी सु डरी निकरी चहै अंकनि तैं फरिकै।
झटका झटकी मैं फटी पटुका दरकी अँगिया मुकता परिकै।
मुख बोल कढे रिस से रसखानि हटौ जू लला निबिया धरिकै॥'

इस सवैये में सुरत का वर्णन है। नायिका पलंग पर सोई हुई थी कि अचानक कृष्ण वहाँ पहुँच गए और उसे अपनी बाहुओं के पाश में बाँध लिया। वह

आकुल होकर और भयभीत होकर जग गई। उसने काफी जोर लगाया कि वह स्वयं को उस आलिंगन से मुक्त कर ले, पर उस संघर्ष में उसकी चोली और फट गई। तब उसने रोष में भरकर कृष्ण की भर्त्सना करनी शुरू कर दी। सुरत का यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है। और—

> 'सोई हुती पिय की छतियाँ लगि बाल प्रवीन महा मुद मानै।
> केस खुले छहरैं बहरैं फहरैं छवि देखत मैन प्रमानै।
> वा रस मैं रसखानि पगी रति रैन जगी अँखियाँ अनुमानै।
> चन्द पै बिम्ब और बिम्ब पै कैरव कैरव पै मुकतान प्रमानै।।'

इन विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि रसखान का सयोग वर्णन पूर्ण और सफल है। रूप प्रभाव से लेकर सुरतान्त तक के चित्रण इनके काव्य में मिलते हैं।

वियोग-वर्णन

जब किसी कारण से नायक और नायिका एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं तो इस दशा को वियोग की दशा कहते हैं और यह दशा वियोग या विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत आती है। प्राय सभी कवियों ने संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार को अधिक महत्त्व दिया है। इसका कारण यह है कि सयोग की अपेक्षा वियोग में पुन स्थितियाँ अधिक व्यापक और भावुक बन जाती हैं। जिस प्रकार अग्नि में तपाने पर रग में उज्ज्वलता और परिपक्वता आती है, उसी प्रकार वियोगाग्नि में जलकर मन के सात्विक भाव शुद्ध, परिष्कृत और परिपक्व बन जाते है।

वियोग-शृंगार के चार भेद माने गये है—

१. पूर्वराग
२. मान
३. करुण
४. प्रवास

पूर्णराग में प्रिय के गुण-कथन अथवा श्रवणमात्र में ही उससे मिलने की इच्छा उत्कट हो जाती है और उसका अभाव खटकने लगता है। मान में नायिका का रूठना आता है। कुछ आचार्य मान विप्रलंभ को अधिक महत्त्व नहीं देते।

इसका कारण यह है कि मान की स्थिति में वस्तुत वियोग होता ही नहीं है, क्योंकि रूठने पर भी नायक और नायिका साथ-साथ तो रहते ही हैं और एक दूसरे के दर्शन करते रहते हैं। अत यह स्थिति न तो करुण है और न प्रभावशाली। प्रवास विप्रलम्भ तब होता है जब किसी कारण से नायक विदेश चला जाता है। किसी शाप या प्रेम-पात्र की मृत्यु के कारण जो विरह-भावना होती है, वह करुण विप्रलम्भ के अन्तर्गत आती है। इस स्थिति को भी आचार्य अधिक महत्व नहीं देते, क्योंकि मृत्यु के उपरान्त तो सारा खेल ही समाप्त हो जाता है और तब सन्तोष तथा धैर्य की भावना का प्राधान्य हो जाता है। ये भावनाएँ कारुणिक भावों को जागृत करने में बाधक हैं।

रसखान-काव्य में वियोग की पृथक तीन स्थितियाँ ही मिलती हैं। यथा—

पूर्वराग —

१ '*लोक की लाज तज्यौ तबही जब देख्यौ सखी ब्रजचन्द सलोनो।*
खंजन मीन सरोजन को छवि गंजन नैन लला दिन होनो।
हेरें सम्हारि सकै रसखानि सो कौन तिया वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सो जोहन को सर बेधत प्राननि नन्द को छोनो॥'

२. 'उनही के सनेहन सानी रहैं उनही के जु नेह दिवानी रहैं।
उनही की सुनै न औ बैन त्यौ सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं।
उनही सग डोलन मैं रसखानि सबै सुख सिन्धु अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी अँसुवानी रहैं॥'

मान—

'प्रिय सो तुम मान कर्यौ कत नागरि आजु कहा विनहूँ सिख दीनी।
ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनो बरनो पग पौढ़ै नवीनो।
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख नैननि चैन महारस भीनो।
रसखानि न लागत तोहि कछू अब तेरी तिया किनहूँ मति छीनो॥'

प्रवास —

उपर्युक्त दोनों स्थितियों की अपेक्षा रसखान ने प्रवास विप्रलम्भ का अधिक वर्णन किया है। प्रियतम के विदेश चले जाने पर बीती बातें एक एक करके विरहिणी के मस्तिष्क में आती रहती हैं और उसे व्यथित करती रहती हैं

उसकी व्यथा को बढाती रहती हैं । जब भी प्रिय की बातें चलती हैं, विरहिणी को बीती घटनाएँ स्मरण हो आती हैं—

'प्रेम कथानि की बात चलें चमकें चित चचलता चिनगारी ।
लोचन बक विलोकनि लोलनि बोलनि मे बतियाँ रसकारी ।
सोहैं तरग अनग की अगनि कोमल यौं झमकै झमकारी ।
पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी ।।'

लेकिन अब चौपड खेलने का अवसर कहाँ ? उसका प्रिय तो विदेश मे बैठा हुआ है । केवल स्वप्न मे ही उससे मिलन हो सकता है—

'काहू कहूँ रतियाँ की कथा बतियाँ कहि आवत है न कछू री ।
आइ गोपाल लियो परि अक कियो मनभायो पियो रस कूँ री ।
ताही दिना सो गडी अखियाँ रसखानि मेरे अग-अग मे पूरी ।
पै न दिखाई परै अब बावरी दै कै वियोग बिथा की मजूरी ।।'

'वियोग बिथा की मजूरी, देने वाला प्रियतम अपनी क्रूरता का संबल लेकर नायिका को सदैव तडपाता रहता है, उसे अहर्निश व्यथित करता रहता है । नायिका का भोलापन केवल इतना था कि वह उसकी मुस्कान पर, उसकी बाँसुरी की तान पर और उसके मजुल मुख पर स्वय को न्योछावर कर बैठी । इससे वियोग-व्यथा भी मिली और समाज मे बदनामी भी हुई—

'वा मुसकान पै प्रान दियो जिय जान दियो वहि तान पै प्यारी ।
मान दियो मन मानिक के सग वा मुख मजु पै जोबन हारी ।
वा तन को रसखानि पै री तन ताहि दियो नहि ग्रान बिचारी ।
सो मुँह मोरि करी अब का हहा लाल लै आज समाज मे ख्वारी ।"

कृष्ण के बिना विरहिणी ने खाना और पहनना सब कुछ छोड दिया है—

'मोहन सो अटक्यो मनु री कल जाते परै सोई क्यो न बतावै ।
ब्याकुलता निरखे बिन मूरनि भागति भूख न भूपन भावै ।
देखे तें नेकु सम्हार रहै न तबै झुकि कै लखि लोग लजावै ।
चैन नही रसखानि दुहूँ विधि भूली सबै न कछु बनि आवै ।।'

वियोग-शृंगार के अन्तगत प्रकृति का उद्दीपन रूप म वणन करने की काव्यशास्त्रीय परम्परा है । रसखान ने इस परम्परा का भी पालन किया है । यथा—

'फूलत फूल सबै बन बागन बोलत भौंर बसंत के आवत।
कोयल की किलकार सुनै सब कंत विदेसन तें सब आवत।
ऐसे कठोर महा रसखानि जु नेकहू मोरी ये पीर न पावत।
हूक सी सालत है हिय मैं जब बैरिन कोयल कूक सुनावत ॥'

प्रिय का पथ देखते देखते विरहिणी की आँखें धुंधली पड़ गई हैं। जीभ उसके गुणों को रटते-रटते थक गई है, लेकिन अभी तक प्रिय के आने का कोई सन्देश ही नहीं मिलता है—

'मग हेरत धूंधरे नैन भये रसना रट वा गुन गावन की।
अंगुरी गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहिं पावन की।
पथिको कोउ ऐसो जु नाहि कहै सुधि है रसखान के आवन की।
मनभावन आवन सावन मैं कही औधि करी डग बावन की ॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान के वियोग-वर्णन में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता है। लेकिन सर्वत्र ऐसा नहीं हुआ है। कहीं कहीं रसखान पर रीतिकालीन जादू सर पर चढ़कर बोल उठा है। ऐसे स्थलों पर इनका वर्णन ऊहात्मक बन गया है। यथा —

'विरहा की जु आंच लगी तन मैं तब जाय परी जमुना जल मे।
विरहानल तें जल सूखि गयौ मछ्री बहि छाँडि गई तल मे।
जब रेत फटी रु पताल गई तब सेस जर्यौ धरती तल मे।
रसखान तबै इहि आंच मिटै जब आय कै स्याम लगैं गल मे ॥'

× × × ×

'गोकुलनाथ बियोग प्रलै जिमि गोपिन नंद जसोमति जू पर।
बाहि गयौ अंसुवान प्रवाहू भयौ जल मे अजलेन्द्र तिहूँ पर।
तीरथराज सी राधिका प्रान सु तो रसखान मत्तो ब्रज भू पर।
पूरन ब्रह्म हूँ ध्यान रह्यो थिर औधि अमैवट पात के ऊपर ॥'

लेकिन ऐसे स्थल कम ही हैं।

रसखान के कृष्ण

भारतीय साहित्य मे कृष्ण के स्वरूप का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। वैदिक साहित्य में कृष्ण का जिस रूप मे उल्लेख हुआ है, उससे उन्हे न तो अवतार की सज्ञा दी जा सकती है और न देवता की ही। महाभारत मे कृष्ण के अवतारी रूप का अवश्य उल्लेख मिलता है पर इस रूप के वर्णन की सीमा कम ही है, अर्थात् इस रूप मे इनका वर्णन थोडा ही हुआ है। महाभारत के अनन्तर कृष्ण की गणना पूर्ण अवतारो मे होने लगती है। गोपाल-रूप मे उनकी उपासना की पद्धति प्रचलित करना पुराणकाल की ही देन है। हरिवश-पुराण मे कृष्ण के स्वरूप का सबसे अधिक विस्तार और वर्णन पाया जाता है। इस पुराण मे कृष्ण के चरित को गोपियो से आबद्ध किया गया है। विष्णु-पर्व' के १२८ अध्यायो म कृष्ण की जीवन-गाथा वर्णित है जिसमें कृष्ण के चरित के अनेक पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है। यथा — पूतनावध, शकटवध, यमलार्जुन पतन, माखन-चोरी कालिय-मदन, धेनुक वध प्रलम्ब-वध, गोवर्धन-धारण इत्यादि। कृष्ण की इन लीलओ का वर्णन करते समय पुराणकार ने यथास्थल प्रकृति के भी मनोरम चित्रण प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त पद्म पुराण, वायुपुराण, वामनपुराण, सूय पुराण, गरुड-पुराण और विष्णुपुराण, मे भी कृष्ण से सम्बद्ध अनेक गाथाओ का वर्णन किया गया है। पद्मपुराण मे अध्याय ६९ से ७२ तक श्री कृष्ण के महात्म्य का वर्णन है और अध्याय ७२ से ८३ तक वृन्दावन आदि के महत्व का तथा कृष्ण की लीलाओ का विवेचन किया गया है। इसी पुराण मे गोपियो के अध्यात्मपक्ष और उनकी उत्पत्ति के विषय मे भी विस्तार स उल्लेख किया गया है। द्वारिका, गोकुल, मथुरा, वृन्दावन आदि का भी सुन्दर वर्णन है तथा द्वादश वनो का भी उल्लेख है। इस अध्याय के श्लोक ८८ से १०२ तक कृष्ण के सौन्दय का अत्यन्त मनोरम चित्रण किया गया है। कृष्ण भक्त साहित्य पर इस पुराण का काफी प्रभाव है। पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने इसमे से अनेक बातो का तो ज्यों का त्यो ही अपना लिया है। वायुपुराण मे स्यमन्क मणि की कथा का विस्तार पूवक वणन करके फिर कृष्ण जन्म का वर्णन किया गया है। इसके

पश्चात् कृष्ण की सोलह सहस्र रानियों तथा उनके पुत्रों आदि का वर्णन है। वामनपुराण में कृष्ण जीवन से सम्बद्ध केवल केशी, मुर और कालनेमि के वध की कथाओं का वर्णन है। कूर्मपुराण मे यदुवंश वर्णन के अन्तर्गत कृष्ण के पुत्रों की कथा वर्णित है। गरुणपुराण के १४४ वें अध्याय में कृष्ण की लीलाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इस पुराण मे कृष्ण-विषयक कथाएँ ये हैं— पूतना-वध, यमलार्जुनोद्धार, गोवर्धन-धारण, केशी-चाणूर-वध, कालिय मर्दन, शकटासुर-वध, कृष्ण की रुक्मिणी सत्यभामा आदि आठ रानियों का उल्लेख और सदीपन गुरु के पास विद्याध्ययन। विष्णुपुराण मे चौथे अंश के पन्द्रहवें अध्याय मे श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है। पाँचवे अंश मे कृष्ण-चरित का विशेष रूप से अंकन हुआ है। इसमे कृष्ण की लीलाओं के साथ-साथ रासलीला का भी वर्णन है।

कृष्ण चरित से सम्बद्ध भागवतपुराण सब पुराणों से अधिक महत्वपूर्ण है। कृष्णभक्तों ने अपने मार्ग मे इसी को आधार के रूप मे ग्रहण किया है। महाभारत से लेकर पुराणकाल तक जितना भी कृष्ण का विवेचन हुआ है, वह सब इस पुराण में सग्रहीत है यद्यपि इस पुराण मे कृष्ण के सभी रूप आ गये हैं, पर प्रमुखता रसिकराज कृष्ण की ही है। डा० हरवंशलाल शर्मा ने बाल-लीलाओं को छोड़कर कृष्ण के शेष जीवन चरित की दृष्टि से भागवत के प्रतिपाद्य को, घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक इन चार भागों में विभाजित किया है और इनका विवेचन निम्नलिखित शब्दों मे किया है—

१. घटनात्मक—श्रीमद्भागवत के वे स्थल घटना-प्रधान स्थल हैं जो ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हैं। परन्तु जैसे गोस्वामी तुलसीदास श्री मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के चरित्र को चित्रित करते हुए 'रामचरितमानस' म ग्रन्थ के प्रधान सूत्र भक्ति को नही छोड़ते और उसी भावना से अभिभूत होकर अनजाने ही राम के चरित मे अलौकिकता का उपादेश कर जाते हैं, उसी प्रकार व्यास जी का लक्ष्य भी भगवत भक्त निरूपण द्वारा भक्तिरस का परिपाक करना है। अतएव भागवतकार ने घटनात्मक स्थलों पर भी भगवान के दिव्य मंगल-स्वरूप की कई बार स्तुति कराई है। जैसे—भौमासुर-वध के समय, बाणासुर-संग्राम के समय तथा वेद-स्तुति आदि। इन घटनाओं मे अलौकिक घटनाओं का भी सम्मिश्रण है। जैसे स्वर्ग से कल्पवृक्ष लाना, देवकी के मृतक पुत्रों को लाना आदि। ऐसे स्थलों पर कवि की प्रतिभा मुखर हो उठती है और वह भगवान के स्वरूप मे इतना तन्मय हो जाता है कि उसके सब भाव अभिभूत हो जाते हैं तथा दुःखानुभूति रागात्मिका वृत्ति के साथ उन स्तुतियों और गाथाओं के रूप मे साक्षात् रूप धारण कर लेती है। श्रीमद्भागवत मे जहाँ-जहाँ भी इन घटनाओं का उल्लेख है वहीं वहीं कवि की इस अनुभूति का परिचय मिलता है। इस घटनात्मक भाग

भागवतकार का उद्देश्य भी भक्ति की दृढता ही है।

२ उपदेशात्मक—भागवत के उपदेशात्मक भाग मे हमे श्रीकृष्ण योगेश्वर, उपदेष्टा तथा विज्ञानी के रूप मे मिलते हैं। श्रीमद्भागवत मे दो प्रकार के उपदेश हैं—साधारण तथा विशेष। साधारण उपदेश वे उपदेश है जो साधु, महात्माओ, गुरुजनो या मित्रो ने दिए हैं। इन उपदेशो का अभिप्राय कर्तव्यकर्म का अनुष्ठान करते हुए भगवद्भक्ति करना है। विशेष उपदेशो के रूप मे वे स्थल आते हैं, जहाँ उपदेश किसी व्यक्ति विशेष को विशेष रूप से दिये गए हैं। जैसे उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेश, ध्रुव को नारद का उपदेश, चतुश्लोकी भागवत तथा कपिलगीता आदि। ये उपदेश बडे महत्वपूर्ण हैं क्योकि इनसे दो बातो की व्याख्या हुई है—परमतत्व की ओर ज्ञान-भक्ति कर्म की।

३. स्तुत्यात्मक—भागवत का स्तुत्यात्मक भाग भी बडा महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसके द्वारा भी कृष्ण के वास्तविक रूप की व्याख्या की गई है। य स्तुतियाँ दो प्रकार की हैं—सकाम और निष्काम। सकाम स्तुतियाँ वे है जो किसी कामना से प्रेरित होकर की गई है। जैसे—कारागार स मुक्त होने के लिए, किसी आपत्ति या दैहिक, दैविक, भौतिक तापो की निवृति के लिए की गई हैं। निष्काम स्तुतियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो वे जिनमे तत्त्व-ज्ञान की प्रधानता है और दूसरी वे जिनमे साधन की प्रधानता है। वेद-स्तुति तत्वज्ञान प्रधान स्तुति कही जायगी, क्योकि इसमे सब तत्वो का पर्यवसान एक ही तत्त्व मे दिखाया गया है। प्रह्लाद अम्बरीष, ब्रह्मा, ध्रुव आदि की स्तुतिया साधन-प्रधान कही जायेंगी क्योकि इनम भक्त मुक्ति का इच्छुक न होकर केवल भगवान के रूप तथा लीला के स्मरण, कीर्तन मे आनन्द लेता है।

४. गीतात्मक—श्रीमद्भागवत का चौथा भाग गीतात्मक है। इन गीतो मे ग्रन्थकार का हृदय साक्षात् रूप स द्रवित होता हुआ प्रतीत होता है। उसकी अन्तरात्मा इन गीतो मे पूर्णरूपेण प्रस्फुटित है। ये हृदय के व स्वत प्रवाही स्रोत हैं जिनका अवरोध कवि के वश की बात नही थी। उसकी आत्मा की व्यथा एव अन्तर्वेदना के ये गीत साकार प्रतिबिम्ब हैं। प्रेम और विरह की भावनाओं से ओतप्रोत इन गीतो की सख्या अधिक नही है। पाँच गीत गोपियो के तथा एक द्वारिका की कृष्ण-पत्नियो का है। ये छ गीत दशम स्कन्द मे

आए हैं। एकादश स्कन्ध में भी दो गीत आये हैं—एक पिंगला का और दूसरा एक भिक्षुक ब्राह्मण का। पिंगला का गीत निर्वेद-गीत है जो संसार के कटु अनुभवों से उत्पन्न अन्तर्वेदना का अभिव्यंजन करता है। सात्विक और सदाचारी होने पर भी दुनिया के हाथों अपमानित होने वाले ब्राह्मण भिक्षुक के गीत में भी वेदना की झलक है। कृष्ण की पत्नियों का गीत दशम स्कन्ध के ९०वें अध्याय में है। उनका मन भगवान की लीला में इतना तन्मय हो जाता है कि वे अपने को भूल जाती हैं। सांसारिक अनुभवों का ज्ञान लुप्त हो जाता है और आत्म-विभोरता की अनिर्वचनीय दशा में उनके हृदय हृद से अनायास ही भावधारा बह निकलती है। समस्त प्रकृति उन्हें कृष्णमयी लगती है और वे प्रकृति के सब पदार्थों को सम्बोधित करके उनका कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करती हैं। वे यह भी भूल जाती हैं कि कृष्ण उनके समीप हैं। गोपी गीतों का वर्णन तो वर्णनातीत है। उनके पाँचों गीतों में अनुपम प्रेम की झलक है। प्रतीत होता है हृदय वाणी के साथ लिपटा हुआ चला आया है।

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

१. कृष्ण के दो रूप हैं—सगुण कृष्ण और निर्गुण कृष्ण।
२. कृष्ण का सौन्दर्य अमिट है।
३ कृष्ण और गोपियों में घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध है।
४ कृष्ण अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं।

रसखान ने भी कृष्ण के स्वरूप में इन्हीं विशेषताओं को प्रतिष्ठित किया है।

सगुण कृष्ण

सिद्धान्ततः कृष्णभक्त-कवि कृष्ण का निर्गुण रूप ही स्वीकार करते हैं, पर व्यवहारतः उन्हें कृष्ण का सगुण और साकार रूप ही मान्य है। इसका कारण यह है कि भक्ति के लिए किसी साकार आलम्बन की आवश्यकता होती है क्योंकि निराकार आराध्य पर मन की एकाग्रता प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। सूरदास के शब्दों में—

'रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें सूर सगुन लीला पद गावै॥'

इस सगुण कृष्ण में कृष्णभक्तों ने अनेक प्रकार की विशेषताओं का समावेश किया है। ये विशेषताएँ ही कृष्ण की विविध लीलाओं के नाम से

पुकारी जाती हैं। यथा—बाललीला रासलीला, फागलीला, कुञ्जलीला आदि। रसखान ने अपने काव्य की सीमित परिधि म इन सभी लीलाओं को समाविष्ट करने का प्रयास किया है।

बाललीला म कृष्ण के बचपन की विभिन्न झाँकियाँ हैं। कृष्ण को खिलाते समय यशोदा किसी गाय की ओट लेकर 'ना' शब्द कहती है जिसे सुनकर कृष्ण अपनी ओर सब बातें को भूलकर यशोदा को ढूँढने लगत है। वे कुछ पग चलकर जब यशोदा जी को नहीं देखत तो मचल जाते हैं और पृथ्वी पर लोटकर अपने वस्त्रो को धूल धूसरित कर लेत हैं। तब यशोदा जी उसके पास आती हैं, कृष्ण हँसन लगत हैं। यशोदाजी अपना सारा मातृत्व कृष्ण पर बलिहार कर देती हैं—

> ता' जसुदा कह्यौ धेनु की ओट ढिंढोरत ताहि फिरैं हरि भूलैं।
> ढूँढन कूँ पग धारि चलैं मचलैं रज माँहि बिधूरि दुकूलैं।
> हेरि हँसे रसखान तबै उर भाल तैं टारि कैं बाद लटूलैं।
> सो छबि देखि अनन्दव नन्दजू अगनि अग समात न फूलैं।'

जब कृष्ण बडे हो जाते है तो उनकी शोभा म भी अभिवृद्धि हो जाती है। धूल से सना हुआ उनका शरीर, सिर पर बनी हुई चोटी, पैरो म पहनी हुई पैंजनी और धारण किया हुआ पीला वस्त्र अत्यन्त ही शोभायमान लगता है। वह प्रसन्नता स परिपूर्ण होकर माखन और रोटी लिए हुए अपन आँगन म घूम घूमकर खा रहे हैं कि अकस्मात् एक कौवा आता है और उनके हाथ से माखन और रोटी छीनकर ले जाता है—

> 'धूरि भरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
> खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी।
> वा छबि को रसखान बिलोकत वारत काम कला निज कोटी।
> काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सौं लै गयौ माखन रोटी।'

कृष्ण जब किशोरावस्था को प्राप्त कर लेते है तो उनका नटखटपना बहुत अधिक बढ जाता है। व गोपियो को अपनी ओर आकर्षित करने क लिए विविध लीलाओं की सयोजना करत हैं। जिनमे स एक रासलीला भी है। रासलीला म कृष्ण अनेक प्रकार स गोपियो को अपनी ओर आकर्षित करन का प्रयत्न करते हैं। कभी वे अपनी बाँसुरी क स्वरो में किसी गोपी का नाम ले देते हैं और कभी अपनी अन्य चेष्टाओं से उन्हे रिझाने की कोशिश

करते हैं। यथा—

१ 'अधर लगाइ रस प्याइ बाँसुरी बजाय,
मेरा नाम गाइ हाइ जादू कियो मन मैं।
नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करि कै अचेत चेत हरि कै जतन में।
झटपट उलटि पुलटि पट परिधान,
जानि लागीं लालन पै सबै बाम बन मैं।
रस रास सरस रंगीलो रसखानि आनि,
जानि जोर जुगुति बिलास कियौ जन मैं।

२ आज पटू मुरली-वट के तट नन्द के साँवरे रास रच्यौ री।
नैननि सैननि बैननि सो नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री।
जद्यपि राखन को कुलकानि सबै ब्रज बालन प्रान पच्यौ री।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानी कों अंत लच्यौ पै नच्यौ री।

३ कीजै कहा जु पै लोग चवाव सदा करिबो करि हैं ब्रजमारो।
सीत न रोकत राखत कागु सुगावत ताहि री गावनहारो।
आव री सीरी करै अँखियाँ रसखान धनै धन भाग हमारो।
आवत है फिरि आज बन्यो वह राति के रास को नाचनहारो॥

४ देखत सेज बिछी ही अछी सु बिछी विष सो भिदिगो सिगरे तन।
ऐसी अचेत गिरी नहिं चेत उपाय करे सिगरी सजनी जन।
बोली सयानी सखी रसखानि बचै यों सुनाइ कह्यौ जुवती गन।
देखन कौं चलियै री चलो सब रास रच्यौ मनमोहन जू बन॥

रासलीला की भाँति फागलीला में भी कृष्ण और गोपियों के प्रेम की मनोहर झाँकियाँ प्रस्तुत की गई हैं। होली आ गई है। गोपियाँ कृष्ण से और कृष्ण गोपियों से फाग खेलते हैं। उस समय कृष्ण की जो शोभा होती है उसका वर्णन करना आसान नहीं है—

'खेलत फागु लख्यौ पिय प्यारी कों ता सुख की उपमा किहिं दीजै।
देखत ही बनि आवै भलै रसखान कहा है जौ वारि न कीजै।
ज्यों ज्यों छबीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यों त्यों छबीलो छकै छकि छाक सों हेरै हँसै न टरै खरो भीजै।

वस्तुतः जब से फागुन का मास प्रारम्भ होता है कृष्ण फागलीला में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि ब्रज की शायद ही कोई नवयुवती बची हो जो

कृष्ण के साथ फागलीला न करे—

'फागुन लाग्यो सखी जब त तब तें ब्रजमण्डल घूमें मच्यौ है।
नारि नवली बचें नहि एक बिसेस मरें सबै प्रेम अच्यौ है।
साँझ सकारे वही रसखानि सुरग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है।

कृष्ण की कु ज लीलाएँ भी वैसी ही आकर्षक हैं जैसी अन्य लीलाएँ। जब मुस्कराते हुए कृष्ण कु ज से निकलते हैं तो उनकी शोभा को जो भी गोरी देख लेती है वह इतनी भाव विभोर हो जाती है कि उसे कृष्ण के अतिरिक्त और कोई बात ही याद नहीं रह पाती। उसके सारे सामाजिक बन्धन टूट जाते हैं और नारी सुलभ लज्जा की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है—

रग भरयो मुस्कात लला निकस्यो कल कु जन त सुखदाई।
मैं तबही निकसी घर तें तकि नन बिसाल की चोट चलाई।
घूमि गिरी रसखानि तबै हरिनी जिमि बान लगें गिरि जाई।
टूटि गयो घर को सब बन्धन टुटिगो आरज लाज बडाई।

इन लीलाओ के अतिरिक्त दानलीला चीरहरण लीला आदि का वणन भी रसखान ने किया है।

निर्गुण कृष्ण

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कृष्णभक्त कवियो को सिद्धान्तत कृष्ण का निगुण स्वरूप ही मान्य है। इस स्वरूप का प्रतिपादन सभी कवियो न किया है। सूरदास की विशेषता तो यह रही है कि व कृष्ण के साकार अथवा अवतारी रूप का वर्णन करते करते बीच बीच म उनके अलौकिकत्व का भी सकेत देते जाते हैं। यथा—

जसोदा तेरो मुख हरि जोव।
कमलनैन हरि हिचिकिनि रोवैं बन्धन छोरि जसोव।
जो तेरो सुत खरो अचगरो तऊ कोखि को जायो।
कहा भयो जो घर कैं ढोटा चोरी माखन खायो।
कोरी मटुकी दह्यो जमायो जाख न पूजन पायो।
तिहि घर देव पितर काहू को जा घर कान्हर आयो।

गाजौ नाम तेन भ्रम छूटे कम फन्द सब काटै ।
मोई इहां जवरी बांध, जननी साटि लै डाटै ।
दुखित जानि दोउ सुत कुबेर के ऊखल आपु बंधायौ ।
सूरदास प्रभु भक्त हेत ही देह धारि कै आयौ ।'
× × × ×
भीतर ते बाहर लौं आवत ।
घर आंगन अति चलत सुगम भए देहरि अँटकावत ।
गिरि गिरि परत जात नहि उलघी अति श्रम होत नघावत ।
अहुँठे पैग बसुधा सब कीनी धाम अवधि बिरमावत ।
मन ही मन बलबीर कहत हैं ऐसे रंग बनावत ।
सूरदास प्रभु अगनित महिमा भगतनि कैं मन भावत ।

रसखान ने पूर्णरूप से और स्पष्ट रूप से कृष्ण के अलौकिकत्व का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि जिस कृष्ण का जप शंकर जैसे देव करते हैं जिनका ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म में वृद्धि करते हैं जिनका तनिक सा ध्यान भी हृदय में आते ही अत्यन्त मूर्ख भी निपुण ज्ञान के भण्डार बन जाते हैं जिस पर देव किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणों को न्यौछावर करके सजीवता प्राप्त करती हैं उसी कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ थोड़ी सी छाछ के लिए नाच नचाती हैं—

संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढावैं ।
नैंक हियें जिहि आवत ही जड़ मूढ़ महा रसखानि कहावैं ।
जा पर देव अदेव भू अगना वारत प्रानन प्रानन पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।'

जिस कृष्ण के गुणों का शेषनाग गणेश शिव सूर्य और इन्द्र निरन्तर स्मरण करते हैं वेद जिसके स्वरूप का निश्चित ज्ञान प्राप्त करके उसे अनादि अनन्त अखण्ड अच्छेद्य अभेद्य आदि विशेष विशेषणों से पुकारते हैं। नारद शुकदेव और व्यास जैसे प्रचण्ड पण्डित भी अपनी पूरी कोशिश करके जिसके स्वरूप का पता न लगा सकने के कारण हार कर बैठ गये हैं उसी कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ थोड़ी सी छाछ के लिए नाच नचाती हैं—

सेष गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड अछेद अभेद सु वेद बतावैं ।

नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।'

जिस कृष्ण के गुणो का गान अप्सरा, गधर्व, शारदा और शेपनाग सभी करते हैं गणेश जिसके अनन्त नामों का स्मरण करते हैं, ब्रह्मा और शिव भी जिसके स्वरूप को नही जान पाते, जिसे प्राप्त करने के लिए योगी, यति, तपस्वी और सिद्ध निरन्तर समाधि लगाये रहते है, फिर भी उसका भेद नही जान पाते, उन्ही कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोडी सी छाछ के लिए नाच नचाती हैं—

'गावैं गुनी गनिका गधरब औ सारद सेस सबै गुन गावत ।
नाम अनन्त गनत गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ।'

ब्रह्मा आदि अनेक योगी, जिस कृष्ण के स्वरूप को जानने के लिए समाधि लगाये रहते हैं पर उसका पार नही पाते, शेषनाग अपनी सहस्रों जिह्वाओं से जिसका निरन्तर जाप करते रहते है, महर्षि नारद अपने हाथ में वीणा लेकर और उसे बजाते हुए तीनो लोको में फिरते है पर कोई भी ऐसी साक्षी नही मिलती जिसके आधार पर वे यह दावा कर सकें कि उन्होने कृष्ण के स्वरूप को जान लिया है । ऐसे दुर्बोध्य और अनत कृष्ण को अहीर की लडकियाँ थोडी सी छाछ के लिए नाच नचाया करती हैं ।

शिव जिनको आराध्य मानकर उनका ध्यान करते है, सारा ससार जिनकी पूजा करता है, जिनसे महान् और कोई दूसरा देव नही है, वही कृष्ण साकार रूप धारण करके अवतरित हुआ है और जो विराट् पुरुष है, वही अपनी लीला दिखाने के लिए माटी खाता फिरता है—

'सभु धरैं ध्यान जाको जपत जहान सब,
ताते न महान् और दूसर अब देख्यौ मैं ।
कहै रसखान वही बालक सरूप धरै,
जाको कछु रूप रग अद्भुत अवलेख्यौ मैं ।
कहा कहूँ आली कछु कहती बनै न दसा,
नन्द जी के अंगना मे कौतुक एक देख्यौ मैं ।

जगत को ठाटी महापुरुष विराटी जो,
निरजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं ॥'

कृष्ण की प्राप्ति के लिए ही सारा जगत प्रयत्नशील है। ये वही कृष्ण हैं जिनकी पूजा ब्रह्मा जी रात दिन किया करते हैं सदा भक्त वत्सल शिव जिनका पूर्ण तन्मयता से ध्यान करते हैं, जिनके लिए ब्रह्मचारी, मूर्ख राजा निर्धन सभी प्रकार के लोग योगी बनकर शीतादि के द्वारा अपने अंगो को शिथिल बनाते हैं वही आनन्द के भण्डार कृष्ण प्राणो के प्राण हैं जिन्हे देखने के लिए लाखो अभिलाषाऍं लाखो प्रकार से बढती हैं जो पृथ्वी पर रहने वाले लोगो का अहकार मिटाने वाले हैं कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले हैं वे ही यशोदा जी के आगे सूरजनी लेने के लिए मचल कर खडे हुए हैं—

'वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत हैं रैन दिन,
सदा सिव सदा ही धरत ध्यान गाढे हैं।
वेई विष्नु जाके काज मानी मूढ राजा रक,
जोगी जती ह्वै के सीत सह्यौ अग डाढे है।
वेई ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्रानन के
जाके अभिलाख लाख लाख भाँति बाढे हैं।
जसुधा के आगे वसुधा के मान मोचन ये,
तामरस-लोचन खरोचन कौं ठाढे हैं॥'

इसके अतिरिक्त कृष्ण का अलौकिकत्व प्रतिपादन करने के लिए रसखान ने कालिय दमन और कुवलियापीड-वध जैसी कथाओ का भी उल्लेख किया है।

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य कृष्ण भक्त कवियो की भाँति रसखान ने भी कृष्ण के लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के रूपो का वर्णन किया है। वस्तुत इनके कृष्ण हैं तो अलौकिक ही, पर अपने भक्तो को अलौकिक आनन्द प्रदान करने के लिए और लोक की रक्षा करने के लिए वे साकार रूप ग्रहण करके अवतार लेते हैं।

: ८ :

रसखान का सौन्दर्य-चित्रण

कृष्ण-भक्ति प्रेम मूलक भक्ति है। प्रेम के लिए आकर्षण एक प्रमुख तत्व है और आकर्षण के लिए सौन्दर्य का होना अनिवार्य है। सौन्दर्य दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तरिक सौन्दर्य और वाह्य सौन्दर्य। आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत मन की उदात्त भावनाएं आती हैं। वाह्य सौन्दर्य शारीरिक सौन्दर्य है। कृष्ण-काव्य में इन दोनों प्रकार के सौन्दर्यों का विस्तार से चित्रण हुआ है। रसखान ने भी अपने सौन्दर्य चित्रण में इस परम्परा का पालन किया है।

आभ्यन्तरिक सौन्दर्य

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत मन की उदात्त भावनाएँ आती हैं। भक्त की इससे अधिक उदात्त भावना और क्या हो सकती है कि वह स्वयं को सर्वरूपेण अपने आराध्य के प्रति समर्पित कर दे। रसखान काव्य में, अन्य कृष्ण-भक्तों की भाँति समर्पण की यह भावना पूर्णरूपेण लक्षित होती है। इन्होंने जिस प्रकार स्वयं को अपने आराध्य के प्रति समर्पित किया है उसी प्रकार अपनी गोपियों में भी समर्पण की यह भावना समाविष्ट की है। पहले कवि की समर्पण भावना को देखिए।

रसखान का अपने आराध्य के प्रति इतना गम्भीर लगाव है कि ये प्रत्येक स्थिति में उसी का सान्निध्य चाहते हैं चाहे इसके लिए इन्हें किसी भी प्रकार का फल भुगतना पड़े। इसीलिए ये कहते हैं कि आगामी जन्म में यदि मुझे मनुष्य योनि मिले तो मैं वही मनुष्य बनूं जिसे ब्रज और गोकुल के ग्वालों के साथ रहने का अवसर मिले। यदि मुझे पशु योनि मिले तो मेरा जन्म ब्रज में ही हो, ताकि मैं नन्द की धेनुओं के मध्य विचरण कर सकूँ। यदि मैं पत्थर बनूँ तो उसी पर्वत का बनूँ जिसे इन्द्र का गर्व खंडित करने के लिए कृष्ण

न अपनी अगुलियो पर धारण किया था और यदि मैं पक्षी बनूँ तो सदैव यमुना के किनारे उगे हुए वृक्षों की शाखा पर चहकता रहूँ—

'मानुप हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव क ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मरो चरौं नित नन्द की धनु मझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसरो करौं मिलि कालिन्दी कूल-कदब की डारन॥'

इसी प्रकार रसखान अपने शरीरावयवो की सार्थकता तभी मानते हैं जब उनसे किसी प्रकार आराध्यदव की सवा की जाय। य अपन आराध्यदेव स विनती करत हैं कि मुझे सदा अपन नाम का स्मरण करने दो ताकि मेरी जीभ इन्द्रियो से प्राप्त आनन्द म न डूब जाय। मुझे कुजो मे बनी हुई अपनी कुटी मे झाड़ू लगान दो, जिसस मरे हाथ सत्कर्म म सदैव प्रवृत्त रहें। मुझे ब्रज की धूल म अपन शरीर को धूसरित करने दो, जिससे मुझे अणिमा आदि आठो सिद्धियों का सुख मिल जाय। यदि आप मुझे निवास करने के लिए कोई विशेष स्थान दना चाहते हैं तो यमुना तट पर खडे हुए उन्ही कदम्ब वृक्षों की डालियो पर दीजिए जहाँ पर आप अनक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे—

जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करैं करनी जु पै कु ज-कुटीरन दहु बुहारन।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज रेनुका अग सवारन।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही कालिन्दी-कूल-कदब का डारन॥'

जिस प्रकार कवि न कृष्ण क प्रति अपनी उदात्त भावनाओ की अभिव्यक्ति की है उसी प्रकार गोपियो की उदात्त भावनाओ को भी व्यक्त किया है। य भावनाएँ कृष्ण क प्रति आकर्षण म परिलक्षित होती हैं। गोपियाँ जब भी कृष्ण को दखती हैं, तभी उनके हृदय का सौन्दर्य उमड पडता है और व कृष्ण क प्रत्यक अग म उनकी प्रत्यक वस्तु म सौन्दर्य का अपार पारावार तरंगित देखती है यदि कभी व कृष्ण की अलकावलि पर, विशाल भाल पर, हृदय पर, झूलती हुई बनमाल पर भाव विभोर हो उठती है—

'सखि गोधन गावत हो इक ग्वार लख्यो वहि डार गहे बट की।
अलकावलि राजति भाल विसाल लसै बनमाल हियें टटकी।

जब तें वह तानि लगी रसखानि निवारै को या मग हौं भटकी ।
लटकी लट सो दृग मीननि सो बनसी जियवा नट की ग्रटकी ।।'

तो कभी उसे देखते ही उसके सौन्दर्य का ऐसा समन्वित प्रभाव होता है कि उनका शरीर रांग की भाँति ढर जाता है—

'गाइ दुहाइ न या पै वहू, न कहूँ यह मेरी गरी निकरयो है ।
धीरसमीर कलिन्दी के तीर खर्यो रहै ग्राजु ही डीठि पर्यो है ।
जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढरि रांग सो ग्रांग ढर्यो है ।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत टेरत ग्रानि ग्रर्यो है ।।'

इसी प्रकार के ग्रन्य ग्रनेक उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते है जिनमे गोपियो की उदात्त भावनाएँ—भावो का सौन्दर्य—पूर्णतया व्यक्त हुग्रा है ।

बाह्य सौन्दर्य

बाह्य सौन्दर्य के ग्रन्तगत रसखान ने कृष्ण ग्रौर राधिका के सौन्दर्य का वर्णन किया है । यह वणन दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

१ शारीरिक सौन्दय
२ चेष्टागत सौन्दर्य

रसखान ने कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए जिन ग्रगो को चुना है, वे बहुत सीमित ग्रौर परम्परागत है । ग्रत इनके इस वर्णन मे ग्रपेक्षित व्यापकता का ग्रभाव है । प्राय इतर शब्दो मे पुनरावृत्ति सी ही हुई है । पर यह पुनरावृत्ति भी भावपूर्ण ग्रौर कवित्वपूर्ण है । कुछ उदाहरण देखिए ।

यशोदा जी के द्वारा सज्जित कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी ग्रपनी सखी से कहती है कि ऐ सखि ! मैं ग्राज ही प्रात काल नन्द के उस भवन मे गई थी जहाँ रस सागर कृष्ण थे । मैं उन्हे देखते ही उनम ग्रनुरक्त हो गई । उन जैसा पुत्र पाकर यशोदा जी को जो सुख मिला है उसका वर्णन नही किया जा सकता । मैं तो भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि उनका यह पुत्र लाख करोड युगो तक जीवित रहे । यशोदा जी ने उनके सिर पर तेल लगाकर ग्रौर ग्रांखो मे काजल डाल कर उनके मुख पर डिठौना लगा दिया । उनके गले मे हमेल ग्रौर हार डालकर यशोदा जी उसके सौन्दर्य को निहारती रही, उन पर स्वय को न्यौछावर करके उन्हें चूमती रही—

'ग्राजु गई हुती भोर ही हौं रसखान रई वहि नन्द के भौनहिं ।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं ।।

तेल लगाइ लगाइ कै अंजन, भौंहैं बनाइ बनाइ डिठौनहिं।
डालि हमेलनि हार निहारत, वारत ज्यों चुमकारत छौनहिं॥

कृष्ण का सौन्दर्य वस्तुतः इतना अमित है कि उस पर कामदेव भी अपनी करोड़ों सुन्दरताओं को न्योछावर करने के लिए विवश हो जाता है—

'धूरि भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अंगना, पग पैंजनि बाजति पीरी कछोटी॥
वा छबि को रसखान बिलोकत, वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।'

कृष्ण के गले की मोतियों की माला का, घूँघरदार केशराशि का, जड़ाऊ आभूषणों का सिर पर जरीदार पगड़ी का सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है। इस सौन्दर्य का दर्शन तो पूर्व संचित पुण्यों से ही होता है—

'मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघर वारी।
अंग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी॥
पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चारयौ दिसानि की लै छबि, आनिकै झाँकै झरोखे मैं बाँके बिहारी॥

इनके मस्तक पर लगी हुई गोधूलि को, हृदय पर लहराती हुई बनमाला को सुरीली बंशी को और पीत वस्त्र की फहराहट को देखकर गोपियाँ इतनी भाव विभोर हो जाती हैं कि वे सब प्रकार के दुखों को भूलकर आनन्द में डुबकियाँ लेने लगती हैं—

गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैया पाछे ग्वाल गावैं मृदु तानि री॥
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर जैसी,
बंक चितवनि मंद मंद मुसकानि री॥
कदम बिटप के निकट तटनी के तट
अटा चाढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री॥
रस बरसावै तन-तपनि बुझावै नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री॥

कृष्ण के नेत्रों की वक्रता इतनी तीक्ष्ण है कि कोई गोपी उसकी चोट को सहन नहीं कर सकती, इसीलिए उनकी शोभा से समूचे व्रज में कोलाहल मचा हुआ है—

'नैननि बंक बिसाल के बाननि झेलि सकै अस कौन नवेली।
बेधत है हिम तीछन कोर सुमार गिरी तिम कोटिक हेली॥
छोड़ै नही दिनहूँ रसखानि सु लाग फिरै द्रुम सो जनु बेली।
रौरि परी छवि की ब्रज-मंडल कुंडल गंडनि कुंतल केली॥'

उनकी दृष्टि और वाणी विलक्षण है, उनकी चंचल दृष्टि भी विलक्षण सी है। उनके कपोलो पर कुण्डलो की छवि हाथी के गंडस्थल पर पडी हुई छवि की भाँति विलक्षण है। जिस समय वे पेड की डाली पकड कर खडे होते है तो उस समय उनकी जो शोभा होती है, उसका वर्णन करना कठिन है। कोई भी गोपी उनकी उस समय की शोभा से और उनकी मधुर मुस्कान से अपने को नही बचा सकती—

'अलबेली बिलोकनि बोलनि औ अलबेलियै बोल निहारन की।
अलबेली सी डोलति गजनि पै छबि सो मित कुण्डल बारन की॥
भट्ट ठाढो लख्यौ छबि कैसे कह्यौ रसखानि गहे द्रुम डारन की।
हिय मैं जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की॥

कृष्ण की विशाल आँखें, पुष्ट कपोल, मधुर भाषण, सुन्दर हँसी, सुन्दर मुख का जो भी गोपी एक बार देख लेती है, वह पागल होकर उसे गली गली म ढूँढती फिरा करती है—

'बाँकी बडी अँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि कोकिल बानी।
सुन्दर हार सुधानिधि सो, मुख मूरति रग सुधारस सानी॥
ऐसी नवेली न देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डोलति है बन बीथिन म रसखानि मनोहर रूप लुभानी॥

कृष्ण के नेत्र इतन विशाल हैं कि वे कानो तक खिंचे रहते है। उनके केश मुख पर लहराते रहते है। उनकी सुन्दर शोभा की कान्ति चारो ओर बिखर कर करोडो प्रकार के खेल दिखाती है। वास्तविकता तो यह है कि उसकी शोभा झक कर, झूमकर और अमृत को चूमकर चन्द्रमा की चादनी को चुराने वाली है—

'दृग दूने खिंचे रहै कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही।
छवि छैल छबीली छटा घहराय कै कौतुक कोटि दिखाइ रही॥
झुकि झूमि झमाकनि चूमि अमी चहि चाँदनो चद चुराई रही।
मन भाइ रही रसखानि महा छबि मोहन की तरसाइ रही॥'

सन्ध्या समय जब कृष्ण गायों को चराकर वापिस लौटते हैं तो सारे गोरज से धूसरित हो जाते हैं। उस समय कृष्ण की शोभा ऐसी दिखाई देती है मानो आग के पहाड़ से बुझकर धुएं के बादल चढ़े चले आ रहे हों—

सौंझ समै जिहि देखति ही जिहि देखन को मन मो ललकै री।
ऊँची अटान चढ़ी ब्रजबाम सु लाज मनहू दुरै न्भक री॥
गोधन धूरि की धूँधरि मैं तिनकी छबि यो रसखानि तकै री।
पावक के गिरि ते बुझि मानो धुवाँ-लपटी लपटैं लपकैं री॥

कृष्ण का शारीरिक सौन्दर्य स्वाभाविक रूप में बहुत ही आकर्षक है। पर इस पर स्वाभाविक रीति से धारण किये हुए आभूषण इसे और भी अधिक आकर्षक बना देते हैं। कृष्ण के कानों में पड़े हुए कुण्डल बिजली के समान चमकते हैं। गौवों के पैरों से उठी हुई धूलि बादलों के उमड़ने के समान प्रतीत होती है—

दमकै रवि कुण्डल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजत है।
मुकतावल-दाग्न गापन के मु तो बूँदन की छबि छाजत हैं॥
ब्रजबाल नदी उमही रसखानि मयंक बधू दुति लाजत है।
यह आवन श्री मनभावन की बरखा जिमि आज बिराजत है।

शारीरिक सौंदर्य के अतिरिक्त रसखान ने चेष्टागत सौंदर्य का भी पर्याप्त वर्णन किया है। जिस प्रकार कवि ने शारीरिक सौंदर्य की परिधि को सीमित रखा है अर्थात् इने गिने शरीरावयवों का ही परम्परागत अनुमानों के द्वारा चित्रण किया है, अथवा परम्परागत आभूषणों का उल्लेख किया है उसी प्रकार चेष्टाएं भी इनी गिनी हैं। वक्र-दृष्टि वंशीवादन मुस्कराना आदि तक ही कवि ने अपने चेष्टागत सौन्दर्य को सीमित रखा है। निम्नलिखित सवैये में वंशी-वादन के सौंदर्य का वर्णन है—

आवत हैं बन ते मनमोहन गाइन संग लसै ब्रज ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला॥
हेरत हेरि चकै चहुँ ओर तें झाँकि झरोखन तें ब्रजबाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यौ सब द्यौस को ताप-कसाला॥

और—

अति सुन्दर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत हैं।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाठन खोलत हैं॥

सुन री सजनी अलबेलो लला वह कुजनि-कुजनि डोलत है ।
रसखानि लखें मन बूडि गयो मधि रूप के सिन्धु कलोलत है ।

इसमे वक्रदृष्टिगत चेष्टा के सौन्दर्य का वर्णन है ।

कृष्ण के द्वारा गायो के घेरने मे, लाठी को घुमाने मे, वक्रदृष्टि से देखने मे, सगीत की तानें बजाने मे और पीले वस्त्रो के फहराने मे भी गोपियो को अपार सौन्दर्य के दर्शन होत हैं—

'वह घेरनि धेनु अबेर सबेरनि फेरनि लाल लकुट्टनि की ।
वह तीछन चच्छु कटाछन की छबि मारनि भौंह भृकुट्टनि की ।।
वह लाल की चाल चुभी चित मे रसखानि सगीत उघट्टनि की ।
वह पीत पटक्कनि की चटकानि लिटक्कनि मोर मुकुट्टनि की ।'

कृष्ण की वक्रदृष्टि म इतना सौन्दर्यपूर्ण आकर्षण है कि उसे देखते ही समस्त ब्रज वालाएँ अपनी कुल लाज और अपने गृह-काज को छोड बैठती हैं—

भटू सुन्दर श्याम सिरोमनि मोहन जोहन मैं चित चोरत है ।
अवलोकन बक विलोचन म ब्रजबालन के दृग जोरत है ।।
रसखानि महावत रूप सलोनो को मारग तें मन मोरत है ।
गृहकाज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज को तोरत है ।।

वक्रदृष्टि का यही प्रभाव निम्नलिखित सवैये मे वर्णित है—

आली लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना ।
गडनि पै छलकै छवि कुण्डल मडित कुतल रूप की सैना ।।
दीरघ बक विलोकनि की अवलोकनि चोरति चित्त को चैना ।
मो रसखानि हर्‌यो चित की मुसकाइ कहे अधरामृत बैना ।।

कहीं-कहीं रसखान ने अनेक चेष्टाओ का एक साथ ही वर्णन किया है । निम्नलिखित सवैये मे वक्रदृष्टि, कटाक्ष मारना मुस्कराना इन तीनो चेष्टाओ का एक साथ वर्णन किया है—

मोहन रूप छकी बन डोलति घूमति री तजि लाज बिचारै ।
बक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारैं ।
रग भरी मुख की मुसकान लखै सखि कौन जु देह सम्हारै ।
ज्यौं अरविन्द हिमंत करी, झकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारै ।'

कृष्ण की चेष्टाओं में मुसकान और वक्र दृष्टि का वर्णन कवि ने सबसे

माधित किया है ।

कृष्ण के सौन्दर्य के अतिरिक्त कवि ने राधा के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है । राधा के सौन्दर्य के उपमान और उन्हें प्रस्तुत करने की रीति प्रायः परम्परागत है । यथा—

'कैधों रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि के पीयूष पूष कीनो विधि चंद घर ।
कैधों मनि मानिक बैठारिबो को कचन मैं,
जरिया जोबन जिन गढ़िया सुघर घर ।
कैधों काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैधों यह भौंर ज्ञान बोहित गुमान हर ।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रम्भा की,
वारि डारौं तेरी चित चोरनि चिबुक पर ।

इस कवित्त मे नेत्र, मुख, शरीर-गठन, अधरो की लाली, नासिका का छिद्र और चिबुक की शोभा का वर्णन किया गया है । इनकी शोभा का वर्णन करने के लिए जिन उपमानो की सयोजना की गई है वे सभी प्राय परम्परागत हैं ।

'श्रो मुख सो न बखान सकै वृषभान सुताजू को रूप उजारो ।
हे रसखान तू ज्ञान सभार तरैनि निहार जु रीझनहारो ।
चारु सिन्दूर को लाल रसाल लसै ब्रजबाल को भाल टिकारो ।
गोद मैं मानौं बिराजत है घनस्याम के सारे की सारे को सारो ॥'

इस सवैये मे राधा के समस्त सौन्दर्य के साथ उसके मस्तक पर लगे हुए सिन्दूर के टीके की शोभा का वर्णन किया गया है जो ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा की गोद मे मगल सुशोभित हो ।

'अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली , अलि कुंतल राजत है ।
मखतूल समान के गुंज छरानि मैं किंसुक की छवि छाजत है ।
मुकता के कदम्ब ते अंब के मौर सुनें सुर कोकिल लाजत है ।
यह प्रानिनि प्यारी जु की रसखानि बसंत-सी आज बिराजत है ॥'

इस सौन्दर्य वर्णन म साग रूपक की योजना के द्वारा राधा को वसन्त बनाया गया है । कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती है कि हे सखी ! राधा का अत्यन्त लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है । उसकी काली केश राशि भौंरो के समान सुशो-

भित है। काले रेशम की डोरियों में बंधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा से सम्पन्न हैं। उसके मोती कदम्ब और आम की मजरियों के समान शोभायमान हैं। उसकी वाणी में इतना माधुर्य है कि उसके वचनों को सुनकर कोयल भी लज्जित हो जाती है।

'तन चदन खोर कै बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी।
मनो इदुबधून लजावन कों सब ग्यानिन काढि धरी गन-सी।
रसखानि बिराजति चौकी कुचो बिच उत्तमताहि जरी तन-सी।
दमकै दृग-बान के घायन को गिरि सेत के सधि के जीवन-सी॥'

अपने शरीर पर चन्दन लगाकर बैठी हुई वह सुधा की मानस-पुत्री राधा ऐसी प्रतीत हो रही है मानो चन्द्रमा की पत्नियों तारिकाओं को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी समग्र सात्विक शोभा को बाहर निकालकर बैठी हुई हों। उसके कुचो के बीच मे हार का चदा इस प्रकार सुशोभित है जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर मे जड दिया गया हो। वह चन्दा ऐसा प्रतीत होता है मानो दृग बाणो का घाव दमक रहा हो, अथवा श्वेत पर्वत के सधि-स्थान मे कोई जलाशय हो।

'आज सँवारति नकु भटू तन, मद करी रति की दुति लाजै।
देखत रीझि रहे रसखानि सु, और कहा बिधिना उपराजै।
आए है न्यौतें तरैयन के मनो सग पतग पतग जुराजै।
ऐसें लसै मुकुतागन मैं तिल तेरे तरौना के तीर बिराजै॥'

कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज तनिक अपना शरीर सभाल लो, क्योंकि इसके समक्ष रति का सौन्दर्य भी मद हो गया है और वह इसी कारण लज्जित हो रही है। आनन्द-सागर कृष्ण तुम्हारी शोभा को देखकर रीझ रहे हैं। तुम ब्रह्मा की सौन्दर्य-सृष्टि की चरम पराकाष्ठा हो। मोतियो से युक्त तुम्हारे तरौना के किनारे पर सुशोभित तिल इस प्रकार शोभा दे रहा है माना सूर्य के साथ सारे नक्षत्र आकर एकत्र हो गय हो।

यह राधिका का स्वाभाविक सौन्दर्य है, किन्तु कवि ने उस सौन्दर्य का भी वर्णन किया है जो आभूषणो एव परिधानो के कारण द्विगुणित हो रहा है। यथा—

'प्यारी की चारु सिंगार तरगन जाम लगी रति की दुति भूलनि।
जोबन जेब कहा कहिए उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि।

कचुत्री सेत मैं जावक बिन्दु बिलोकि मरैं मघवानि की सूलनि।
पूजे हैं आजु मनो रसखान सु भूत के भूप बधूक के फूलनि॥'

अर्थात राधा के सुन्दर सौन्दर्य की लहरें रति की शोभा के किनारों से जा लगी हैं। उसके यौवन की कांति का तो कहना ही क्या? उसके हृदय पर अनेक वस्त्रों की शोभा सुशोभित है। उसकी श्वेत कचुकी में लाल रंग के बिन्दु को देखकर तो मनुष्य इन्द्र के वज्र की चोट की भांति भारी चोट खाकर मर जाता है। उसके कुचों पर पड़ा हुआ लाल वस्त्र इस प्रकार प्रतीत हो रहा है मानो बधूक के फूलों से शिव की पूजा की गई हो।

राधा की शरीर-कांति इस प्रकार चमकती है जैसे दिये की बाती उकसा दी गई हो—

'बाँकी मरोर गही भृकुटीन लगीं अँखियाँ तिरछानि तिया की।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि तें दुति दूनी तिया की।
सौहैं तरंग अनंग की अंगनि ओप उरोज उठी छतिया की।
जोबन-जोति सु यौं दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की॥'

राधा के शरीरावयवों के सौन्दर्य-वर्णन में परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया गया है। यथा—

'जाकी लसै मुख चंद समान कुमानी सी भौंह गुमान हरैं।
दीरघ नैन सरोजहुँ तें मृग खंजन मीन की पाँत दरैं।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरैं।
जिहिं नीके नवैं कटि हार के भार सो तासों कहै सब काम करैं।'

इस सवैये में मुख के लिए चन्द्रमा का, भौंह के लिए कमानी का, नेत्रों के लिए कमल, खंजन, मृग और मीन का उपमान ग्रहण किया गया है। ये उपमान उपर्युक्त उपमेयों के लिए परम्परागत हैं।

इस विवेचन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि यद्यपि रसखान ने सौन्दर्य के दोनों पक्षों का—आन्तरिक पक्ष और बाह्य पक्ष का—वर्णन किया है, पर इनके वर्णन में व्यापकता नहीं है। गिने-चुने शरीरावयवों की तथा भावों की परम्परागत उपमानों के द्वारा शोभा वर्णित की गई है अतः पुनरावृत्ति भी पाई जाती है। यह पुनरावृत्ति मुक्तक काव्य में किसी प्रकार की बाधा भी नहीं है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपनी सौन्दर्य भावना को व्यक्त करने के लिए कवि ने जिस सीमित क्षेत्र को चुना है, उसमें वे काफी सफल रहे हैं।

· ६ ·

रसखान की अलंकार-योजना

'अलकार' शब्द दो शब्दो के योग से बना है—अलकार, जिसका अर्थ है अलकृत अथवा विभूषित करने वाला। जिस प्रकार शरीर की शोभा के लिए हारादिक का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार वाणी की शोभा के लिए—सशक्त अभिव्यजना के लिए—उपमा आदि अलकारो का प्रयोग किया जाता है। यहां पर यह बता देना भी आवश्यक है कि यदि आभूषणो का उचित प्रयोग न होगा तो वे शरीर की शोभा म बाधक ही होंगे। इसी प्रकार वाणी के अलकार भी तभी अभिव्यजना म सहायक होते हैं, जब उनका प्रयोग स्वाभाविक रीति म होता है। प्रयत्न साध्य अलकार-प्रयोग काव्य के काव्यत्व को हानि ही पहुँचाते हैं।

अलकारो क मुख्यतया दो भेद माने गये हैं—शब्दालकार और अर्थालकार। जब चमत्कार शब्द पर आश्रित होता है तो वहाँ शब्दालकार माना जाता है और जब वह अर्थ पर आश्रित होता है तो वह अर्थालकार माना जाता है। कुछ आचार्यों की मान्यता यह है कि शब्दालकार केवल चमत्कारक होते हैं, भाव-वर्द्धक नही, पर यह मान्यता उचित नही है। स्वाभाविक रीति से प्रयुक्त शब्दालकार भी भावो को सबल बनाते हैं, उनकी प्रेषणीयता म सहायक सिद्ध होते हैं।

रसखान के काव्य मे दोनो ही प्रकार के अलकारो का प्रचुर प्रयोग मिलता है। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि रसखान का साध्य भावो की अभिव्यक्ति थी, चमत्कारों का प्रदर्शन नही। अत इनके काव्य मे प्रयुक्त अलकार भाववर्द्धक हैं।

शब्दालकार

रसखान के काव्य मे शब्दालकारो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। अनुप्रास, यमक, सिंहावलोकन, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति आदि अलकार

को इन्होंने बहुत ही सफलता से प्रयोग किया है। यह बात निम्नलिखित विवेचन से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

१. अनुप्रास—जहाँ समान व्यंजनों की स्वर-सहित अथवा स्वर-रहित आवृत्ति हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। इसके पाँच भेद माने गये हैं— छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास। जहाँ अनेक वर्णों की एक बार समता हो, वहाँ छेकानुप्रास होता है। जहाँ वृत्तिगत अनेक वर्णों या एक वर्ण की अनेक बार समता हो, वहाँ वृत्यनुप्रास होता है। जहाँ कण्ठ, तालु आदि किसी एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की आवृत्ति हो, वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है। जहाँ आवृत्त वाक्यों में तात्पर्य भेद से अर्थ की भिन्नता हो, वहाँ लाटानुप्रास होता है। छन्द की अन्तिम तुक को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। रसखान-काव्य में ये सभी भेद उपलब्ध हैं। यथा—

'मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन।

इस सवैये में 'बसौं ब्रज' में 'ब' की, 'गोकुल गाँव' में 'ग' की, 'नित नंद' में 'न' की और 'कालिंदी कूल' में 'क' वर्णों की आवृत्ति है। अतः यहाँ छेकानुप्रास है। इसी प्रकार—

'संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावैं।
नैक हिये जिहि आनत ही जड़ मूढ़ महा रसखानि कहावैं।
जा पर देव अदेव भू-अंगना वारत प्रानन प्रानन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरी छाछ पै नाच नचावैं॥

इसमें 'संकर से सुर' में 'स' की, 'ध्यानन धर्म' में 'ध' की, 'देव अदेव' में 'द' और 'व' की 'प्रानन पावैं' में 'प' की 'छोहरियाँ छछिया' में 'छ' की नाच नचावैं' में 'न' की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

वृत्यनुप्रास में वृत्तिगत अनेक वर्णों की या एक वर्ण की अनेक बार समता होती है। यथा—

'सेष गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।

नारद से मुनि व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।।'

इस सवैये में 'स', 'अ' 'द', 'प', और 'घ' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति है । अत यहाँ कोमलावृत्ति से युक्त वृत्त्यनुप्रास है । इसी प्रकार—

'गावैं गुनि गनिका गधरब औ सारद सेप सबै गुन गावत ।' में 'ग' और 'स' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने के कारण वृत्यनुप्रास है ।

वृत्यनुप्रास के अन्य उदाहरण ये है—

१ 'आज समाज सबै सिरताज औ छाज की बात नही कहि आवै ।'
२ 'सेप सुरेस दिनस गनेस अजेस धनस महेस मनावौ ।
३ 'है कुच कचन के कलसा न ये आम की गाठ मढीव की चाम मे ।'
४. 'लाडली लाल लसैं लखियैं अलि पु जनि कु जनि मैं छवि गाढ़ी ।'
५ 'बालन लाल लिये विहरैं छहरैं बर मोरपखी सिर ठाढ़ी ।'

'मोतिन माल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूँघरवारी ।
अग ही अग जराव लसैं अरु सीस लसै पगिया जरतारी ।
पूरव पुयनि तें रसखानि सु मोहिनी भूरति आनि निहारी ।
चारयौ दिसनि को लै छवि आनि कैं झाँके झरोखे मैं बाँके बिहारी ।।'

इस सवैये मे 'त, न, ल वग दन्त्य स्थान के, 'ट और र, मूर्धन्य स्थान के 'प ब, म' ओष्ठ्य स्थान के हैं । अत यहाँ श्रुत्यनुप्रास है ।

५ यमक—जहाँ एक ही शब्द की दो बार आवृत्ति हो, किन्तु आवृत शब्द भिन्नार्थक हो, वहाँ यमक अलकार होता है । यह आवृत्ति तीन प्रकार से हो सकती है—

१ जहाँ दोनो शब्द सार्थक हों ।
२ जहाँ दोनो शब्द निरर्थक हो ।
३ जहाँ एक शब्द सार्थक और एक निरर्थक हो ।

रसखान के काव्य म तीनो प्रकार क यमक पाय जाते हैं ।

'बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी ।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी ।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी ।।'

इस सवैये की अंतिम पक्ति म 'रसखानि शब्द की आवृत्ति है । दोनो

शब्द सार्थक है। अतः यहाँ यमक अलंकार है।

> 'आजु गई हुती भोर ही हौं रसखानि रई वहि नंद के भौनहिं।
> वाको जियो जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं।
> तेल लगाइ लगाइ कै अंजन भौंह बनाइ बनाइ डिठौनहिं।
> डारि हमेलनि हारि निहारत वारत ज्यौं पुचकारत छौनहिं॥'

इस सवैये की अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त 'वारत' और 'पुचकारत' इन शब्दों में 'आरत' शब्द की आवृत्ति है। दोनों ही शब्द निरर्थक हैं। अतः यमक अलंकार है।

> 'लाल लसै पगिया सबकै सबकै पट कोटि सुगंधनि भीने।
> अंगनि अंग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने।
> मुक्ता गलमाल लसैं सब के सब ग्वार कुमार सिंगार सो कीने।
> पै सिगरे ब्रज केहरि की हरि ही के हरै हियरा हरि लीने॥'

यहाँ अंतिम पंक्ति में 'केहरि' में 'हरि' और 'हरि' शब्द की आवृत्ति है। 'केहरि' का 'हरि' निरर्थक है। अतः यहाँ पर एक निरर्थक और एक सार्थक पद की आवृत्ति है। यहाँ यमक अलंकार है।

यमक के अन्य कुछ उदाहरण ये हैं—

१ 'जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।'
२ 'जो पै राखनहार है माखन चाखनहार।'
३ 'बिमल सरल रसखानि मिलि भई सकल रसखानि।
सोई नव रसखानि को चित चातक रसखानि॥'
४ 'तामरस-लोचन सरोचन कौं ठाढ़े हैं।'
५ 'तानें निन्हें तजि जनि गिरयौ गुन सौगुन औगुन गाँठि परैगो।'
६ 'सो कवि देखि आनन्दन नन्द जू अंगनि अंग समात न फूलै।'
७ 'राधिका जो है तो जीहैं सबै न तो पीहैं हलाहल नंद कै द्वारे।'
८ 'यो पछितावो यहै जु सखी कि कलंक लग्यो पर अंक न लाग्यो।'

३ सिंहावलोकन—जिस प्रकार सिंह पीछे मुड़कर देखता है, उसी प्रकार अलंकार में एक चरण के वर्णों की दूसरे चरण के प्रारम्भ में आवृत्ति होती है। इसे संस्कृत आचार्यों ने मुक्तपदग्राह्य यमक कहा है। रसखान काव्य में इस अलंकार का केवल एक उदाहरण मिलता है जो यह है—

'भेती जु पै कुबरी ह्यां सखी भरि लातन मूका बकोटत लेती।
लेती निकारि हिये की सबै नक छेदि कै कौडी पिराइ कै देती।
देती नचाइ कै नाच वा रांड की लाल रिझावन को फल सेती।
सेती सदा रसखानि लिये कुबरी के करेजनि सूल सी भेती ।।'

इस सवैय मे 'भेती', 'लेती', 'देती' और 'सेती' वर्णों की आवृत्ति है।

४ वीप्सा—जहां किसी भाव को सबल बनाने के लिए उन्ही शब्दो की आवृत्ति की जाती है, वहां वीप्सा अलकार होता है। रसखान ने इस अलकार का भी बडी कुशलता से भावपूर्ण प्रयोग किया है। यथा—

'तैं न लख्यौ जब कुजनि तैं बनिकै निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ अरु कैसो किरीट लसै लटक्यौ री।
को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ ब्रज लोग फिरै भटक्यौ री।
रूप सबै हरिवा नट को हियरें अटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री ।।'

इस सवैये मे अटक्यौ' शब्द की तीन बार आवृत्ति के कारण कृष्ण के प्रति गोपी के प्रेम की अधिक प्रगाढता व्यजित हुई है। इसी प्रकार—

'काननि दै अँगुरी रहिबो जबही मुरली धुनि मद बजै है।
मोहनी ताननि सो रसखानि अटा चढि गोधन गैहै तो गैहै।
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितो समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै।

इस सवैये की चतुर्थ पक्ति मे 'न जैहै' शब्द की तीन बार अवृत्ति है जो कृष्ण की मुस्कान के आकर्षण को कई गुना बढा देती है।

५ श्लेष—जहां कोई शब्द एक से अधिक अर्थों का द्योतन करने के कारण चमत्कारक होता है वहां श्लेष अलकार होता है। इसके दो भेद किये गये हैं—सभग श्लेषऔर अभग श्लेष। सभग श्लेष मे पद को भग करने से एकाधिक अर्थ की प्राप्ति होती है और अभग श्लेष मे पद को भग नही करना पडता सभग श्लेष की अपेक्षा अभग श्लेष में अर्थ की रमणीयता अधिक रहती है। इसीलिए भाव-प्रवण कवियो की रचनाओ म सभग श्लेष की अपेक्षा अभग श्लेष के उदाहरण ही मिला करते हैं। रसखान म तो केवल अभग श्लेष ही मिलता है। यथा—

'ए सजनी लोनो लला लहयौ नद के गेह।
चितयौ मृदु मुसकाइ कै, हरी सबै सुधि देह ।।'

यहाँ पर हरी' शब्द के हरण करना' और 'प्रसन्न होना' ये दो अर्थ हैं। इसी प्रकार—

> स्याम सघन घन घेरि कै रस बरस्यौ रसखानि।
> भई दिमानी पानि करि प्रेम मद्य मन मानि॥

इस दोहे में स्याम' और 'रस' शब्द श्लिष्ट हैं।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी रसखान काव्य से प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

६ वक्रोक्ति—जब वक्ता कोई बात कहे और श्रोता उस बात का अन्य अर्थ जो वक्ता का अभीष्ट नहीं है काकु या श्लेष के बल से ग्रहण करता है, तो वक्रोक्ति अलंकार होता है। वक्रोक्ति अलंकार के दो भेद हैं—श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति। श्लेष वक्रोक्ति की अपेक्षा काकु वक्रोक्ति में अर्थ की अधिक रमणीयता होती है। इसी कारण अनेक आचार्यों ने काकु वक्रोक्ति को अर्थालंकारों के अन्तर्गत माना है। रसखान-काव्य में काकु-वक्रोक्ति के ही उदाहरण मिलते हैं। यथा—

> कौन ठगौरी भरि हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रंग भीनी।
> तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं तित लाज बिदा करि दीनी।
> घूमै घरी घरि नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
> या ब्रज मंडल में रसखानि सु कौन भटू जु लटू नहीं कीनी॥'

इस सवैये का अंतिम पंक्ति में गोपी ने अपनी सखी को काकु के द्वारा बताया है कि इस ब्रज मंडल की प्रत्येक गोपी को कृष्ण ने मोहित कर रक्खा है। इसी प्रकार—

> फागुन लग्यौ सखी जब तें तब तें ब्रज मंडल धूम मच्यौ है।
> नारि नवेली बचै नहिं एक बिसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है।
> साँझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
> को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहिं मान बच्यौ है॥

इसमें को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहिं मान बच्यौ है में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

> को रसखानि सुनौं सुनिकै हियरा सत टूक है फाटि गयौ है।
> जानति हैं न कछू हम ह्याँ उनवाँ पढ़ि मंत्र कहा धौं दयौ है।

साँची कहैं जिय मैं निज जानि कै जानति हैं जस जैसो लयो है।
लोग लुगाई सबै ब्रज माँहि कहैं हरि चेरी को चेरो भयो है।।'

यहाँ पर 'जस जैसो लयो है' मे काकु के द्वारा यह बताया गया है कि वे बहुत बदनाम हो गए है। अत. काकु वक्रोक्ति अलकार है।

अर्थालंकार

रसखान जैसे भावुक कवि की भाषा मे अर्थालकारो का प्रवाह आ जाना स्वाभाविक है। इनके द्वारा प्रयुक्त कुछ अर्थालकारो के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है।

१. उपमा—उपमान और उपमेय के सादृश्य वर्णन मे उपमा अलकार होता है। रसखान ने इस अलकार का बहुत मात्रा मे और बहुत कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

'सुनिये सबकी कहिये न कछू रहियै इमि या भव-बागर मैं।
करियै व्रत-नेम सचाई लियैं जिनतें तरियै भव-सागर मैं।
मिलियै सबसो दुरभाव बिना रहियै सतसग उजागर मैं।
रसखानि गुबिन्दहि की भजियै जिमि नागरि को चित्त गागर मैं।।'

भगवद्-भजन के लिए नागरी के चित्त की एकाग्रता का सादृश्य दिखलाया गया है। अत यहाँ उपमा अलंकार है। इसी प्रकार—

'लाडली लाल लसैं लखियैं अलि पुंजनि कुंजनि मैं छवि गाढी।
ऊजरी ज्यौं बिजुरी सी जुरी चहूँ गुजरी केलि-कला सम काढी।
त्यौं रसखानि न जानि परै सुखमा तिहुँ लोकन की अति बाढी।
बालन लाल लिये बिहरैं छहरैं बर मोरपखी सिर ठाढी।'

'ऊजरी ज्यौं बिजुरी सी जुरी चहूँ गुजरी केलि-कला सम काढी' मे उपमा अलकार है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये है—

१ सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख मूरति रग सुधारस-सानी।'
२. 'ऐंचे आवत धनुष से छूटे सर से जाहि।'
३ 'जा रसखानि विलोकत ही सहसा ढरि राँग सो आँग ढरयो है।'
४ 'तिरछी बरछी सम मारत है दृग-बान कमान सुकान लग्यौ।'
५ 'जाको लसै मुख चन्द समान सुकोमल अगनि रूप लपेटी।'
६ 'चन्द सो आनन मैन मनोहर बैन मनोहर मोहत हौं मन।'

२. रूपक—उपमेय मे उपमान के निषेध-रहित आरोप को रूपक अलकार कहते हैं। इसके मुख्यतया दो भेद हैं— साग रूपक और निरग रूपक। जहाँ उपमेय के अवयवो के सहित उपमान के अवयवो का आरोप किया जाता है, वहाँ साग अथवा सावयव रूपक होता है और जहाँ अवयवो से रहित उपमान का उपमेय मे आरोप किया जाता है, वहाँ निरग अथवा निरवयव रूपक अलकार होता है। रसखान ने इस अलकार का भी प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। यथा—

'अति सुन्दर री ब्रजराज कुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइकै लाज की गाँठन खोलत है।
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुजनि कुजनि डोलत है।
रसखानि लखें मन बूडि गयो मधि रूप के सिन्धु कलोलत है॥'

यहाँ सौन्दर्य पर सागर का आरोप किया गया है, पर अवयवो का उल्लेख नहीं है। अत यहाँ निरग रूपक है। और—

'नैन दलालनि चौहटें मन मानिक पिय हाथ।
रसखान ढोल बजाइकै, बेच्यो हिय जिय साथ॥'

यहाँ भी नैनो पर दलालो का मन पर मानिक का आरोप किया गया है। अत यहाँ पर निरग रूपक अलकार है।

'दमकै रवि कुडल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजत है।
मुकताहल वारन गोपन के सु तो बूँदन की छबि छाजत है।
ब्रजबाल नदी उमही रसखानि मयक बधू दुति लाजत है।
यह आवन श्री मनभावन की बरषा जिमि आज विराजत है॥'

इस सवैये मे कृष्ण के आगमन पर वर्षा ऋतु का आरोप किया गया है। सभी अगो का वर्णन है। अत यहाँ साग रूपक अलकार है।

इस अलकार के अन्य उदाहरण ये हैं—

१ 'मत्त भयो मन सग फिरै रसखानि सरूप सुधारस घूटयो।'
२ 'लग्की लट यों दृग मीननि सो बनसी जियवा नट की अटकी।'
३ 'मो मन मानिक लै गयो चितै चार नदनद।'
४ 'रसखानि महावत रूप सलोने को मारग तें मन माहत है।'
५. 'तिरछी बरछी सम मारत है दृग बान कमान सुकान लग्यो।'
६. 'भौंह कमान सों जोहन को सर बेधत आनन नन्द को छोनो।'

३. उत्प्रेक्षा—जहाँ प्रस्तुत की—उपमेय की—अप्रस्तुत रूप में—उपमान रूप में—सभावना की जाये, वहाँ उत्प्रेक्षा अलकार होता है। इस अलकार के प्रयोग में भावों में प्रभावशीलता आती है। अत रसखान ने उपमा और रूपक की भाँति इस अलकार का प्रयोग भी बहुलता से किया है। यथा—

'साँझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौ मन यौं ललकै री।
ऊँची अटान चढी ब्रजबाम सु लाज सनेह दुरै उभकै री।
गोधन धूरि की धूँधरि मैं तिन्ह की छवि यौं रसखान तकै री।
पावक के गिरि ते बुझि मानौ धुँवा लपटी लपटै लपकै री।।'

यहाँ गोरज से धूसरित कृष्ण की छवि मे आग के पहाड से बुझकर उठते हुए धुएँ के बादल की सभावना की गई है, अत उत्प्रेक्षा अलकार है। इसी प्रकार—

'मैन-मनोहर बैन बजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यौं दमकै चमकै झमकै दुति दामिन की मनो स्याम घटा है
ए सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढि फेरत लाल बटा है।
रसखानि महा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुलकानि कटा है।।'

यहाँ पर कृष्ण की पीत-वस्त्र से चमकती हुई क्राति मे बादल मे चमकती हुई बिजली की सभावना के कारण उत्प्रेक्षा अलकार है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये हैं।—

१ 'टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख पेटी।'
२ 'नटव तें सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भाँति कँपै डरपै।
मनौ दामिनि सावन के घन मैं निकसै नही भीतर ही तरपै।।'
३ कचुकी सत म जावक बिन्दु विलोकि मरै मघवानि की सूलनि।
पूजे है आजु मनौ रसखान सु पूत के भूप बधूक के फूलनि।।'
४ 'जोबन-जोति सु यौं दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की।'

४. अतिशयोक्ति—लोक मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करने को—प्रस्तुत को बढा चढाकर कहने को—अतिशयोक्ति अलकार कहते हैं। रसखान ने इसका भी सफलता से प्रयोग किया है। यथा—

'या छवि पै रसखानि अब वारौ कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं पाई रहे सुखोज।।'

कृष्ण की छवि की उपमा अभी तक कवियों को नही मिली और वे अभी

तक पूर्ण परिश्रम के साथ उस उपमा को खोज रहे हैं। यह कथन प्रस्तुत को बढ़ा-चढ़ाकर कहने का द्योतक है। अत यहाँ अतिशयोक्ति अलकार है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये हैं—

१. 'जाकी लसै मुख चंद समान कमानी सी भौंह गुमान हरै।
दीरघ नैन सरोजहुँ तै मृग खजन मीन की पात दरै।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै
जिहि नीचे नवै कटि हार के भार सो तासो कहैं सब काम करै।"

२. गोकुल नाथ वियोग प्रलै जिमि गोपिन नद जसोमतिजू पर।
बहि गयौ अँसुवान प्रवाह भयौ जल मैं ब्रजलोक तिहूँ पर।
तीरथराज सी राधिका प्रान सु तो रसखान मनौ व्रज भू पर।
पूरन ब्रह्म है ध्यान रह्यौ पिय ओधि अखैवट पात के ऊपर॥

५ विरोधाभास—जहाँ कथन म विरोध का आभास हो, पर वास्तव मे विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलकार होता है। रसखान ने इसका कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

'सकर से सुर जाहि जपै चतुरानन ध्यानन धम बढावै।
नैक हियें जिहि आवत ही जड मूढ महा रसखान कहावै।
जा पर देव अदेव भू अगना वारत प्रानन प्रानन पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै॥'

इस सवैये की तीसरी पक्ति म प्रयुक्त 'वारत प्रानन प्रानन पावै' य विरोधाभास अलकार है। इसी प्रकार—

'एरी चतुर सुजान, भयौ अजान हि जान कै।
तजि दीनी पहचान जान अपनी जान को॥

मे भी 'भयौ अजान हि जान कैं' के कारण विरोधाभास अलकार है।

६ समाधि—जहाँ अचानक और कारणो के आ पडने से काम सुगम हो जाये, वहाँ समाधि अलकार होता है। इसे समहित अलकार भी कहते हैं। *रसखान ने इस अलकार का अधिक प्रयोग नही किया फिर जो उदाहरण हैं, वे* पूर्णतया प्रभावपूर्ण हैं। यथा—

'कस कुढ्यौ सुनि बानी अकास की ज्यावनहारहि मारन धायौ।
भादव साँकरी आठई को रसखान महाप्रभु देवकी जायौ।

रैनि अँधेरी मे लै बसुदेव महाबन मैं अरगै धरि आयौ ।
पाहु न चोजुग जागत पायो सो राति जसोमति सोवत पायो ॥'

जिस कृष्ण को योगी भी अपनी जाग्रत अवस्था म प्राप्त नही कर सकते, वही यशोदा को आसानी से प्राप्त हो गया । अत यहाँ समाधि अलकार है ।

७ उल्लेख—जहाँ एक ही वणनीय विषय का विभिन्न-भेद से अनेक प्रकार का वर्णन हो, वहाँ उल्लेख अलकार होता है । निम्नलिखित सवैय म कृष्ण के अनक रूपो का वर्णन है—

'वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत हैं रैन दिन
सदाशिव सदा ही धरत ध्यान गाढे हैं ।
वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राज रक,
जोगी जती है कै सीत सह्यो अग डाढे हैं ।
वेई ब्रजचद रसखानि प्रान प्रानिन के,
जाके अभिलाख लाख लाख भानि बाढे हैं ।
जसुधा के आगे बसुधा के मान मोचन ये,
तामरस-लोचन खरोचन को ठाढे हैं ॥'

इसी प्रकार—

'सोई है रास मैं नैसुक नाचि कै नाच नचायो कितो सबको जिन ।
सोई है की रसखानि किते पउहारनि सूधे चितौत न हो छिन ।
तो पै धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयो बस हा हा करी तिन ।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिर लगर मोडो कनौडो करै किन ॥'

म भी उल्लेख अलकार है ।

८. अत्युक्ति—सम्पति सौदय, शौय औदार्य, सौकुमार्य आदि गुणो के मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति अलकार कहते है । रसखान ने कृष्ण प्रीति के प्रतिपादन मे इस अलकार का प्रयोग किया है । यथा—

कचन मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा झलकैयत ।
प्रात ही तें सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत ।
यद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसे भये तो कहा रसखानि जो साँवरे ग्वार सो नेह न लैयत

इस सवैये म कृष्ण की प्रीति बढा चढाकर वर्णन करने के कारण अत्युक्ति अलकार है ।

९ अपह्नुति—जहाँ प्रकृत का—उपमेय का—निषेध करके अप्रकृत का—आरोप किया जाता है वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। रसखान ने इस अलंकार का प्रयोग निम्नलिखित सवैये में किया है।

'है छल का अप्रतीत की मूरति मोंड बढ़ाई विनोद कलाम में।
हाथ न एहै कछू रसखान तू क्या बहकै विष पीवत काम में
है कुच कंचन के कलसा नय ग्राम की गाँठ मढ़ाव की चाम में।
बैना नहीं मृगनैनिन की य नसैनी लगी यमराज के धाम में।

यहाँ पर कुच और चोटियों का निषेध करके इन पर ग्राम की गाँठ और नसैनी का आरोप किया गया है। अतः अपह्नुति अलंकार है।

१० व्यतिरेक—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यथा—

धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयौ माखन रोटी।

इस सवैये में कामदेव के सौंदर्य की अपेक्षा कृष्ण के सौंदर्य का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है। इसी प्रकार—

जाको लसैं मुख चंद समान कमानी सी भौंह गुमान हरैं।
दीरघ नैन सरोजहुँ तें मृग खंजन मीन की पाँत दरैं।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरैं।
जिहिं नीके नवै कटि हार के भार सों तासों कहै सब काम करैं।

इस सवैये में मृग खंजन और मीन की अपेक्षा राधा के नैनों की शोभा का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

११ दृष्टांत—जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है। यथा—

जा दिन तें निरख्यौ नंदनंदन कानि तजी घर बंधन छूट्यौ।
चारु बिलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन मार ने लूट्यौ।
सागर कों सलिता जिमि धावै न रोकी रहै कुल को पुल टूट्यौ।
मत्त भयौ मन संग फिरै रसखान सरूप सुधारस घूट्यौ॥

१२ अर्थांतरन्यास—जहाँ विशेष से सामान्य का या सामान्य से विशेष्य

का साधर्म्य वा वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाये, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होता है। यथा—

'मोहक रूप छवि वन डोलति घूमति री तजि लाज विचारै।
वक विलोकनि नैन विसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै।
रगभरी मुख की मुसकान लखें सखी कौन जू देह सम्हारै।
ज्यौं अरविन्द हिमन्त-करी झकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारै।'

यहा मुसकान विशेष का हिमन्त करी सामान्य स साधर्म्य के द्वारा समर्थन किया गया है। अत अर्थान्तरन्यास अलकार है।

१३. प्रतीप—जहाँ उपमेय को उपमान कल्पित कर लिया जाये, वहाँ प्रतीप अलकार होता है। यथा—

'मोहन के मन की सब जानति जोहन के मग मोहि लियो मन।
मोहन सुदर आनन चद तें कुजन देख्यौ मैं स्याम सिरोमन।
ता दिन तें मेरे नैननि लाज तजी कुलकानि की डोलति हौं बन।
कैसी करौं रसखानि लगी जकरी पकरी पिय के हित को मन।।'

यहाँ चन्द्र की अपेक्षा आनन का उत्कर्ष वर्णित है। अत: प्रतीप अलकार है। इस अलकार के अन्य उदाहरण ये है—

१ 'कल काननि कुडल मोरपखा उर पै बनमाल विराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि-तरग महाछवि छाजति है।
रसखानि लखै तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है।
वहि बाँसुरी की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है।।'

२ सोई हुती पिय की छतियां लगि बाल प्रवीन महा मुद मानै।
केस खुले घहरै बहरै फहरै छवि देखत मैन अमानै।
वा रस म रसखानि पगी रति रैन जगी अखिया अनुमानै।
चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब पै कैरव कैरव पै मुकता न प्रमानै।'

१४ सदेह—जहा किसी वस्तु के सम्बन्ध म सादृश्य मूलक सदेह हो, वहाँ सदेह अलकार होता है। यथा—

'वा मुख की मुसकानि भटू अखियानि तें नकु टरै नहि टारी।
जौ पलकै पल लागति हैं पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी।
दूसरी ओर ते नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ बजमारी।
प्रेम की बानि कि जोग कलानि गही रसखानि विचार विचारी।।'

इस सवैये की अंतिम पंक्ति में संदेह अलंकार है। इस अलंकार का एक अन्य उदाहरण और देखिए—

'दूध दुह्यो सीरो परयो तातो न जमायो कर्‌यो,
जामन दयो सो धरयो धर्‌योई खटाइगो।
आन हाथ आन पाइ सब ही के तब ही तें,
जब ही तें रसखानि तानिन सुनाइगो।
ज्योंही नर त्योंही नारी तैसी यै तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइ गो।
जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगदरइ गो॥

१५ असंगति—कारण-कार्य की स्वाभाविक संगति के अभाव में असंगति अलंकार होता है। यथा—

'श्री वृषभान की छान धुजा अटकी लरकान तें मान लई री।
वा रसखान के पानि की जानि छुड़ावति राधिका प्रेम मई री।
जीवन मूरी सी नैम लिये इनहूँ चितयो उनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही सुरझानि गुडी उरझाय दई री।''

यहाँ सुलझाने वाली गुड़ी उलझा देती है। अत असंगति अलंकार है।

इस विवेचन के पश्चात् यह कहना कठिन नहीं कि रसखान की अलंकार योजना बहुत ही सफल और प्रभाववर्द्धक है। इन्होंने अलंकारों का प्रयोग श्रम द्वारा नहीं किया वरन् ये तो स्वतः भावावेग में आ गये हैं। स्वाभाविक रूप से आये हुए अलंकार भाषा में अधिक प्रभाव और गति उत्पन्न कर देते हैं। यह निर्विवाद मत है। जहाँ अलंकार अभिव्यक्ति के साधन और सहायक होते हैं वहीं इनका प्रयोग सार्थक होता है। रसखान की अलंकार-योजना ऐसी ही है।

: १० :

रसखान की भाषा

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। जो कवि जितना अधिक समर्थ होता है, उतना ही अधिक उसका भाषा पर अधिकार होता है। शब्द, अलंकार, गुण, छंद, लोकोक्ति और मुहावरे भाषा के प्राणदायक अंग होते हैं। अतः किसी कवि की भाषा की समीक्षा करने के लिए इन अंगों का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। रसखान की भाषा का विवेचन भी इसी आधार पर करना उचित है।

शब्द-योजना

यह सच है कि शब्द-समूह से भाषा का निर्माण होता है, पर प्रत्येक शब्द-समूह सफल एवं प्रभावशाली भाषा को जन्म नहीं दे सकता। सफल भाषा के लिए भावानुसारिणी शब्द-योजना की संयोजना भी आवश्यक है। जहाँ तक शब्द-योजना का प्रश्न है, रसखान इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। इनका शब्द-चयन अभीप्सित भावों को व्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ एवं सफल है। यथा—

'बात सुनी न कहूँ हरि की, न कहूँ हरि सों मुख बोल हँसी है।
कालिह हीं गोरस बेचन कौं निकसी ब्रजवासिनि बीच लसी है।
आजु ही बारक लेहु दही' कहिकै कछु नैनन मैं बिहँसी है।
बैरिनि वाहि भई मुसकानि जुवा रसखान के प्रान बसी है॥'

यहाँ पर 'बैरिनि' शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक एवं भावपूर्ण है। इस शब्द से आक्रोश और आत्मीयता दो विरोधी भाव परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हो गये हैं।

'अन में न लयौ माही गाँवरे को जायौ,
माई बापरे जिवायौ प्याइ दूध बारे-बारे को।

सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे-द्वारे को।'
मैया की सौं सोच कछु मटकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर चीरि डारे को।
सहे दुख भारी गहै डगर हमारी माँझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को।।'

इस कवित्त में शब्दों की योजना अत्यन्त भावपूर्ण है। 'नचैया' शब्द आत्मीयता का सूचक है।

'कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहि है।
निसद्योस रहै सग-साथ लगी यह सौतिन तापन क्यों सहि है।
जिन मोहि लियौ मनमोहन को रसखानि सदा हमको दहि है।
मिलि आओ सबै सखी! भागि चलें अब तो ब्रज में बँसुरी रहि है।।'

इस सवैये में बाँसुरी के प्रति गोपियों का सपत्नी-भाव व्यंजित है। इसमें 'कौन' शब्द कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है जो अत्यन्त आत्मीयता का सूचक है। 'मनमोहन' शब्द का प्रयोग भी साभिप्राय है इससे बाँसुरी की महत्ता सूचित होती है, क्योंकि जो कृष्ण सबका मन मोहने के कारण मनमोहन बने हुए हैं वे स्वयं बाँसुरी द्वारा मोहित कर लिये गए हैं। 'मिलि आओ सबै' में सभी सखियों के दुख की तथा समान दुख होने से उनकी एकता की व्यंजना होती है।

'कल कानन कुंडल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर में अधरा मुसकानि-तरंग महाछबि छाजति है।
रसखानि लखैं तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है।
वहि बाँसुरी की धुनि कानि परें कुल-कानि हियो तजि भाजति है।।'

इसमें 'वहि' शब्द का प्रयोग बाँसुरी के उन प्रभावों की ओर संकेत करता है जिनसे प्रभावित होकर गोपियाँ अपने कुल की लाज छोड़कर कृष्ण के आगे पीछे दौड़ने लगती हैं।

शब्द-योजना के द्वारा वर्ण्य वस्तु का चित्र प्रस्तुत करने में भी रसखान सिद्धहस्त दिखाई पड़ते हैं। चित्रात्मकता का यह उदाहरण देखिए—

'जल की न घट भरें मग की न पग धरें,
घर की न कछु करें बैठी भरें साँसु री।

एकै सुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आंसु री।
कहै रसखानि सो सबै ब्रज-वनिता वधि,
वधिक कहाय हाय भई कुल हांसु री।
करियै उपाय बांस डारियै कटाय,
नाहि उपजैगो बांस नाहि बाजे फेरि बांसुरी ॥'

रसखान की शब्द-योजना भावाभिव्यक्ति मे पूर्णतया समर्थ एव सफल है। साग रूपक की योजना प्रस्तुत करते समय प्राय दुरूहता आ जाती है, पर रसखन के काव्य मे यह दोष भी दिखाई नहीं देता। वर्षा-विषयक यह साग रूपक देखिए—

'दमकै रवि कु डल दामिनि से धुरवा जिमि गोरज राजति है।
मुक्ताहल-वारन गोपन के सु तौ बूंदन की छवि छाजत है।
ब्रजबाल नदी उमही रसखानि मयकवधू दुति लाजत है।
यह आवत श्री मनभावन की वरखा जिमि आज बिराजत है ॥'

संगीतात्मकता भी रसखान की शब्द योजना की एक प्रमुख विशेषता है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर इस प्रकार बिठाया गया है कि क्या मजाल, कही भी सगीतात्मकता को क्षति पहुँचे अथवा जिह्वा तथा स्वर की गति मे बाधा पडे। रसखान का समूचा काव्य इसका उदाहरण है, फिर भी दो सवैये प्रस्तुत हैं—

१ 'नद को दन है दुसकदन प्रेम के फदन बांधि लई हौं।
एक दिना ब्रजराज के मदिर मेरी अली इक बार भई हौ।
हेर्यो लला ललचाइ कै मोहन जोहन की चकडोर पई हौ।
दौरी फिरौं दृग डोरनि मैं हिय मै अनुराग की बेलि बई हौं ॥'

२. 'दृग दूने खिचे रहैं कानन लौं लट आनन पै लहराइ रही।
छकि छैल छबीली छटा तहराइ कै कौतुक कोटि दिखाइ रही।
झुकि झूमि झमाकनि चूमि अमी चहि चांदनी चद चुराइ रही।
मन पाइ रही रसखानि महा छवि मोहन की तरसाइ रही ॥'

इस विवेचन के उपरात यह कहना अन्यथा न होगा कि रसखान की शब्द-योजना भावानुसारिणी, भावाभिव्यजक एव सफल है।

अलंकार-योजना

काव्य में अलंकारों का प्रयोग भाव-समृद्धि के लिए किया जाता है। जो अलंकार श्रमसाध्य होते हैं, अथवा भाव सौन्दर्य में किसी प्रकार से सहायक नहीं होते, वे हेय समझे जाते हैं। सफल कवियों की वाणी में भावों के साथ अलंकार भी स्वतः प्रस्तुत चलते हैं। अलंकारों का यह स्वतः स्फुरण काव्य और साहित्य की अमर एवं भव्य निधि है।

अलंकारों में मुख्यतया दो भेद किये गये हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। जो अलंकार शब्दाश्रित होते हैं, उन्हें शब्दालंकार और जो अर्थाश्रित होते हैं, उन्हें अर्थालंकार कहते हैं। रसखान ने दोनों प्रकार के अलंकारों का ही प्रयोग किया है। पहले हम शब्दालंकारों को लेते हैं।

शब्दालंकारों में रसखान ने अनुप्रास और यमक का सबसे अधिक प्रयोग किया है। इस प्रयोग को देखकर यदि इन्हें अनुप्रास और यमक सम्राट् कहा जाय तो अनुचित न होगा। अनुप्रास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं

'गावैं गुनी गनिका गंधरब्ब औ सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनन्त गनंत गनेस ज्यौं ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥'

इस सवैये में 'ग', 'न', 'त', 'प', 'ज', 'द' और 'न' वर्णों की आवृत्ति है। अतः यह वृत्यनुप्रास है।

'मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल-कदम्ब की डारन॥'

इस सवैये में 'ब', 'ग', 'न' और 'क' वर्ण की आवृत्ति है। यह छेकानुप्रास है।

अनुप्रास की भाँति रसखान ने यमक का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है। यमक के मुख्यतया तीन भेद होते हैं—

१ जहाँ दोनों आवृत्त वर्ण सार्थक हों।
२ जहाँ दोनों आवृत्त वर्ण निरर्थक हों।

३, जहाँ आवृत्त वर्णों में से एक वर्ग सार्थक और एक वर्ग निरर्थक हो।

रसखान ने इन तीनों प्रकार के यमकों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। यथा—

'बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी।'

इस सवैये की अन्तिम पंक्ति में 'रसखानि' शब्द की आवृत्ति है। दोनों शब्द सार्थक हैं।

आजु गई हुती भोर ही हौं रसखानि रई वहि नन्द के भौनहिं।
वाको जियौ जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यौ नहिं।
तेल लगाइ लगाइ कै अंजन भौंह बनाइ बनाइ ढिठौनहिं।
डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौं चुचकारत छौनहिं।'

इस सवैये की अन्तिम पंक्ति में वारत और 'चुचकारत' में 'रत' वर्णों की आवृत्ति है। दोनों ही आवृत्ति निरर्थक है।

'लाल लसैं पगिया सबके सबके यह कोटि सुगन्धनि भीने।
अंगनि अंग सजे सब ही रसखानि अनेक जराउ नवीने।
मुक्ता गलमाल लसे सबके सब ग्वार कुमार सिंगार सो कीने।
पै सिगरे ब्रज केहरि हो हरि ही के हरैं हियरा हरि लीने।

इस सवैये की अन्तिम पंक्ति में 'केहरी' और हरी' शब्द की आवृत्ति है। 'केहरी' का 'हरी' निरर्थक है।

अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त रसखान ने सिंहावलोकन, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति शब्दालंकारों का भी प्रयोग किया है। इन अलंकारों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

सिंहावलोकन—

'होती जु पै कुबरी ह्याँ सखी भरि लातनि मूका बकोटती लेती।
लेती निकारि हिये की सबै नक छेदि कै कौडी पिराइ कै देती।
देती नचाइ कै नाच वा रांड को लाल रिझावन को फल सेती।
सेती सदा रसखान लियें कुबरी के करेजनि मूल सी भेती।'

वीप्सा,

'तैं न लख्यो जब कुंजनि तें बनिकै निकस्यो भटक्यो भटक्यो री।
सोहत कैसो हरा टटक्यो अरु कैसो किरीट लसै लटक्यो री।
को रसखानि फिरै भटक्यो हटक्यो ब्रजलोग फिरै भटक्यो री।
रूप सबै हरि वा नट को हियरें अटक्यो अटक्यो अटक्यो री।'

श्लेष—

स्याम सघन घन घरि कै रस बरस्यो रसखानि।
भई दिमानी पानि करि प्रेम मद्य मन मानि।

वक्रोक्ति—

'कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रग भीनी।
तान सुनी जिनही तिनही तबही तित लाज बिदा करि दीनी।
घूमैं घरी घरी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या ब्रजमण्डल में रसखानि सु कौन भटू जु लटू नहिं कीनी।'

रसखान द्वारा प्रयुक्त शब्दालंकार केवल चमत्कारक नहीं जैसा कि प्रायः शब्दालंकारों के विषय में कहा जाता है वरन् ये भावों का उत्कर्ष करने वाले भी हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास शब्दों को संगीत प्रदान करके भावों को और भी अधिक ग्राह्य बना देते हैं। संगीतात्मकता अनुप्रास का गुण है और रसखान द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास में यह गुण प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यमक को क्लिष्टत्व का रूप माना जाता है। इसीलिए सुकर और दुष्कर भेद इसके किये गये हैं। लेकिन रसखान ने यमक का स्वाभाविक और भावपूर्ण प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि यमक भी अन्य अलंकारों की भांति प्रसादगुण-सम्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार रसखान ने अन्य शब्दालंकारों का प्रयोग भी भावपूर्ण किया है।

शब्दालंकारों की भाँति अर्थालंकारों का प्रयोग भी रसखान ने भावोत्कर्ष के लिए किया है। ये प्रयोग कवि की वाणी से स्वतः प्रस्फुटित हुए हैं उसे इनके लिए कोई श्रम नहीं करना पड़ा है। यही कारण है कि जो भी अलंकार जहाँ प्रयुक्त हुआ है वह अपने स्थान पर ठीक युक्ति संगत और भावपूर्ण है। रसखान ने अनेक अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

उपमा

उपमान और उपमेय के सादृश्य वर्णन मे उपमालकार होता है। रसखान के इस अलकार का बहुत मात्रा मे और बहुत कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

'सुनियै सबकी कहिय न कछु रहिए इमि या भव-बागर मैं।
करिए व्रत नेम सचाई लिय जिनतें तरियै भव सागर मै।
मिलियै सबसा दुरभाव बिना रहिए सत सग उजागर मैं।
रसखानि गुबिन्दहि यो भजियै जिमि नागरि को चित गागर मैं॥'

भगवद् भजन के लिए नागरी क चित्र की एकाग्रता का सादृश्य दिखलाया गया है।

रूपक

उपमेय मे उपमान के निषेध रहित आरोप का रूपक अलकार कहते हैं। इसके मुख्यतया दो भेद है—साग रूपक और निरग रूपक। जहाँ उपमेय अवयवो के सहित उपमान के अवयवा का आरोप किया जाता है, वहा साग अथवा सावयव रूपक होता है और जहाँ अवयवो से रहित उपमान का उपमेय म आरोप किया जाता है वहाँ निरग अथवा निरवयव रूपक अलकार होता है। रसखान न इस अलकार का भी प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। यथा—

अति सु दर री व्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
सखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाठन खोलत है।
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुजनि कु जनि डोलत है।
रसखानि लखे मन बूडि गयो मधि रूप के सिंधु कलोलत हैं।

यहाँ सौदर्य पर सागर का आरोप किया गया है पर अवयवो का उल्लेख नहीं अत यहाँ निरग रूपक है।

उत्प्रेक्षा

जहाँ प्रस्तुत की—उपमेय की—अप्रस्तुत रूप म—उपमान रूप मे—सभावना की जाए, वहाँ उत्प्रेक्षा अलकार होता है। इस अलकार के प्रयोग से भावो मे प्रभावशीलता आती है। अत रसखान ने उपमा और रूपक की भाँति इस

अलंकार का प्रयोग भी बहुलता से किया है। यथा—

'साझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कों मन भौं ललकै री।
ऊँची अटान चढ़ी ब्रजबाम सुलाज सनेह दुरै उझकै री।
गोधन धूरि की धूधरि मैं तिनकी छवि यों रसखान तकै री।
पावक के गिरि तें बुझि मानो धुंवा-लपटी लपटै लपकै री॥'

यहाँ गोरज से धूसरित कृष्ण की दृष्टि मे आग के पहाड से बुझकर उठते हुए धुँए के बादल की संभावना की गई है, अत उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अतिशयोक्ति

लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करने का—प्रस्तुत को बढा-चढाकर कहने को—अतिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। रसखान ने इसका भी सफल प्रयोग किया है—

"या छवि पै रसखानि अब, वारौ कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं पाई रहे सु खोज॥'

कृष्ण छवि की उपमा अभी तक कवियों को नहीं मिली है। वे अभी तक पूर्ण परिश्रम के साथ उस उपमा की खोज रहे है। यह कथन प्रस्तुत को बढा-चढाकर कहने का द्योतक है। अत यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

विरोधाभास

जहा कथन म विरोध का आभास हो, पर वास्तव म विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। रसखान ने इसका कुशलता से प्रयोग किया है। यथा—

'संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढावैं।
नैंक हियें जिहि आनन ही जड मूढ महा रसखानि कहावैं।
जा पर देव अदेव-भू अगना वारत आनन आनन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।'

इस सवैये की तीसरी पंक्ति म प्रयुक्त—वारत आनन आनन पावैं' म विरोधाभास अलंकार है।

समाधि

जहाँ अचानक और कारणों के आ पडने से काम सुगम हो जाये, वहाँ समाधि अलंकार होता है। इसे समाहित अलंकार भी कहते है। रसखान ने

इस अलंकार का अधिक प्रयोग नहीं किया, परन्तु जो उदाहरण हैं वे पूर्णतया प्रभावपूर्ण हैं। यथा—

'कस कुढ्यौ मुनि बानि अकास की ज्यावन्हारहि मारन धायौ।
भादव साँवरी आठई को रसखानि महा प्रभु देवकी जायौ।
रैनि अँधेरी मैं लै वसुदेव महावन मैं अरगै धरि आयौ।
काहु न भौ जुग जागत पायौ सा राति जसोमति सोवत पायौ।'

जिस कृष्ण को योगी भी अपनी जाग्रत अवस्था मे प्राप्त नही कर सकते, वही यशोदा को आसानी से प्राप्त हो गया। अत यहाँ समाधि अलकार है।

उल्लेख—

जहाँ एक ही वर्णनीय विषय का निमित्त भेद से अनेक प्रकार का वर्णन हो, वहाँ उल्लेख अलंकार होता है। निम्नलिखित सवैये म कृष्ण के अनेक रूपो का वर्णन है—

'वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन दिन,
सदा शिव सदा ही धरत ध्यान गाढे है।
वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राजा रक,
जोगी जती ह्वै कै सीत सतयौ अग डाढे है।
वई ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्राननि के,
जाके अभिलख लाख लाख भाँति बाढे है।
जसुधा के आगे वसुधा के मान मोचन पै,
तामरस लोचन खरोचन को ठाढे हैं।।'

अत्युक्ति

सपति सौदर्य शौर्य, औदार्य सौकुमार्य आदि गुणो के मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति अलकार कहते हैं। रसखान ने कृष्ण प्रीति के प्रतिपादन म इस अलकार का प्रयोग किया है। यथा—

'कचन मदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा झलकैयत।
प्रात ही त सदा सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत।
जदपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत।
ऐसे भये तो कहा रसखानि जौ सावरे ग्वार सो नेहन लैयत।'

इस सवैये मे कृष्ण की प्रीति का बढा चढाकर वर्णन करने के कारण अत्युक्ति अलकार है।

अपह्नुति—

जहाँ प्रकृत का—उपमेय का—निषेध करके अप्रकृत का—उपमान का—आरोप किया जाता है वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। रसखान ने इस अलंकार का प्रयोग निम्नलिखित सवैये में किया है।—

'है छलकी अप्रतीत की मूरति मोद बढ़ावै विनोद कलाम में।
हाय न एहै कछू रसखान तू क्यों बहकै विष पीवत धाम में।
है कुच कंचन के कलसा न ये काम की गाठ मठीक की चाम में।
बैनी नहीं मृगनैनिन की ये नसैनी लगी यमराज के धाम में॥'

यहाँ पर कुच और चोटियों का निषेध करके इन पर काम की गाठ और नसैनी का आरोप किया गया है।

व्यतिरेक

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन किया जाए, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यथा—

'धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अगना पग पैंजनी बाजत पीरी कछौटी।
या छवि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सों लै गयौ माखन रोटी।'

इस सवैये में कामदेव के रूप की अपेक्षा कृष्ण के सौन्दर्य का उत्कर्षपूर्ण वर्णन है।

दृष्टांत

जहाँ उपमेय उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है। यथा—

'जा दिन तैं निरख्यौ नन्द नन्दन कानि तजी घर बंधन छूट्यौ।
चारु बिलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन मोर न लूट्यौ।
सागर को सलिला जिमि धावै न रोकी रहै कुल को पुल टूट्यौ।
मत्त भयौ मन संग फिरै रसखान सरूप सुधारस घूट्यौ।"

अर्थान्तरन्यास

जहाँ विशेष से सामान्य का, या सामान्य से विशेष साधर्म्य का वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाए, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यथा—

'मोहन रूप छली वनी डोलति घूमति री तजि लाज बिचारै।
बंक बिलोकनि नैन बिसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारै।
रगभरी मुख की मुसकान लसै सखी कौन जू देह सम्हारै।
ज्यो अरविन्द हिमत करी झकभोरि कै तोरि मरोरि कै डारै।'

यहाँ मुस्कान विशेष का हिमत करी सामान्य से साधर्म्य के द्वारा समर्थन किया गया है।

प्रतीप

जहाँ उपमेय को उपमान कल्पित कर लिया जाए, वहाँ प्रतीप अलकार होता है। यथा—

'मोहन के मन की सब जानति जोहन के मग मोहि लियो मन।
मोहन सुन्दर आनन चन्द तें कुजन देख्यौ मैं स्याम सिरोमन।
ता दिन तें मेरे नैननि लाज तजि कुल कानि की डोलत हो वन।
कैसी करों रसखानि लगी जकरी पकरी पिय के हित को पन॥'

यहाँ चन्द्र की अपेक्षा आनन का उत्कर्ष वर्णित है, अत प्रतीप अलकार है।

सदेह

जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध म सादृश्य-मूलक सदह हो वहाँ सदेह अलकार होता है। यथा—

"वा मुख की मुसकानि पटू अखियनि त नकु टरै नहिं टारी।
जो पलकै पल लागति है पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी।
दूसरी ओर तें नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ बज मारी।
प्रेम की बानि की जोग कलानि गहि रसखानि विचार विचारी।"

इस सवैये की अतिम पक्ति मे सदेह अलकार है।

असगति

कारण कार्य की स्वाभाविक सगति के अभाव म असगति अलंकार होता है। यथा—

'श्री वृषभान की छान छुआ अटकी रसखान तें आन लई री।
वा रसखान के पानि की जानि छुडावति राधिका प्रेममयी री।
जोवन मूरि सी नेज लिये इनहूँ चितयौ उनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही सुरभानि गुडी उरझाय दई री।'

यहाँ सुलझाने वाली गुडी उलझा देती है। अत असंगति अलकार है।

इस विवेचन के पश्चात यह कहना कठिन नहीं कि रसखान की अलंकार योजना बहुत ही सफल और प्रभाववर्द्धक है। इन्होंने अलकारो का प्रयोग श्रम द्वारा नही किया वरन् ये तो स्वत भावावेग मे आगए है। स्वाभाविक रूप से आए हुए अलकार भावो मे प्रभाव और गति उत्पन्न कर देते हैं, यह निर्विवाद मत है। जहाँ अलंकार अभिव्यक्ति के साधन और सहायक होते है वही इनका प्रयोग सार्थक होता है। रसखान की अलकार-योजना ऐसी ही है।

गुण-योजना

रस के उत्कर्ष को बढाने वाले धर्मो को गुण कहा जाता है। वस्तुत. गुण शब्द-योजना का ही दूसरा नाम है। वही काव्य सर्वोत्तम माना जाता है जो भाव-गरिमा से भी मण्डित हो और क्लिष्ट भी न हो, अर्थात् प्रसादगुण सम्पन्न हो। रसखान के काव्य मे यह विशेषता पाई जाती है। इनका शब्द चयन अत्यन्त प्रचलित शब्दो का है। संस्कृत, उर्दू तथा फारसी के वे ही शब्द इन्होंने अपनाए है जो खूब प्रचलित है। इनके पदो की भाव-मयता और सरलता मे प्राय होड सी लगी हुई है। प्रसादगुण के उदाहरणार्थ इनका समूचा काव्य प्रस्तुत किया जा सकता है, फिर भी कुछ पदो को उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है। नायिका की सुकुमारता से सम्बद्ध दो सवैये देखिए—

'कौन की नागरि रूप की आगरि जाति लिये सग कौन की बेटी।
जाको लसै मुख चन्द समान सुकोमल अगनि रूप-लपेटी।
लाल रही चुप लागिहै डीठि सुजाके कहूँ उर बात न पेटी।
टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनौ कारिख-पेटी॥'

× × ×

'यह जाको लसै मुख चन्द समान कमान सी भौंह गुमान हरै।
अनि दीरघ नैन सरोजहू तैं मृग खजन मीन की पाँति दरै।
रसखानि उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहि टरै।
कही नीकें नवै कटि हार के भार सो तासो कहै सब काम करै॥'

छन्द योजना

छन्द और काव्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आदिकाल से ही काव्य में छन्द की महिमा मानी गई है। वेदों मे एक कथा आती है जिसमे बताया गया है कि देवताओं ने अपनी रक्षा के लिए छन्द का परिधान ग्रहण किया

था। इसका तात्पर्य यह है कि छन्द काव्य को अमरता प्रदान करता है। प्राचीन साहित्य की जीवन-रक्षा क एकमात्र आधार छन्द ही है। छन्द-प्रयोग स ही काव्य मे सरसता, सजीवता एव प्रभावोत्पादकता आती है।

रसखान ने अपने काव्य मे तीन छन्दो का प्रयोग किया है—सवैया, कवित्त और दोहा। सवैया वर्णिक वृत्त है। इसके लय तथा सौष्ठव की आचार्यों द्वारा भारी प्रशसा की गई है। लय के आरोह और अवरोह के साथ पाठक अथवा श्रोताओ के हृदयो को चमत्कृत कर देना इस छन्द की प्रमुख विशेषता है। इसमे एक निश्चित स्वर विधान होता है जिसके कारण इसमे एक अनूठे संगीत का जन्म होता है। गणो तथा अन्त के गुरु लघु अक्षरो की दृष्टि से सवैया के अनक भेद हो सकते हैं, पर इसके तीन भेद मुख्य है—

१. भगणाश्रित सवैया
२ सगणाश्रित सवैया
३ जगणाश्रित सवैया

भगणाश्रित सवैया के मदिरा माद, मत्तयमद, चकोर, अरसात और किरीट छ भेद माने गय हैं। मदिरा म सात भगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है। मोद म पाँच भगण, एक मगण, एक सगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है। मत्तगमद म सात भगण और अन्त का अक्षर गुरु होता है। चकोर मे सात भगण और अन्त के अक्षर गुरु-लघु होते है। अरसात मे सात भगण और अन्त म रगण होता है। किरीट म आठ भगण होते हैं। भगणाश्रित सवैया के इन भेदा को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

मदिरा	भगण ७ + ऽ
मोद	भगण ५ + मगण + सगण + ऽ
मत्तगयद	भगण ७ + ऽ
चकोर	भगण ७ + ऽ।
अरसात	भगण ७ + रगण
किरीट	भगण ८

जगणाश्रित सवैया के तीन भेद होते हैं—सुमुखी, मुक्तहरा और वाम। सुमुखी मे सात जगण और अत के अक्षर लघु गुरु होते हैं। मुक्तहरा मे आठ जगण होते हैं। वाम मे सात जगण और एक यगण होता है। ये भेद इस प्रकार दिखाये जा सकते हैं—

सुमुखी	जगण ७+७ । ऽ
मुक्तहरा	जगण ८
वाम	जगण ७+यगण

सगणाश्रित सवैया के भी तीन भेद होते हैं—दुर्मिल, सुन्दरी और अरविन्द। दुर्मिल मे आठ सगण होते हैं। सुन्दरी मे आठ सगण और अन्त का अक्षर लघु होता है। अरविन्द मे आठ सगण और अंत का अक्षर लघु होता है। इन भेदों को इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

दुर्मिल	सगण ८
सुन्दरी	सगण ८+ऽ
अरविंद	सगण ८+।

रसखान के काव्य म इनमे से अधिकाश भेद मिल जाते हैं। सवैया लिखने मे इन्हें जैसी सफलता मिली है, वैसी हिन्दी के विरले कवियो को ही मिल पाई है। इसलिए रसखान और सवैया दोनो शब्द पर्यायवाची से बन गये हैं।

कवित्त के अनेक भेद हो सकते हैं, पर मुख्य दो ही माने जाते हैं—मनहर और घनाक्षरी। मनहर मे ३१ तथा घनाक्षरी मे ३२ अक्षर होते हैं। आठ-आठ अक्षरो के बाद यति का विधान है। पर यह विधान लय पर निर्भर होता है, इसीलिए कभी कभी १६ अक्षर के बाद भी विराम दिया जाता है। कहीं-कहीं पर आठ के स्थान पर ७ या ९ पर भी यति पड जाती है। इनके अतिरिक्त इनके विषय म और भी अनेक सूक्ष्म नियम हैं जो लय माधुरी के आधार पर निर्धारित किये गये हैं। दोहे म विषम चरणो मे तेरह-तेरह मात्राएँ और सम चरणो म ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं। रसखान ने कवित्त और दोहे का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है। प्रेम वाटिका तो दोहो मे ही रची गई है।

अत कहा जा सकता है कि छन्द-योजना की दृष्टि से भी रसखान सफल है।

लोकोक्तियाँ

लोकोक्तियो के प्रयोगो से भाषा म सजीवता आती है। रसखान ने अपने कवित्तो म और सवैयो म यथावसर लोकोक्तियों के प्रभावशाली प्रयोग किये है। यथा—

१. 'मान मना के मना न थिरैहौ'

२. नाहि उपजैगो बाँस नाहि बाजै फेर बाँसुरी'

३. 'छोरा जायो कि मेव मँगायो'

४. 'नेम कहा जब प्रेम कियो'

इस विवेचन के उपरान्त यह कहना अनुचित नही कि रसखान की भाषा सभी दृष्टियो से सफल एव सार्थक है। एक विशिष्ट भाषा मे जिन गुणो की अपेक्षा होती है, वे सब रसखान की भाषा मे मिलते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे—

'इनकी (रसखान की) भाषा बहुत चलती, सरल और शब्दाडम्बर मुक्त होती थी। शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई रसखान और घनानंद की रचनाओं मे है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।'

११

स्वच्छन्दधारा और रसखान

रीतिकाल म दो धाराएँ प्रमुख थीं—रीतिबद्ध धारा और रीति मुक्तधारा रीतिबद्ध धारा क कवि और आचाय परम्परा के निर्वाह म सदैव सतक और जागरूक रहत थे। भावो को अपक्षा वे परम्परा तथा काव्य शास्त्रीय नियमों को प्राथमिकता दते थ। रीतिमुक्तधारा क कवियो के आदश रीतिबद्धधारा के कविया क आदर्शों के बिल्कुल विपरीत थ। वे काव्यशास्त्रीय नियमो तथा परम्परा की अपक्षा भावो का अधिक महत्व देते थे। इसीलिए इस धारा को स्वच्छन्दधारा भी कहा जाता है। इस धारा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

१ भावावेश का प्राधान्य
२ कृत्रिम व्यापारो का त्याग
३ भावो की प्रधानता
४ आत्म निवदन
५ विरह वदना
६ आत्मानुभूति
७ प्रेम का स्वस्थ निरूपण
८ भक्ति का वास्तविक रूप

१ भावावश का प्राधान्य—रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियो क काव्य रचना के प्रयोजना म आकाश पाताल का अन्तर था। रीतिबद्ध कवि केवल दो प्रयोजनो स काव्य रचना किया करत थ—आश्रयदाता का मनोरजन और पाडित्य प्रदशन। इसलिए इनके काव्य प्राय श्रमसाध्य होते थे। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवि भावावेश के कारण ही काव्य रचना करते थे। इस विषय की ओर सकेत करते हुए घनानन्द ने लिखा है—

'लोग हैं लाग कवित्त बनावत मोही तो मेरे कवित्त बनावत ।'

यही कारण है कि रीति बद्ध कवियो की अपेक्षा रीति मुक्त कवियो के काव्यों में अधिक भावप्रवणता है ।

२. कृत्रिम व्यापारो का त्याग—रीतिमुक्त कवियो का काव्य भावनापूर्ण था, अत इसम अभिव्यक्ति व कृत्रिम व्यापारो का त्याग स्वाभाविक ही था। इन कवियो न न तो श्रम करके शब्दो की योजना की है और न भाषा के रूप को सँवारा है । इनकी भाषा सहज और स्वाभाविक है । उसमे कही भी कृत्रिमता दृष्टिगोचर नही होती । अलकार और लोकोक्तियाँ आदि के प्रयोग भी स्वाभाविक होने के कारण भावाभिव्यक्ति मे पूर्णत सहायक हुए है ।

इनके अतिरिक्त विषयो की कृत्रिमता भी इन कवियो को ईप्सित नहीं थी। बाह्य कृत्रिमताओ को सोचना और उनका वणन करना इन कवियो को न तो रुचता था और न वे इस ओर ध्यान ही देते थे । ये उन व्यापारो के प्रदर्शन की चेष्टाओ को भी निरर्थक मानते थे । यही कारण है कि स्वच्छन्द-धारा के कवियो मे विरह और मिलन दोनो म प्रेमियो के हृदय के आन्तरिक पक्षों को उद्घाटित करने की होड सी लगी रही है ।

३. भावों की प्रधानता—इन कवियो के काव्यो मे भावो की प्रधानता है । भाव-प्रधान होने के कारण इनके काव्यो मे चिन्तन-पथ दुर्बल है। रीतिबद्ध कवि बुद्धि के बल से ही भावो का अनुमान करते थे और बुद्धि के बल से ही प्रेम क बाह्य रूप का विधान करते थे । रीतिमुक्त कवि हृदय को ही प्रधान मानत थे और अपने समूचे काव्य की रचना हृदय की प्रेरणा के आधार पर ही करते थे ।

४. आत्म निवेदन—अपने भावो की अभिव्यक्ति मे ये कवि इतने निर्भीक हैं कि जो कुछ कहना चाहते हैं, स्पष्ट कह देत हैं । किसी अन्य माध्यम का सहारा नही लत । रीतिबद्ध कवि अपनी प्रेमाभिव्यजना के लिए, सामाजिक भय के कारण जिन आवरणो का लपेटते चलत हैं उनका इन कवियो व काव्यो में एकदम अभाव है । साथ ही इन कवियो म भक्ति की सच्ची एव वास्तविक अनुभूति थी, अत अपने आराध्य के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख दन की इनम क्षमता है ।

५ विरह वेदना—इन कवियो ने प्रेम की हृदयगम्य अभिव्यक्ति की है और इनका प्रेम लौकिक से अलौकिक बना है, अत इनमे प्रेम के विरह पक्ष की वास्तविकता मिलती है। ये कवि जिस प्रकार सयोग वर्णन म अन्तर्मुख रहते हैं और उसी प्रकार वियोग वर्णन मे भी रहते हैं। बल्कि वियोग वर्णन मे इनकी अन्तर्मुखता और भी अधिक बढ़ जाती है। इसीलिए इनके विरह वर्णन म जो स्वाभाविकता और मार्मिकता है, वह रीतिबद्ध कवियो के काव्यो मे नही मिलती। विरह के प्राय सभी पक्षो को लेकर ये कवि चले हैं। इनमे विरह वेदना की इतनी प्रधानता है कि सयोग म भी य लोग एक प्रकार का वियोग-सा ही दखते हैं। अत इन्ह न तो सयोग मे शान्ति है और न वियोग मे। इनका विरह-वर्णन अन्तर्मुखी है, रीतिबद्ध कवियो की भाँति बहिर्मुखी और मासल नही।

६ आत्मानुभूति—रीतिमुक्त कवियो ने सदैव हृदय को प्रधानता दी, फलत इनक काव्यो म अत्मानुभूति का अश पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। रीतिबद्ध कवियो की भाँति बुद्धि के बल पर, इहोने दूर की कौडी लाने का कभी प्रयत्न नही किया, जिन भावो से इनका परिचय था और जो भाव इनके हृदय की सीमा म सहज स्वाभाविक रूप से आ सकते थे, उन्ह ही इन कवियो ने अपनाया और उन्ही की अभिव्यक्ति की। इसीलिए इन कवियों के काव्यो म आत्मानुभूति का पक्ष प्रबल है।

७ प्रेम का स्वस्थ रूप—रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियो न लौकिक शृगार को महत्ता दी और अथ स इति तक उसी का वर्णन किया। फलत उनक काव्य म प्रेम का मासल रूप ही सुरक्षित रह गया। प्रेम भाव के जो अन्य सूक्ष्म एव उदात्त अग होते हैं, उनकी ओर न तो इन कवियो ने कोई ध्यान ही दिया और न ऐसा करना इनके लिए आवश्यक था। अत प्रेम इनकी दृष्टि म एक प्रकार का प्रमुखतम काम भाव ही बनकर रह गया। इसके विपरीत रीतिमुक्त कविया न प्रेम को हृदय के एक उदात्त भाव क रूप में ग्रहण किया और इसकी स्वस्थता का आद्योपात वर्णन किया। इनकी दृष्टि मे प्रेम का पथ ही एक ऐसा पथ है जो परमात्मा तक आत्मा को ले जाने मे समर्थ है। एक बात और, रीतिबद्ध कवियो ने प्रेम के सम रूप पर जोर दिया है और रीतिमुक्त कवियों ने विषम-रूप पर। इनकी दृष्टि से, स्वच्छन्द प्रेम

का चरम उत्कर्ष विषमता में ही निष्पन्न होता है। ये लोग प्रेम रूप को पारिवारिक प्रेम के लिए ही उचित समझते हैं।

८ भक्ति का वास्तविक रूप—भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति का जो आन्दोलन चला वह दिनप्रति दिन इतना जोर पकड़ता गया कि राधा और कृष्ण मानस मानस में रम गये। उनकी लीलाएँ सभी के मनों को आप्लावित करने लगी। रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों ने कृष्ण भक्ति की इस प्रसिद्धि का लाभ उठाया और भक्तिकाल से अत्यन्त सुपरिचित राधा और कृष्ण को नायिका तथा नायक के रूप में ग्रहण कर लिया और मन खोलकर इनके शृंगार का वर्णन किया। भक्तिकाल में जो शृंगार अलौकिक माना जाता था, रीतिकाल में आकर वह अलौकिक और मांसल बन गया। रीतिकालीन कवियों ने राधा और कृष्ण को अपनाया इसलिए था कि उनके काव्य में प्रभावोत्पादकता तथा चमत्कार आ जाय। राधा कृष्ण की भक्ति से उनका दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। एक रीतिकालीन कवि ने तो स्पष्ट ही कहा है—

आगे के सुकवि रीझ हैं तो कविताई
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

सुमिरन के बहाने में भक्ति की वास्तविकता कितनी होती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों के हृदयों में भक्ति की सच्ची एवं स्वाभाविक भावना थी। ये योग पहले भक्त थे और बाद में कवि। कविता इनके लिए साधन थी रीतिबद्ध कवियों की भाँति साध्य नहीं।

स्वच्छन्द धारा की इन प्रमुख विशेषताओं पर दृष्टिपात करने के पश्चात् अब इनके आधार पर रसखान के काव्य की समीक्षा करना आवश्यक है।

रसखान और स्वच्छन्द भाग

रसखान का काव्य भावों की मंजूषा है। जिधर भी देखिये, इनके काव्य में भावों का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यदि ये भक्ति परक भावों की अभिव्यंजना करते हैं तो उसी हृदय से जो एक वास्तविक भक्त का हृदय होता है। अपने आराध्य के प्रति पूर्ण विश्वास भक्त हृदय की पूर्णतम विशेषता होती है। रसखान भी इसी विश्वास को धारण किये हुए हैं और कहते हैं कि कृष्ण जिसका रक्षक है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता यहाँ तक कि यमराज भी उसे कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता—

'द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गोतम गेहिनी कैसी तरी, प्रह्लाद को कैसें हर्यौ दुख भारो।
काहे कों सोच करै रसखानि कहा करि है रविनन्द बिचारो।
ताखन जाखन राखियै माखन-चाखनहारो सो राखनहारो॥'

रसखान ने जिस विषय का भी प्रस्तुतीकरण किया है, उसी को अत्यन्त भावपूर्ण रीति से व्यक्त किया है। यथा—

रूप-माधुरी—

'आवत हैं वन तें मनमोहन गाइन संग लसै व्रज-ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु ख्याला।
हेरत हेरि थकै चहुँ ओर तें झाँकि झरोखन तें व्रज-बाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यो सब द्यौस को ताप-कसाला॥'

वक्र दृष्टि—

'आली लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना।
गंडनि पै छलकै छवि कुंडल मंडित कुंतल रूप की सैना।
दीरघ बंक बिलोकनि की अवलोकनि चोरति चित्त को चैना।
मो रसखानि हर्यौ चित्त री मुसकाइ कहे अधरामृत बैना॥'

मुसकान माधुरी—

'वा मुख की मुसकान भटू अँखियानि तें नेकु टरै नहिं टारी।
जो पलकैं पल लागति हैं पल ही पल माँझ पुकारै पुकारी।
दूसरी ओर तें नेकु चितै इन नैनन नेम, गह्यौ बजमारी।
प्रेम की बानि कि जोग कलानि गही रसखानि बिचार बिचारी॥'

सौन्दर्य वर्णन—

'मोरपखा सिर कानन कुंडल कुंतल सों छवि गंडनि छाई।
बंक बिसाल रसाल बिलोचन हैं दुख मोचन मोहन माई।
आली नवीन महाधन सो तन पीत पटा ज्यौं छटा बनि आई।
हौं रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगौरी सी लाई॥'

कुंजलीला—

'मुंजगली मैं अली निकसी तहाँ सांकरें ढोटा कियौ भटभेरो।
माई री वा मुख की मुसक्यानि गयौ मन बूडि फिरै नहिं फेरो।
जोरि नियौ दृग चारि लियो चित्त डार्‌यो है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करौं अब क्यौं निकसौ रसखानि परयौ तन रूप को घेरो।।'

रसखान-काव्य म कृत्रिम व्यापारा का अभाव है। वर्णन और चेष्टा दोनो में ही स्वाभाविकता हैं। नटखट कृष्ण गोपियों से छेडछाड करते हैं। गोपियाँ कितनी स्वाभाविक भाषा मे उसकी भर्त्सना करती हैं—

'अन्त तें न आयौ याही गाँवरे को जायौ,
माई बापरे जिवायौ प्याइ दूध वारे वारे को।
सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँडि चाहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे द्वारे को।
मैया की सौ सोच कछु मटकी उतारे को न,
गारस के ढारे को न चीर चीरि डारे को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी माँझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को।।'

चेष्टाओं का भी रसखान ने स्वाभाविक वर्णन किया है। कृष्ण किसी गोपी को मार्ग मे ही घेर लेते हैं। उनकी आँखें चार होती हैं। तब कृष्ण अपना नटखटपना शुरू करते हैं। तब बेचारी विवश गोपी अपनी लज्जा बचाने के लिए अपने ही वस्त्रा म इस प्रकार लिपट जाती है जैसे सावन के बादल में छिपकर बिजली भीतर ही भीतर तडप रही हो—

'पहलें दधि लै गई गोकुल मैं चख चारि भए नट नागर पैं।
रसखानि करी उनि मैनमई कहैं दान दै दान खरे अरपैं।
नख तें सिख नील निचोल लपेट सखी सम भाँति कँपैं टरपैं।
मनौ दामिनि सावन के घन मैं निकसैं नहीं भीतर ही तरपैं।।'

वस्तुत रसखान की दृष्टि मे प्रेम एक अत्यन्त उदात्त भाव है। इन उदात्त भावों से सम्बद्ध भावा म कृत्रिमता लाना इसके औदात्य को नष्ट करना है। इसीलिए इन्होने सर्वत्र स्वाभाविकता का ध्यान रक्खा है।

रसखान का काव्य भाव प्रधान है। शब्दा का सचयन और सयोजन

इतनी कुशलता से किया गया है कि सर्वत्र भावों की प्रबल धारा अपनी अबाध और सहज गति से प्रवाहित हो रही है। कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम को किस सरलता किन्तु भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करती है—

काल्हि पर्‌यो मुरली धुनि मैं रसखानि लियौ कहुँ नाम हमारौ।
ता दिन तें भई बैरिन सास कितौ कियौ झाँकन देति न द्वारौ॥
होत चबाव बलाय सों आली री जो भरि आँखिन भेंटियै प्यारौ।
बाट परी अब ही ठिठक्यौ हियरे अटक्यौ पियरे पटवारौ॥'

'पियरे पटवारौ' में अनन्त भावों की गरिमा के साथ-साथ अपार आत्मीयता सन्निहित है। दानलीला में कृष्ण राधा संवाद के अन्तर्गत और भी अधिक भावप्रवणता दृष्टिगोचर होती है। यथा—

कृष्ण—

'एरी कहा वृषभानुपुरा की तौ दान दियें बिन जान न पैहौ।
जौ दधि माखन देव जू चाखन भूमत लाखन या मग ऐहौ।
नाहिं तौ जो रस सो रस लैहौ जु गोरस बेचन फेरि न जहौ।
नाहक नारि तू रारि बढ़ावति गारि दियें फिरि आपहिं दैहौ॥'

राधा—

गारी के दवैया बनवारी तुम कहौ कौन
हम तौ वृषभान की कुमारी सब जानो है।
जोर तौ करोगे जाइ जासों हरि पार पाइ
भुरही तें आजु मो सों कैसो हठ ठानो है।
बूझि देखौ मन माहिं अरुभत मग जात
बूझि हौ निदान काहू जौन कहौ मानो है।
मेरे जान कोऊ मीरखान आवैं दही छीनैं
तू तौ है अहीर मोहिं नाहिं पहिचानो है।

आत्म निवेदन भक्त की एक प्रमुख विशेषता होती है। इसके द्वारा भक्त अपने जीवन के सारे कार्यों का—विशेषतः पापों का—अनावरण अपने आराध्य के समक्ष कर देता है। इस अनावरण का कारण होता है अपने आराध्य के प्रति अगाध विश्वास। रसखान में सूर अथवा तुलसी जैसा आत्म

निवेदन तो नही मिलता, पर अपने आराध्य के प्रति इन्होने अगाध विश्वास अवश्य व्यक्त किया है । यथा—

'कहा करै रसखान को कोई चुगुल लबार ।
जो पै राखन हार है माखन चाखन हार ॥'

इस प्रकार के अनेक उदाहरण रसखान काव्य मे मिलते हैं ।

आत्म समर्पण भी अगाध विश्वास का एक अग है । रसखान जिस विधि से स्वय को अपने भगवान के प्रति समर्पित करते हैं, वह विलक्षण है । इस विषय मे इनका निम्नलिखित सवैया बहुत प्रचलित है—

'मानुष हौं तौ वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नद की धेनु मँझारन ।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धरयौ कर छत्र पुरदर धारन ।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कुल कदम्ब की डारन ॥'

विरह-वेदना की अभिव्यक्ति भक्तो के लिए प्रमुख रही है । फारसी-साहित्य मे तो यही एकमात्र सोपान है जिससे प्रियतम अथवा आराध्यदेव तक पहुँचा जा सकता है । रसखान के विरह का अत्यन्त सजीव एव स्वाभाविक वर्णन किया है । यथा—

'बाल गुलाब के नीर उसीर सो पीर न जाइ हियैं जिन ढारौ ।
कज की माल करौ जु बिछावन होत कहा पुनि चदन गारौ ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखानि को काहे को जारे पै जारौ ।
चाहति हौ जु जिवायौ पट्ट तौ दिखावौ वडी वडी आँखिनिवारौ ॥'

प्रियतम के सान्निध्य के बिना विरहिणी की विरह-वेदना का और उपचार ही क्या हो सकता है ।

कही-कही परम्परा के अवाछित चक्कर मे आकर अथवा फारसी प्रभाव के कारण रसखान ऊहात्मक वर्णन भी कर गये हैं । पर ऐसे स्थल कम ही हैं ।

वास्तविक काव्य-आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ है भी नहीं । रसखान किसी काव्य-शास्त्रीय नियम से न तो अवगत ही है और न यह विशेषता इनके लिए आवश्यक ही है । अपने भावावेश म ही इनकी

वाणी फूटती है और वाणी का यही प्रस्फुटन सरस एव सच्चे काव्य को जन्म देता है।

अन्य स्वच्छन्दवादी कवियो की भाँति रसखान ने भी प्रेम के स्वस्थ रूप का चित्रण किया है। प्रेम इनकी दृष्टि मे हृदय की सबसे उदात्त भावना है। इनके मत से शुद्ध और वास्तविक प्रेम वही है जिसमे अकारण ही आकर्षण हो। गुण, यौवन, रूप आदि के आकर्षण से जो प्रेम होता है, उसे शुद्ध नहीं कहा जा सकता। पुत्र, कलम आदि के प्रति किया गया प्रेम भी स्वाभाविक और सच्चा नही है। वास्तव मे प्रेम भगवान का ही दूसरा रूप है। रसखान ने प्रेम का सागोपाग विवेचन किया है एतद्विषयक इनके दोहे 'प्रेम वाटिका' मे सग्रहित है।

रसखान सच्चे हृदय से भक्त थे। रीतिकालीन कवियों की भाँति भक्ति का बहाना इन्होंने नही लिया था। इसलिए इनके काव्य मे आद्योपात कृष्ण-भक्ति की धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। इनकी भक्ति साधना मे वे सभी विशेषताएँ मिलती हैं जो वैष्णव भक्ति के लिए अनिवार्य हैं।

अत कहा जा सकता है कि रसखान-काव्य मे वे सभी गुण विद्यमान हैं जो स्वच्छन्द काव्यधारा मे पनपे है। डा० मनोहरलाल गौड के शब्दो मे—

'• रसखान मे अपने समय की काव्य प्रवृत्तियो तथा अनुभूति विधानों का परिचय तो दिखाई पडता है पर अनुसरण नही। उन्होने अपना ही स्वानुकूल मार्ग बनाया। उस मार्ग मे विशुद्ध अप्रतिहत प्रेम की अनुभूति का प्राचुर्य था और उसकी अनावृत्त अभिव्यक्ति थी जो स्वछन्द मार्ग की ओर सकेत करती है शास्त्रीय परम्परा की ओर नही। इसका तात्पर्य यह तो कदापि नहीं कि रसखान ने जान-बूझकर शास्त्रीय मार्गों का सगठन किया है, या वे काव्य के स्वच्छन्द मार्ग से यथाविधि परिचित थे। उनके जीवन का सयोग मुसलमान प्रेमी भक्त होने के नाते विविध पद्धतियो के सम्मिश्रण का कारण बन गया था। वैसा ही सम्मिश्रण कबीर मे भी हुआ था, पर कबीर ज्ञानमार्गी होकर कठोर भी हो गये और खडन-परायण भी। हृदय की अनुभूतियों को अपने ढंग से व्यक्त करने की सरस प्रवृत्ति उनम नही आई जो रसखान मे आ गई।'

सुजान-रसखान

भक्ति-भावना

सवैया

१ मानुष हों तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल-कदम्ब की डारन ॥१॥

शब्दार्थ—मानुष हौं=यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य-योनि मिले। मँझारन=मध्य मे। पाहन=पत्थर। छत्र=छाता। पुरन्दर=इन्द्र। धारन=गर्व नष्ट करने के लिए। कालिन्दी-कूल कदम्ब=यमुना के तट पर खडे हुए कदम्ब के वृक्ष जिन पर कृष्ण अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे। डारन=डालियो मे।

अर्थ—कृष्ण के प्रति अपनी स्वतन्त्र भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति करते हुए रसखान कहते हैं कि यदि मुझे आगामी जन्म मे मनुष्य योनि मिले तो मैं वही मनुष्य बनूँ जिसे ब्रज और गोकुल गाँव के ग्वालो के साथ रहने का अवसर मिले। आगामी जन्म पर मेरा कोई वस नही है ईश्वर जैसी योनि चाहेगा, दे देगा, इसलिए यदि मुझे पशु योनि मिले तो मेरा जन्म ब्रज या गोकुल मे ही हो, ताकि मुझे नित्य नन्द की गायो के मध्य मे विचरण करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके। यदि मुझे पत्थर योनि मिले तो मैं उसी पर्वत का बनूँ जिसे श्रीकृष्ण ने इन्द्र का गर्व नष्ट करने के लिए अपने हाथ पर छाते की भाँति उठा लिया था। यदि मुझे पक्षी योनि मिले तो मैं ब्रज में ही जन्म पाऊँ ताकि मैं यमुना के तट पर खडे हुए कदम्ब के वृक्ष की डालियो मे निवास कर सकूँ।

विशेष—१ कवि ने अपना सम्बन्ध उन्ही वस्तुओ से जोडने की इच्छा प्रकट की है जिनसे कृष्ण का सम्बन्ध रहा है। भक्त को चाहे जिस अवस्था मे रहना पडे, उसे उसके आराध्यदेव के दर्शन नित्य मिलते रहे, यही उसके

जीवन का लक्ष्य होता है। रसखान ने भी उपर्युक्त सवैये में इस लक्ष्य की भावमयी अभिव्यञ्जना की है।

२. 'बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन' में तथा 'कालिन्दी कूल-कदम्ब की' में छेकानुप्रास अलकार है।

३. 'पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर-धारन' में निम्नलिखित अन्तर्कथा निहित है—

कृष्ण के आदेश से ब्रजवालो ने इन्द्र की पूजा छोडकर गौओ की पूजा करनी आरम्भ कर दी। इस बात से इन्द्र अत्यन्त कुपित हुआ। उसने ब्रज को डुबाने के लिए मूसलाधार वर्षा कर दी। कृष्ण ने ब्रज की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को उठाकर छाते की भाँति ब्रज के ऊपर लगा दिया। तब इन्द्र ब्रज का कुछ भी न बिगाड सका। उसका गर्व नष्ट हो गया।

पाठान्तर—'मानुष हौं तो वही रसखानि बसो नित गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो ब्रज छत्र पुरन्दर-धारन।
जो खग हौं तो बसेरा करौं वही कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन।'

तुलना—'ब्रज के लता पता मोहि कीजै।' —हरिश्चन्द्र

सवैया

जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करैं करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज रेनुका अंग सवारन।
खास निवास लियौ जु पै तौ वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥२॥

शब्दार्थ—रसना=जीभ। रस=इन्द्रियों को आनन्द देने वाले मधुर, अम्ल, लवण, कटु कषाय और तिक्त रस। नीकी=अच्छी। बुहारन=साफ करना, झाडू देना। रेनुका=धूल। कालिन्दी कूल=यमुना का तट।

अर्थ—रसखान अपने आराध्यदेव से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे देव, मुझे सदा अपने नाम का स्मरण करने दो, ताकि मेरी जीभ इन्द्रियों के आनन्द में डूब जाये। मुझे कुंजों में बनी हुई अपनी कुटियों में झाडू लगाने दो,

जिससे मेरे हाथ सत्कार्य करते रहे। मुझे व्रज की धूल मे अपने शरीर को धूसरित करने दो, जिससे मुझे अणिमा आदि आठो सिद्धियो का सुख मिल जाये। यदि आप मुझे निवास करने के लिए कोई स्थान देना चाहते हैं तो यमुना-तट पर खडे हुए उन्ही कदम्ब की डालियो मे दीजिए जहाँ पर आप अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे।

विशेष—*'जा रसना रसना विलसै' मे यमक तथा 'करै करनी,' 'कुञ्ज-कुटीरन', 'सिद्धि समृद्धि'* और *'कालिंदी-कूल-कदम्ब की'* मे छेकानुप्रास अलकार है।

सवैया

'बैन वही उनको गुन गाइ श्रौ मान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के सग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों रसखान वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी।'

शब्दार्थ—बैन=वाणी। सानी=युक्त। सरैं=माला पहनायें। पाइ=पैर चरण। अनुजानी=अनुगामी। जान=प्राण। रसखानी=अन्तिम पक्ति मे यह शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है, अत इसके अर्थ क्रमश ये हैं—(१) कवि का नाम, (२) आनन्द का भण्डार, (३) श्री कृष्ण, (४) प्रेम का खजाना, अर्थात् अत्यन्त प्रेम करने वाला।

अर्थ—मनुष्य जीवन की सफलता एव सार्थकता तभी है जब वह स्वय को अपने आराध्य देव के प्रति पूर्णतया समर्पित कर दे, इसी भाव का प्रकट करते हुए रसखान कहते है कि वही वाणी सार्थक है जो कृष्ण के गुणो का गान करती है, वे ही कान सार्थक हैं जो कृष्ण की वाणी से युक्त रहते हैं, वे ही हाथ सार्थक है जो कृष्ण के शरीर पर माला पहनाते हैं; वे ही चरण सार्थक हैं जो कृष्ण का अनुगमन करते हैं, उनके पीछे पीछे चलते हैं, वे ही प्राण सार्थक हैं जो सदैव कृष्ण के साथ रमे हैं, वही मान सार्थक है जो कृष्ण को द्रवित करके उनसे मनमानी बात करा लेता है। इसी प्रकार वही आनन्द के भण्डार श्री कृष्ण हैं जो अपने भक्तो को अत्यन्त प्यार करते हैं।

विशेष—इस सवैया की अन्तिम पक्ति मे यमक अलकार का अत्यन्त चमत्कारपूर्ण एव भावपूर्ण प्रयोग है।

दोहा

कहा करै रसखानि को, कोऊ चुगुल लवार।
जो पै राखनहार है, माखन चाखनहार ॥४॥

शब्दार्थ—चुगुल=चुगलखोर। लवार=झूठा, दुष्ट। राखनहार=रक्षक। माखनचाखनहार=श्रीकृष्ण।

अर्थ—श्रीकृष्ण जिसके रक्षक हैं, उनका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता, इस भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं कि यदि श्रीकृष्ण मेरे रक्षक हैं तो मेरा कोई भी चुगलखोर तथा दुष्ट व्यक्ति कुछ नहीं बिगाड सकता।

विशेष—१. 'जो पै राखनहार है, माखन-चाखनहार' मे यमक अलंकार है।
२ कहते हैं कि बादशाह अकबर ने रसखान को दीने-इलाही मे दीक्षित होने के लिए कहा, किन्तु य दीने इलाही मे सम्मिलित न होकर कृष्ण-भक्त बन गय। तब किसी व्यक्ति ने बादशाह से आकर इनकी चुगली की और इन्हे कठोर दण्ड देने का परामर्श दिया। इस घटना की प्रतिक्रिया-स्वरूप रसखान ने उपर्युक्त दोहे की रचना की।

पाठान्तर—कहा करै रसखान को, लपट लोग लबार।
जो पत राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥

तुलना—१. 'जो पै राखि है राम तो मारि है कोरे।'
—तुलसीदास

२. रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी चोर लवार।
जो पत रासनहार है माखन चाखनहार ॥
—रहीम

८. दोहा

विमल सरल रसखानि, भई सकल रसखानि ॥
सोई नव रसखानि को, चित चातक रसखानि ॥५॥

शब्दार्थ—विमल=शुद्ध। रसखानि मिलि=कृष्ण से मिलकर। रसखानि=कृष्ण।

अर्थ—रसखान कवि कहते हैं कि शुद्ध एव सरल स्वभाव वाली गोपियाँ जिस कृष्ण से मिलकर उसी का रूप बन गई, मेरा मन उसी दयालु रसखान (आनन्द-सागर कृष्ण) का घातक बना हुआ है।

विशेष—१. यमक अलकार।

२ चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है, अत अपने प्रेम की अभिव्यक्ति सभी भक्त-कवियो ने चातक के माध्यम से ही की है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो चातक प्रेम का सागोपाग ही वर्णन किया है।

दोहा

सरस नेह लवलीन नव, द्वै सुजान रसखानि।
ताके आस विसास सो पगे प्रान रसखानि ॥६॥

शब्दार्थ—नेह=प्रेम। लवलीन=तन्मय। नव=नूतन। द्वै=दोनो, कृष्ण और राधा।

अर्थ—कवि कृष्ण और राधा के मिलन की स्तुति करता हुआ कहता है कि जो राधा और कृष्ण के सरस तथा नूतन प्रेम मे तन्मय हैं, उन्हीं की दया की आशा और विश्वास से मेरे प्राण सदैव सम्पृक्त है।

कृष्ण का अलौकिकत्व

सवैया

सकर से सुर जाहि जपै, चतुरानन ध्यानन धर्म बढावैं।
नैंक हियें जिहि आनत ही जड मूढ महा रसखानि कहावैं।
जा पर देव अदेव भू अगना वारत प्रानन प्रानन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥७॥

शब्दार्थ—सकर से सुर=शिव जैसे देव। चतुरानन=ब्रह्मा। नैंक=थोडा सा। आनत ही=लाते ही। जड मूढ=अत्यन्त मूर्ख। महा रसखानि=विपुल ज्ञान के भडार। अदेव=किन्नर। भू-अगना=पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ। वारत प्रानन=प्राणों को न्यौछावर करके।

अर्थ—कृष्ण की भक्त-वत्सलता एव लौकिक लीला का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस कृष्ण का जप शकर जैसे देव करते हैं, जिनका

ध्यान करके ब्रह्मा अपने धर्म मे वृद्धि करते हैं, जिसका तनिक सा ध्यान भी हृदय मे लाते ही अत्यन्त मूर्ख भी विपुल ज्ञान के भडार बन जाते हैं, जिस पर देव किन्नर और पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्राणो को न्योछावर करके सजीवता प्राप्त करती हैं, उसी कृष्ण को अहीर की लडकियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचाती हैं।

विशेष—'सकर से सुर', 'ध्यानन धर्म', 'छोहरिया छछिया भरि छाछ' मे छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास, 'नैक हियें जिहि आनत ही जड मूढ महा रसखानि कहावे' म द्वितीय विभावना, वारत प्रानन प्रानन पावे म विरोधाभास और जापर देव अदेव भू-अगना' म यमक अलकार है।

पाठातर—इस सवैया की तृतीय पक्ति के निम्नलिखित पाठातर मिलते हैं—

१. *जापर सुन्दर दवबधू नहिं वारत प्रान अवार लगावें।*
२ *जापर देव भुजग वरगना वारति प्रान सु प्रान से पावें।*
३. जापर देव अदेव भुवगम वारत प्रानन पार न पावें।

सवैया

सेष गनेम महस दिनस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावें।
जाहि अनादि अनत अखण्ड अछेद अभेद सु वेद बतावें।
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावें ॥८॥

शब्दार्थ—सेष=शेषनाग। महेस=शिव। दिनेस=सूर्य। सुरेस=इन्द्र। अछेद=अछेद्य, अमर। अभेद=अभेद्य, जिसका रहस्य न जाना जा सके। पचि=कोशिश करक।

अर्थ—*कृष्ण की भक्त-वत्सलता एव लौकिक लीला का वर्णन करते हुए* रसखान कहते हैं कि जिस कृष्ण के गुणो का शेषनाग गणेश, शिव, सूर्य, इन्द्र निरतर स्मरण करते हैं। वेद जिनके स्वरूप का निश्चित ज्ञान प्राप्त न करके उसे अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद्य, अभेद्य आदि विशेषणों से युक्त करते हैं। नारद, शुकदेव और व्यास जैसे प्रकाड पडित भी अपनी पूरी कोशिश करके जिसके स्वरूप का पता न लगा सके और हार मानकर बैठ गए, उन्हीं कृष्ण को

अहीर की लडकियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचाती है।

विशेष—श्रुत्यनुप्रास, छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

सवैया

गावैं गुनी गनिका गधरब्ब औ सारद सेष सबै गुन गावत।
नाम अनत गनत गनस ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ॥९॥

शब्दार्थ—गनिका=अप्सरा। गधरब्ब=गधव, सगीत-प्रिय दवयानि। सारद=शारदा। सेष=शेषनाग। त्रिलोचन=शिव। छोहरियाँ=लडकी। छछिया=मिट्टी का छोटा सा पात्र।

अर्थ—कृष्ण की भक्त-वत्सलता एव लोक-लीला का वणन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस कृष्ण के गुणो का गान अप्सरा, गधव, शारदा और शेषनाग सभी करते हैं, गणेश जिसके अनत नामो का स्मरण करत है, ब्रह्मा और शिव जिसके रहस्य को नहीं जान पाते, जिसे प्राप्त करने के लिए योगी, यति, तपस्वी और सिद्ध निरन्तर समाधि लगाये रहते है, फिर भी उसका भद नही जान पाते, उन्ही कृष्ण को अहीर की लडकियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचाती हैं।

विशेष—इस सवैया मे छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास का सुन्दर प्रयोग है।

पाठान्तर—'गावत', 'पावत', 'लगावत' और 'नचावत' के स्थान पर क्रमशः 'गावैं', 'पावैं,' 'लगावैं', और नचावैं पाठ भी मिलत है।

सवैया

राय समाधि रहे ब्रह्मादिक योगी भये पर अन्त न पावैं।
साँझ ते भोरहिं भोर ते साँझहि सेस सदा नित नाम जपावैं।
ढूँढ फिरे तिरलोक मे साख सुनारद। कर बीन बजावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं ॥१०॥

शब्दार्थ—भोर=प्रातःकाल। साँझ ते भोरहि भोर ते साँझहि=सन्ध्याकाल से प्रातःकाल तक और प्रातःकाल से सन्ध्याकाल तक; अर्थात् हर समय,

निरंतर। सेस=शेषनाग। तिरलोक मे=तीनो लोको मे। सुनारद=महर्षि नारद। साख=साक्षी।

अर्थ—कृष्ण के अलौकिकत्व का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि ब्रह्मा आदि अनेक योगी उस कृष्ण को जानने के लिए समाधि लगाये हुए हैं पर वे उसका अंत नही पाते अर्थात् कृष्ण दुर्बोध्य और अनन्त हैं। शेष नाग अपनी सहस्रा जिह्वाओ से निरंतर उसका नाम जपते रहते हैं। महर्षि नारद अपने हाथ मे वीणा लेकर उसे बजाते हुए तीनो लोको मे ढूँढ फिरे हैं, पर कोई भी ऐसी साक्षी नही मिली जिसके आधार पर वे यह दावा कर सकें कि उन्होने कृष्ण के रूप को जान लिया है। ऐसे दुर्बोध्य अनन्त कृष्ण को अहीर की लडकिया एक मटकी छाछ के लिए नाच नचाती हैं।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रथावली मे नही है।

सवैया

गुंज गरें सिर मोरपखा अरु चाल गयंद की मो मन भावै।
साँवरो नंदकुमार सबै ब्रजमंडली मैं ब्रजराज कहावै।
साज समाज सबै सिरताज औ लाज की बात नही कहि आवैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥११॥

शब्दार्थ—गुंज=गले में पहनने का एक आभूषण। गयंद=हाथी। लाज=शोभा।

सवैया

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गानन वेद-रिचा सुनि चौगुने चायन ।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।
टेरत हेरत हारि पर्यो रसखानि बतायो न लोग लुगायन ।
देखौ दुरो वह कुंज कुटीर मैं बैठो पलोटत राधिका पायन ॥१२॥

शब्दार्थ—पुरानन गानन=पुराण के गीतों में । चायन=चाव से । कितूं=कहीं भी । सुभायन=स्वभाव । टेरत=पुकारता हुआ । हेरत=खोजता हुआ । लुगायन=स्त्रियों ने । दुरो=छिपा हुआ । पलोटत राधिका पायन=राधा के पैर दबा रहा है ।

अर्थ—कृष्ण की प्रेमाधीनता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि मैंने ब्रह्म को पुराणों के गीतों में ढूँढा, वेद-ऋचाओं को चौगुने चाव से इसी-लिए सुना कि शायद उन्हीं में ब्रह्म का पता चल जाये । मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए । मैंने उसे न तो कहीं सुना और न कहीं देखा । मैं यह भी नहीं जान पाया कि उसका स्वरूप और स्वभाव कैसा है । उसे पुकारते हुए, उसकी खोज करते हुए मैं थक गया और किसी भी नर या स्त्री ने उसका पता नहीं बताया । अन्त में वह मुझे कुंज कुटीर में छिपकर बैठे हुए राधा के पैरों को दबाता हुआ दिखाई दिया ।

सवैया

कंस कुढ्यो सुनि बानी अकास की ज्यावनहारहिं मारन धायौ ।
भादव साँवरी आठई को रसखान महाप्रभु देवकी जायौ ।
रैनि अँधेरी में लै वसुदेव महावन में अरगैं धरि आयौ ।
काहु न चौजुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायौ ॥१३॥

शब्दार्थ—बानी अकास=आकाशवाणी । ज्यावनहारहिं=जन्म लेने वाला ही, देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला ही । भादव साँवरी आठई को=भादों की कृष्ण अष्टमी को । अरगैं=धीरे-धीरे, चुपचाप । चौजुग=चारों युगों में—सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग । जागत=जागृत अवस्था ।

अर्थ—कृष्ण-जन्म का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जब कंस ने यह आकाशवाणी सुनी कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही तुझे

मारने के लिए अवतार ले रहा है तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ। आकाशवाणी के अनुसार ही भादो की कृष्णाष्टमी को आनन्द सागर महाप्रभु कृष्ण ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया। कंस के भय से भयभीत होकर वसुदेव उस नवजात शिशु को अँधेरी रात मे चुपचाप लेकर महावन (मथुरा) की ओर चल दिए। जिस कृष्ण को चारो कालो का कोई भी योगी अपनी समाधि की जागृतावस्था मे भी प्राप्त नही कर सका है, उसी कृष्ण को यशोदा ने रात को अपने पास सोते हुए पाया।

विशेष १. समाधि अलकार।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथ मिश्र द्वारा सपादित 'रसखान ग्रथावली' मे नही है।

तुलना १. 'गावत बेद बिरंच न पायौ सो गोधन गावत गोपन पायौ।

—केशव

२ 'जग जाकी गोद मे सो जसुदा की गोद मे।'

—ब्रजेश

कवित्त

सभु धरै ध्यान जाको जपत जहान सब,
तातें न महान् और दूसर अवरेख्यौ मैं।
कहै रसखान वही बालक सरूप धरै,
जाको कछु रूप रग अद्भुत अवलेख्यौ मैं।
कहा कहूँ आली कछु कहती बनै न दसा,
नन्द जी के अँगना मे कौतुक एक देख्यौ मैं।
जगत को ठाटी महापुरुष विराटी जो,
निरजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं ॥१४॥

शब्दार्थ—अवरेख्यौ मैं=मैंने देखा। अवलेख्यौ मैं=मैंने देखा। कौतुक=तमाशा। जगत को ठाटी=सृष्टि की रचना करने वाला, सृष्टि-स्रष्टा। विराटी=विराट रूप धारण करने वाला। निरजन=विमल, प्रभावातीत। निराटी=अकेला, एकमेव।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की अलौकिकता और उनकी

बाल-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि। शिव जिसको आराध्य मानकर ध्यान करते हैं, सारा संसार जिसकी पूजा करता है, जिससे महान् और दूसरा देव मैंने कोई नहीं देखा। वही कृष्ण साकार बनकर अवतरित हुआ है जिसका रूप-रंग मुझे कुछ-कुछ अद्भुत सा लगा है। हे सखि! क्या कहूँ, मुझसे तो उसकी उस अवस्था का वर्णन ही नहीं हो पा रहा है। बस यह जान लो कि नंद जी के आँगन में मैंने एक तमाशा देखा है। जो कृष्ण संसार की रचना करने वाला है, महापुरुष है, विराट रूप धारण करने वाला है, किसी भी प्रकार के प्रभावों से परे है—प्रभावातीत हैं, केवल एक हैं; अर्थात् वही एक केवल सत्तावृत है, और सारा संसार तो उसी की सत्ता की माया है, उसे मैंने मिट्टी खाते हुए देखा है।

विशेष—१. इस कविता का भावपक्ष निर्बल और दार्शनिकता सबल है।

२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रंथावली' में यह कवित्त नहीं है।

तुलना—'शृणु सखि कौतुकमेकं नंद निकेतांगणे मया दृष्टम्।
गोधूलि धूसरांगो नृत्यति वेदान्त सिद्धांत ॥'

कवित्त

वेई ब्रह्म ब्रह्मा जाहि सेवत है रैन-दिन,
सदासिव सदा ही धरत ध्यान गाढे हैं।
वेई विष्नु जाके काज मानी मूढ राजा रंक,
जोगी जती ह्वै कै सीत सह्यौ अंग डाढे हैं।
वेई ब्रजचंद रसखानि प्रान प्रानन के,
जाके अभिलास लाख-लाख भाँति बाढे हैं।
जसुधा के आगे बसुधा के मान-मोचन में,
तामरस-लोचन खरोचन कौ ठाढे है ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—वेई=वही कृष्ण। सदासिव=सदा भक्त वत्सल शिव। गाढ़े=गंभीर। जाके काज=जिसके लिए! मानी=अहंकारी। मूढ=मूर्ख। रंक=निर्धन। ब्रजचंद=कृष्ण। रसखानि=आनंद के भंडार। जसुधा=यशोदा। वसुधा=पृथ्वी, पृथ्वी पर रहने वाले लोग। मान-मोचन=अहंकार को नष्ट करने वाले। तामरस-लोचन=कमलनयन। खरोचन=खुरचनी।

अर्थ—प्रस्तुत कवित्त मे रसखान कृष्ण के अलौकिकत्व एव बाल लीला की ओर सकेत करते है कि वही कृष्ण ब्रह्म जिनकी पूजा ब्रह्मा जी रात दिन किया करते हैं, भक्त-वत्सल शिव जिनका सदा गभीर ध्यान करते हैं; वही कृष्ण विष्णु जिनके लिए अहकारी, मूर्ख, राजा, निर्धन, सभी प्रकार के लोग भोगी बनकर शीतादि के द्वारा अपने अगो को शिथिल बनाते है, वही आनद के भडार कृष्ण जो प्राणों के प्राण हैं और जिन्हे देखने के लिए लाखो अभिलाषायें लाखों प्रकार से बढती है, जो पृथ्वी पर रहने वाले लोगों का हुश्रवार मिटाने वाले हैं कमल के समान सुन्दर नेत्रो वाले हैं, यशोदा के सामने खुरचनी लेने के लिए खडे हुए हैं।

विशेष—१. इस कवित्त मे कृष्ण के ब्रह्म-रूप की ओर सकेत है।
२ जसुधा के आगे वसुधा के मान-मोचन मे और तामरस-लोचन खरोचन को ठाढे हैं। मे यमक अलकार है।
३ कृष्ण का अनेक रूपो मे वर्णन होने से उल्लेख अलकार है।

तुलना—आगे नदरानी के तनक मम पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो सुनुवत ठाढो है।
—पद्माकर

३ अनन्य भाव

सवैया

सेष सुरेस दिनेस गनेस प्रजेस धनेस महेस मनावौ।
कोऊ भवानी भजौ मन की सब आस सबै विधि जाइ पुरावौ।
कोऊ रमा भजि लेहु महा धन कोऊ कहूँ मन वाछित पावौ।
पै रसखानि वही मरो साधन और त्रिलोक रहौ कि नसावौ॥ १६॥

शब्दार्थ—सेष=शेषनाग। सुरेस=इन्द्र। दिनेस=सूर्य। प्रजेस=ब्रह्मा। धनेस=कुबेर। महेस=शिव। भवानी=पार्वती। पुरावौ=पूर्ण करें। रमा=लक्ष्मी। नसावौ=नष्ट हो जाये।

अर्थ—अनन्य भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति करते हुए रसखान कहते हैं कि चाहे कोई शेषनाग, इन्द्र, सूर्य, गनेश, ब्रह्मा, कुबेर और शिव की भक्ति करे। चाहे कोई पार्वती की भक्ति करके अपने मन की सभी अभिलाषाओं को सभी प्रकार पूर्ण कर लें। चाहे कोई लक्ष्मी की पूजा करके भारी धन

प्राप्त कर लें। चाहे कोई किसी भी प्रकार अपना मनोवांछित फल पा ले, किन्तु मेरा तो एकमात्र साधन कृष्ण ही है। कृष्ण के अतिरिक्त तीनों लोक चाहे रहें, या नष्ट हो जायें, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है।

विशेष—'सेष सुरेस दिनेस गनेस प्रजेस धनेस महेस' में छेकानुप्रास और श्रुत्यनुप्रास अलंकार हैं।

तुलना—'मेरे तो राधिका नायक ही गति लोक दुऊ रहौ कै नसि जाओ।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी, प्रहलाद को कैसें हरयौ दुख भारो।
काहे कौं सोच करै रसखानि कहा करि है रविनन्द विचारो।
ता खन जा खन राखियै माखन चाखनहारो सो राखनहारो॥१७॥

शब्दार्थ—द्रौपदी=पाडवों की स्त्री। गज=हाथी, जिसकी कृष्ण ने ग्राह से रक्षा की थी। गीध=जटायु जो सीता की रक्षा करते समय रावण के बाणों से घायल हुआ था और अन्त में राम ने जिसका उद्धार किया था। अजामिल=एक व्यक्ति का नाम। गौतम गेहनी=गौतम की स्त्री अहिल्याबाई। रवि नन्द=यमराज। ताखन=उस समय। जा खन=जिस समय। माखन-चाखनहारो=श्रीकृष्ण। राखनहारो=रक्षक।

अर्थ—जब कृष्ण रक्षक है तो मनुष्य को किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, इस भाव को व्यक्त करते हुए रसखान कहते हैं कि कृष्ण इतने दयालु हैं कि अपने भक्तों की टेर सुनते ही तुरन्त उनकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। द्रौपदी गणिका गज, गीध और अजामिल ने अपने जीवन में क्या कार्य किये थे क्या उनके कार्य उनका उद्धार करने में समर्थ थे ? इन बातों पर कृष्ण ने कोई ध्यान नहीं दिया और तुरन्त उनका उद्धार कर दिया। इसी प्रकार गौतम—स्त्री अहिल्याबाई को भी मुक्ति प्रदान की तथा हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद के भारी दुख का हरण किया। अतः हे मनुष्य ! जिस समय श्रीकृष्ण तुम्हारे रक्षक हैं, उस समय तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी

चाहिए, क्योंकि उस समय तो यमराज भी तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

विशेष—१ 'पापनहारो सो तापनहारो' में यमक अलंकार है।

२ 'बिचारो' शब्द यमराज की दुर्बलता को साकार कर रहा है, अतः यह शब्द नितांत औचित्यपूर्ण है।

३ अन्तिम पंक्ति में यति दोष है।

सवैया

दस बिदेस के देसे नरेसन रीझ की कोऊ न बूझ करैंगो।
तातें तिन्हैं तजि जानि गिरयौ गुन सौ गुन औगुन गांठि परैंगो।
बांसुरीवारो बड़ो रिझवार है स्याम जु नैसुक ढार ढरैंगो।
लाड़लो छैल वही तो अहीर को पीर हमारे हिये की हरैंगो॥ १८॥

शब्दार्थ—रीझ की=प्रेम की। गिरयौ गुन=अवगुण। रिझवार=रीझने वाला प्रेम करने वाला। नैसुक=तनिक भी। ढार ढरैंगो=प्रीति करेगा। पीर=दुख।

अर्थ—कृष्ण भक्त वत्सल हैं इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए रसखान कहते हैं कि हे मन! तू देश विदेश के राजाओं को परख ले, तेरे प्रेम का कोई भी सम्मान नहीं करेगा। उनके प्रति प्रेम करना अवगुण ही है, क्योंकि चाहे तुममें कितने ही गुण सही, पर उनके साथ रहने से वे अवगुण बन जायेंगे। वह वंशीधर कृष्ण बहुत ही रीझने वाला है, भक्त-वत्सल है, यदि तू उससे तनिक भी प्रेम करेगा तो वह अहीर का लाड़ला पुत्र हमारे हृदय के सारे दुख को दूर कर देगा।

विशेष—१ 'देस बिदेस' में छेकानुप्रास, 'तातें तिन्हैं तजि' में वृत्यनुप्रास और 'सौ गुन औगुन गांठि परैंगो' में यमक अलंकार है।

२ 'रिझवार' शब्द का प्रयोग अत्यन्त भावपूर्ण है।

शब्दार्थ—चिनौती=चुनौती। अनगहिं=कामदेव को। भोग=ऐश्वर्य, पुरन्दर=इन्द्र। मगहिं=सिर पर। मुक्ति तरगहिं मुक्ति की तरगो मे, ज्ञान की चरम कोटि पर। रग=प्रेम। रंगहिं=प्रेम मे।

अर्थ—रसखान मनुष्य को कृष्ण प्रेम के लिए प्रेरित करते हुए कहते है कि हे मनुष्य! चाहे तुमने इतनी सम्पत्ति प्राप्त कर ली है कि उसकी विपुलता देखकर कुबेर को भी सकोच होता है, चाहे तुम इतने रूपवान हो कि अपने सौन्दर्य से कामदेव को चुनौती दे सकते हो, चाहे तुम्हारे पास इतनी सम्पत्ति हो गई है कि जिसे देखकर इन्द्र का मन भी ललचा जाए, चाहे तुमने योग-साधना के द्वारा गगाधर शिव रूप को प्राप्त कर लिया, चाहे तुम्हारी जीभ मुक्ति की लहरो मे डूब गई है, अर्थात् तुम ज्ञान की चरम कोटि पर पहुँच गये हो, किन्तु यदि तुमने मन लगाकर उस कृष्ण से प्रेम नही किया जो राधा-रानी से प्रेम करते हैं तो तुम्हारी ये उपलब्धियाँ व्यर्थ और निस्सार हैं।

सवैया

कचन-मन्दिर ऊँचे बनाइ के मानिक लाइ सदा झलकैयत।
प्रात ही तें सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत।
ऐसे भए तो कहा रसखानि जो सांवरे ग्वार सो नेह न लैयत ॥२०॥

शब्दार्थ—कचन मन्दिर=सोने के महल। मानिक=मोती। नग=हीरा। मघवा=इन्द्र। सावरे ग्वार सो=कृष्ण से। नह=स्नेह, प्रेम।

अर्थ—कृष्ण के प्रति प्रेम ही मनुष्य की सर्वाधिक मूल्यवान सम्पत्ति है। जिसे कृष्ण से प्रेम नही, उसके सभी प्रकार के वैभव निरर्थक है। इसी भाव को प्रस्तुत सवैया मे प्रकट करते हुए रसखान कहते है कि माना तुमने सोने के ऊँचे-ऊँचे महल बनाकर उन्हे मोतियो से सदैव झलका रखा है। तुम्हारे पास इतने हीरे और मोती हैं कि प्रात काल से ही सारी नगरी उन्हें तराजुओ मे तोलने लगती है और फिर भी वे तुल नही पाते। तुम इतने वैभवपूर्ण राजा बन गए हो कि तुम्हारा वैभव देखकर इन्द्र का मन भी ललचाता है, अर्थात् तुम्हारे वैभव की तुलना मे वह अपने वैभव को अत्यन्त तुच्छ मानकर स्वय को दीन हीन अनुभव करता है और चाहता है कि तुम्हारा जैसा वैभव उसके पास भी हो। यदि तुमने कृष्ण से प्रीति नही की है तो तुम्हारा यह सब अपार

वैभव व्यर्थ है।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण की प्रीति ही सबसे विशाल वैभव है। सारे सासारिक वैभव उसके सामने तुच्छ और नगण्य हैं।

विशेष—कृष्ण की प्रीति का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन होने से इस सवैया मे अत्युक्ति अलकार है।

पाठान्तर—तीसरी पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'पाले प्रजानि प्रजापति सो अरु सम्पति सो मघवाहि लजैयत।'

तुलना—'ऐसे भये तो कहा तुलसी जु पै जानकीनाथ के रग न राते।'

—तुलसी

कवित्त

कहा रसखानि सुखसम्पत्ति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अग छार को।
कहा साधे पचानल, कहा सोए बीच नल,
कहा जीति लाए राज सिंधु आर-पार को।
जप बार बार तप सजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हो नही प्यार नही सयो दरबार, चित्त,
चाह्यो न निहारयो जो पै नद के कुमार को॥२१॥

शब्दार्थ—रसखानि=आनन्द देने वाले भडार। सुमार=गणना। छार=धूल भस्म। पचानल=पाँच प्रकार की अग्निया से तप करना, चारो ओर से जलने वाली चार अग्नियाँ तथा ऊपर से सूर्य की प्रखर गर्मी। नल=जल बयार व्रत=बिल्कुल भूखा रहकर तप करना। लबार=मूर्ख। नन्द के कुमार को=कृष्ण को।

अर्थ—कृष्ण की भक्ति के बिना और सभी तप तथा योग साधनाएँ व्यर्थ है, इस भाव को प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं कि हे मनुष्य! यदि तुमने कृष्ण से प्रेम नहीं किया, उसकी शरण मे नहीं गए, भावपूर्ण मन से उसे नहीं चाहा और प्रेममयी दृष्टि से उसे नहीं देखा तो तुम्हारे आनन्द देने वाले सारे भडार व्यर्थ है, तुम्हारी सुख देने वाली सम्पत्ति की कोई गणना नहीं है अर्थात् वे भी नगण्य हैं। शरीर पर भस्म लगाकर योगी बनने से कोई लाभ नहीं

है, पांच अग्नियो के मध्य बैठकर तप करना अथवा जल मे समाधि लगाना भी निरर्थक है। समुद्र के आर-पार तक का राज्य जीत लेने से भी कोई लाभ नहीं है। हे मूर्ख ! कृष्ण के प्रेम के बिना बार-बार जप करने को, निराहार रहकर तप और सयम करने को तथा हजारो तीर्थों की यात्रा करने को कौन बूझता है ? अर्थात् ये सब बेकार हैं।

विशेष—१. 'कीन्हो नही प्यार, नही सेयौ दरबार, चित चाह्यौ, न निहारयौ जो मैं नन्द के कुमार को' मे कोमल वर्णों से युक्त वृत्त्यनुप्रास है।

२. कृष्ण भक्तो की यह प्रमुख विशेषता है कि वे कृष्ण को छोडकर अन्य प्रकार की साधनाओ को निरर्थक और आडम्बरपूर्ण मानते हैं। रसखान के प्रस्तुत कवित्त मे यही विशेषता परिलक्षित होती है।

पाठान्तर—'कहा तन जोगी ह्वै' और 'कहा सोए बीच नल' के स्थान पर 'कहा महा जोगी ह्व' और 'कहा सोए बीच जल' पाठ भी मिलते हैं।

कवित्त

कचन के मन्दिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक-उजारे सो।
और प्रभुताई अब कहाँ लौ बखानो, प्रति,
टारन की भीर भूप टरत न द्वारे सों।
गगाजी मे न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद,
बीस बार गाइ, ध्यान कीजत सवारे सो।
ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जो पै,
चित्त दै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सो ॥२२॥

शब्दार्थ—कचन के मन्दिरनि=सोने के महलो पर। दीठि=दृष्टि। लाल मानिक=लाल मोती। प्रतिहारन की भीर=द्वारपालो की भीड। मुक्ताहलहू=मोतियो को। सवारे सो=शीघ्रता से, प्रात काल मे। पीतपटबारे सो=कृष्ण से।

अर्थ—कृष्ण की प्रीति के अभाव मे दुनिया के सारे वैभव और सारी साधनाएँ निरर्थक हैं, इस भाव को व्यक्त करते हुए रसखान कहते है कि हे

मनुष्य ! यदि तुमने चित्त लगाकर कृष्ण से प्रीति नहीं की है तो तुम्हारे सोने के वे महल बेकार हैं जो सदा लाल मोतियों की दीपमालाओं से प्रकाशित रहते हैं और जिन्हें देखते ही दृष्टि चौंधिया जाती है। तुम्हारी अधिक प्रभुता का तो क्या वर्णन करूँ, यदि तुम इतने प्रभुत्व सम्पन्न हो गए हो कि अनेक राजा तुम्हारे प्रतिहार बने हुए हैं और उनकी भीड़ कभी भी तुम्हारे द्वार से नहीं हटती तो कृष्ण के प्रेम के अभाव में यह प्रभुता व्यर्थ है। चाहे तुम—गंगाजी में स्नान करके मुक्त हस्त से मोतियों का दान करो, अनेक बार वेदों का पाठ करो और प्रातःकाल ध्यानावस्थित हो, किन्तु जब तक तुम कृष्ण से प्रीति नहीं करोगे, तब तक तुम्हारी ये साधनाएँ निष्फल ही रहेंगी।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण की भक्ति ही सर्वोपरि और सर्वोच्च भक्ति है।

विशेष—१ 'दीठि ठहराति नाहिं' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

२ इस कवित्त में 'प्रतिहारन' शब्द खंडित है, अतः यहाँ पद-भंग दोष है।

सवैया

एक सु तीरथ डोलत है इक बार हजार पुरान बके हैं।
एक लगे जप में तप में इक सिद्ध समाधिन में अटके हैं।
चेत जु देखत ही रसखान सु मूढ़ महा सिगरे भटके हैं।
सांचहिं वे जिन आपुनपौ यह स्याम गुपाल पै वारि छके हैं ॥२३॥

शब्दार्थ—बके हैं=कहे हैं कथाएँ सुनाई हैं। चेत=सावधान। सिगरे=सारे। आपुनपौ=अपनापन स्वयं को। छके हैं=मस्त हैं।

अर्थ—तीर्थादि बाह्याडम्बरों का खंडन और कृष्ण प्रेम का मंडन करते हुए रसखान कहते हैं कि कोई मनुष्य तो तीर्थों की यात्रा करता हुआ घूमता है, कोई हजारों बार पुराणों की कथाओं को सुनाता है, अर्थात् पुराणों का पाठ करता है। कोई जप-तप में लगा हुआ है, कोई सिद्ध बनकर समाधि में अटका हुआ है। रसखान कहते हैं कि यदि सावधान होकर इन्हें देखा जाता है तो यही निष्कर्ष निकलता है कि ये सब महामूर्ख बनकर भटक रहे हैं। सही तो वे मनुष्य हैं जो स्वयं को कृष्ण के लिए अर्पित करके उस समर्पण की मस्ती में

मस्त बने हुए हैं।

विशेष १ अनन्यभाव का प्रेम अभिव्यजित है।

२. 'बक' शब्द का प्रयोग कवि के मन की अतिशय घृणा का सूचक है।

३ श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रथावली' मे यह सवैया नही है।

सवैया

सुनियै सब की कहिये न कछू रहियै इमि या भव-बागर मैं।
करियै व्रत नेम सचाई लिये जिन तें तरियै मन सागर मैं।
मिलियै सब सो दुरभाव बिना रहिये सतसग उजागर मैं।
रसखानि गुबिन्दहि यो भजियै जिमि नागरि को चित गागर मैं ॥२४॥

शब्दार्थ—इमि=इस प्रकार। भव-बागर मैं=असत्य ससार मे। उजागर=प्रकाश। नागरि=स्त्री। गागर=पानी का बर्तन।

अर्थ—रसखान सासारिक मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते है कि हे मनुष्य! तुम इस असत्य ससार मे इस प्रकार रहो कि सबकी सुनो, पर अपनी बात किसी से भी मत कहो। जो भी व्रत और नियम ग्रहण करो वे सत्य हो। सत्य व्रत और नियमो से ही मन का सागर पार किया जा सकता है, अर्थात् मन को अपने वश मे किया जा सकता है, सबसे अच्छी भावना लेकर मिलो और सदैव सतसग के प्रकाश मे रहा, अर्थात् अच्छी सगति मे ही उठो-बैठो और एकाग्र मन से कृष्ण की भक्ति करो तुम्हारा मन कृष्ण की भक्ति म उसी प्रकार एकाग्रता से लगना चाहिए जिस प्रकार स्त्री का मन अपन पानी के बर्तन म लगा होता है। (स्त्रियाँ अपने सिर पर जब पानी का बर्तन लेकर चलती है तो उसके हाथ नही लगाती। वह गिर न जाये, इसलिए उसका सतुलन बनाये रखने के लिए वह उसकी ओर एकाग्र मन लगाये रहती है)।

विशेष—१ 'भव-बागर' और मन सागर' म रूपक अलकार, 'मिलियै सब सों दुरभाव बिना' मे विनोक्ति अलकार, 'रसखानि गुबिन्दहि यो भजियै जिमि नागरि को चित गागर मैं' मे उपमा अलकार है।

२. जिमि नागरि को चित गागर म' इस पदाश का एक अर्थ यह भी हो सकता है—

जिस प्रकार पनिहारी का ध्यान सिर पर रखे हुए पानी भरे घड़े की ओर रहता है। पनिहारी सिर पर जल का घड़ा लिए चलती फिरती, हाथ हिलाती तथा बातें करती रहती है पर उसका ध्यान अपने घड़े की ओर से विचलित नहीं होता। (इसी प्रकार मनुष्य को संसार में रहते हुए भी, उसके नैमित्तिक कार्यों को करते हुए भी, अपना एकाग्र ध्यान कृष्ण भक्ति की ओर लगाये रखना चाहिए)।

तुलना—'श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी सों चित्त ज्यों सिर पर दोहनी।'

—हरिदास

सवैया

है छल की अप्रतीत की मूरति मोद बढ़ावें विनोद कलाम में।
हाथ न एहै कछू रसखान तू क्यों बहकै विष पीवत काम में।
हैं कुच कंचन के कलसा न ये आम की गाठ मढ़ी कि चाम में।
बेनी नहीं मृगनैननि को ये नसैनी लगी यमराज के धाम में ॥२५॥

शब्दार्थ—अप्रतीत=विश्वासघात। कलाम=वाक्य, वचन। काम=काम वासना। बेनी—चोटी। नसैनी=सीढ़ी।

अर्थ—नारियों के सौंदर्य पर मुग्ध होकर कृष्ण भक्ति को भूल जाने वाले मनुष्यों को चेतावनी देते हुए रसखान कहते हैं कि हे मनुष्यो! ये सुंदर नारियाँ छल और विश्वासघात की मूर्ति हैं। विनोद के वाक्य कह-कहकर ये जो आनन्द प्रदान करती हैं वह आनन्द झूठा है। अतः तुम काम भावना के वशीभूत होकर तथा पथ भ्रष्ट होकर क्यों विष पान कर रहे हो? इससे कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। इनके उन्नत कुच स्वर्ण-कलश नहीं हैं वरन् चाम में मढ़ी हुई आम की गाठ हैं। ये सुंदर नारियों की चोटियाँ नहीं हैं वरन् नरक को ले जाने वाली सीढ़ियाँ हैं।

विशेष १ शुद्धापह्नुति अलंकार।

२ श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रंथावली में यह सवैया नहीं है।

मिलन

सवैया

मार के चन्दन मौर वन्यौ दिन दूलह है अली नद को नदन।
श्री वृषभानुसुता दूलही दिन जोरि बनी विधना सुखकदन।।
आवै कह्यौ न कछू रसखानि ही दोऊ बँधे छबि प्रेम के फदन।
जाहि बिलोकें सवै सुख पावत ये ब्रजजीवन है दुखददन।।२६।।

शब्दार्थ—मार के चदन=मोर-पखों के चन्दवे। अली=सखी। श्रीवृषभानुसुता=राधा। सुखकदन=सुख देने वाली। ब्रजजीवन=कृष्ण। दुखददन=दुख दूर करने वाले।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुए कहती है कि हे सखि! मोर-पखों के चन्दवो का मुकुट पहने हुए कृष्ण दूल्ह बने हुए हैं और अत्यन्त सुख देने वाली राधा दूलहिन बनी हुई है। रसखान कहते हैं कि उन दोनो की अवस्था का वणन नही किया जा सकता। दोनो प्रेम के बधन मे बँधे हुए है। जिनको देखकर सभी लोगो को सुख प्राप्त होता है वे दुख दूर करने वाले श्री कृष्ण है।

सवैया

मोहिनी मोहन सो रसखानि अचानक भेंट भई बन माही।
जेठ की घाम भई सुखधाम अनद ही अग ही अग समाही।।
जीवन को फल पायौ भटू रस-बातन केलि सा तोरत नाही।
काहू को हाथ कँधा पर है मुख ऊपर मोर किरीट की छाहीं।।२७।।

शब्दार्थ—मोहिनी=राधा। घाम=धूप। सुखधाम=सुख का भण्डार।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी स राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज अचानक राधा और कृष्ण की भेंट बन के अदर हो गई। उस मिलन म उन्हे जेठ की तपती हुई धूप भी सुख का भडार बन गई। वे आनन्द के कारण अगो मे अगो को छिपाने का प्रयास करने लगे। हे सखि! उन्होने प्रेम-पूर्ण बातो के द्वारा ही जीवन का फल पा लिया, अर्थात् उनका जन्म सफल हो गया। वे अपनी क्रीडा को अबाध गति से चलाते रहे।

कृष्ण का हाथ राधा कि कन्धे पर था और उनके मुख पर मोर-मुकुट की छाया थी।

पाठान्तर—कुछ थोड़े से परिवर्तनों के साथ इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

'मोहनी मोहन सों रसखान अचानक भेंट भई बन माहीं।
जेठ को घाम भयो सुखधाम अनंग प्रभंजन अंग समाहीं।
जीवन को फल पायौ भटू रस बातन की लरु तोरत नाहीं।
कान्ह के हाथ कँधा पैं लसै मुख ऊपर मोर किरीट की छाहीं॥

सवैया

लाडली लाल लसैं लखि वै अलि कुंजनि कुंजनि मैं छबि गाढ़ी।
ऊजरी ज्यौं बिजुरी सी जुरी चहुँ गुजरी केलि-कला सम बाढ़ी।
त्यौं रसखानि न जानि परै सुखिया तिहूँ लोकन की अति बाढ़ी।
बालक लाल लिये बिहरैं छहरैं बर मोरमुखी सिर टाढ़ी॥२८॥

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण। अलि=सखी। पुंजनि=समूह। ऊजरी=उज्ज्वल। सुखमा=शोभा।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से मिलन-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी! राधा और कृष्ण को कुंजों के समूहों में देखकर उन कुंजों की शोभा बहुत अधिक बढ़ गई। राधा के शरीर की उज्ज्वल कांति बिजली की कान्ति के समान मालूम होती थी जिसके चारों ओर घिरी हुई गुजरियाँ केलि-कला के समान चमक रही थी। रसखान कहते हैं कि इस प्रकार उस सौन्दर्य का वर्णन अगम्य था क्योंकि उसके कारण तीनों लोकों का सौन्दर्य बहुत अधिक बढ़ गया था। वह कृष्ण गोपियों के लिए हुए उन कुंजों में विहार कर रहे थे और उनके सिर के ऊपर सुंदर मोरपखा का मुकुट सुशोभित था।

विशेष—उपमा, वृत्यानुप्रास अलंकार।

बाल-लीला

सवैया

आजु गयी हुती भोर ही हौं रसखानि रई वहि नंद के भौनहिं।
बाजत बाजु बधाइन लै चहुँ ओर कुटुम्ब समात न आवत।

नाचत वाल वडे रसखान छके हित काहू के लाज न आवत ।
तैसोइ मात पिताउ लह्यो उलह्यो कुल ही कुलही पहिरावत ॥२६॥

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण। छटी=जन्म के छठे दिन का उत्सव। अन्हवावत=स्नान कराते है। चाइन=चाव से। चारु=आनन्दपुर। छके हित=प्रेम मे मस्त। उलह्यो=आनन्द। कुल ही=सारा परिवार ही। कुल ही=एक प्रकार की टोपी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छठी-उत्सव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज कृष्ण के जन्म के छठे दिन का उत्सव है। सारे व्रज के लोग आनन्द से भरे हुए हैं। नन्द अत्यन्त आनन्दित होकर कृष्ण को स्नान करा रहे हैं। लोग चाव से तथा चारो ओर से आनन्दप्रद बधाइया लेकर आ रहे हैं। कुटुम्ब मगल-गीत गाता हुआ तृप्त नहीं हो रहा है। बच्चे और वडे सभी आनन्द-सागर कृष्ण के प्रेम से इतने मस्त होकर नाच रहे हैं कि उन्हे किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नही हो रहा है। इसी प्रकार का आनन्द माता यशोदा और पिता नन्द को भी प्राप्त हो रहा है। सारा परिवार उन्ह कुलही पहिना रहा है।

विशेष—१ अन्तिम पक्ति मे यमक अलकार।
२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' मे नही है।

तुलना—'आजु भोर तमचुर के रोल।
गोकुल मे आनन्द होत है, मगल धुनि महराने टोल।
फूले फिरत नन्द अति सुख भयो, हरषि मगावत फूल-तमोल।
फूली फिरति जसोदा तन मन, उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल।'
—सूरदास

सवैया

'ता' जसुदा कह्यो धेनु की ओट ढिढोरत ताहि फिरैं हरि भूलैं।
ढूंढन कूं पग चारि घलै मचलै रज माँहि विथूरि दुकूलैं।
हेरि हँसे रसखान तबै उर भाल तें टारि कै बार लटूलैं।
सो छवि देखि अनन्दन नन्दजू अंगन अग समात न फूलैं ॥३०॥

शब्दार्थ—'ता' जसुदा कह्यो धेनु की ओट=यशोदा ने कृष्ण को खिलाते समय गाय की ओट में होकर 'ता' शब्द कहा। ढिंढोरत ताहि=यशोदा को ढूंढते हैं। रज माँहि विधूरि दुकूलें=अपने वस्त्रों को धूल से लथपथ कर लेते हैं। उर भाल तें=मस्तक के बीच में। बार लूटलें=लम्बे-लम्बे बाल।

अर्थ—कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! कृष्ण को खिलाने के लिए यशोदा ने गाय की ओट में होकर 'ता' शब्द कहा जिसे सुनकर कृष्ण अपनी और बातों को भूलकर उन्हें ढूंढने हैं। वे उन्हें ढूंढने के लिए कुछ ही पग चलते हैं, किन्तु यशोदा को न पाकर वे मचल जाते हैं और पृथ्वी पर लोट-लाटकर अपने वस्त्रों को धूल से लथपथ कर लेते हैं। तब यशोदा उनके पास आती हैं। उन्हें देखकर कृष्ण हँसने लगते हैं और यशोदा उनके मस्तक पर पड़े हुए लम्बे-लम्बे बालों को हटाकर उनका मुंह चूम लेती हैं। इस शोभा को देखकर नन्द इतने प्रसन्न होते हैं कि उनकी प्रसन्नता उनके अंगों में नहीं समा पाती।

विशेष—१ बाल-लीला का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन है।

२ अन्तिम पंक्ति में यमक अलंकार है।

३ श्री विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नहीं है।

तुलना—'गैया की सुओट ह्वै ललैया बिलुकैया दै दै,
जसोमति मैया जबै कन्हैया सों 'ता' कहै।'

—अज्ञात

सवैया—

आजु गई हुती भोर ही हौं रसखान रई वहि नन्द के भौनहिं।
वाको जियो जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं।
तेल लगाइ लगाइ कै अँजन भौंहें बनाइ बनाइ डिठौनहिं।
डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यों चुचकारत छौनहिं॥३१॥

शब्दार्थ—रई=अनुरक्त हो गई। भौनहिं=भवन में। जुग=युग। अंजन=काजल। डिठौनहिं=डिठौने को, अपने पुत्र को नजर से बचाने के लिए माताएँ उनके मुख पर काजल का काला दाग लगा देती हैं, जिसे डिठौना

पहते हैं। छौनहि=पुत्र को, कृष्ण को।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं आज ही प्रात काल नन्द के उस भवन मे गई थी जहाँ रस के सागर कृष्ण थे। मैं उन्हे देखते ही उनमे अनुरक्त हो गई। उन जैसा पुत्र पाकर यशोदा जी को जो सुख मिला है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं तो भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि उनका पुत्र लाख करोड युगो तक जीवित रहे। यशोदा जी ने उसके सिर पर तेल लगाकर और आँखो में काजल लगाकर तथा उसकी भौंहो को सँवार कर उसके मुख पर डिठौना लगा दिया। उसके गले मे हमेल और हार डालकर यशोदा जी उनके सौन्दर्य को निहारती रही, उस पर स्वय को न्यौछावर करती रही और उसे चूमती रही।

विशेष—'डालि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यो चुचकारत छौनहि' के दोनो पदों में यमक अलकार है।

सवैया—

> धूरि भरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
> खेलत खात फिरैं अगना पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी।
> वा छवि का रसखानि बिलोकन वारत काम कला निज कोटी।
> काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सा लै गयो माखन-रोटी ॥३२॥

शब्दार्थ—धूरि भरे=धूल से सने हुए। पीरी=पीली। वारत=न्यौछावर करती है। काम=कामदव। कला=सुन्दरता। कोटी=कोटि, करोडों।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि धूल मे सने हुए शरीर वाले श्री कृष्ण अत्यन्त शोभायमान थे। ऐसी ही शोभा से युक्त उनके सिर की सुन्दर चोटी बनी हुई थी। वे खेलते हुए और माखन-रोटी खाते हुए अपने आगन मे घूम रह थे। उनके पैरों की पैंजनी बज रही थी। व पीली लगोटी पहने हुए थे। उनकी उस समय की शोभा को देखकर कामदेव भी अपनी करोडा सुन्दरताओं को उस पर न्यौछावर कर रहा था। हे सखि ! उस कौवे का बहुत बडा सौभाग्य है

है जो कृष्ण के हाथ से माखन-रोटी झपटकर उड़ गया।

विशेष—१. कृष्ण की बाल-लीला का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन है।

२. 'वा छबि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी' में व्यतिरेक अलंकार है।

पाठान्तर—चतुर्थ पंक्ति का यह पाठ भी मिलता है

काग के भाग कहा कहिए हरि हाथ सों ले गयौ माखन-रोटी।

तुलना— 'सोभित कर नवनीत लिए।

घुटुरुनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए।
कठुला कंठ, वज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए॥

—सूरदास

रूप-माधुरी

सवैया

मोतिन माल बनी नट कें, लटकी लटवा लट घूँघरवारी
अंग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी॥
पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चार्‌यो दिसानि की लै छबि आनि कै झाँकै झरोखे मैं बाँके बिहारी।३३।

शब्दार्थ—लट=केश-राशि। जराव=जड़ाऊ आभूषण। जरतारी=जरीवाली।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि उस नटवर कृष्ण के गले में मोतियों की माला पड़ी हुई है। घूँघरदार केश-राशि लटक रही है। अंग के प्रत्येक भाग में जड़ाऊ आभूषण और सिर पर जरी वाली पगड़ी सुशोभित है। रसखान कहते हैं कि पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण ही इस मोहिनी मूर्ति के दर्शन हुए हैं। चारों दिशाओं की शोभा लेकर बाँके कृष्ण आकर सभी झरोखे में झाँकने लगे।

विशेष—कृष्ण की रूप माधुरी का परम्परागत वर्णन है।

पाठान्तर—इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

'मोतिन माल हिये लटकै लटकै लट चौलट घूँघरवारी।
अगनि अग जराव कसे अह सीस लसै पगिमा जरतारी।
पूरव पूरे ही पुन्यनि तें रसखान ये मूरति नैन निहारी।
चारौं दिसा के महा अघ हाँकि जो भांकि झरोकनि बांके बिहारी।।

सवैया

आवत हैं बन तें मनमोहन गाइन सग लसै ब्रज-ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु स्याला।।
हेरत टेरि ककै चहुँ ओर तें भांकि भरोखन तें ब्रज-बाला।
देखि सु आनन को रसखानि तज्यौ सब द्योस को ताप-कसाला।।३४।।

शब्दार्थ—गाइन=गायों के। लसैं=सुशोभित हो रहे है। अभीत=निडर होकर। स्याला=खेल। द्योस=दिन। ताप-कसाला=थकान।

अर्थ—श्रीकृष्ण गायें चराकर शाम को वन से ब्रज लौट रहे हैं। गायो के साथ ब्रज के ग्वाले सुशोभित हो रहे हैं। वंशी बजाते हुए गोचारण के गीत गाते हुए निडर होकर कृष्ण इधर कुछ खेल-सा कर गये हैं। उन्हें देखने के लिए चारो ओर से ब्रजबालायें आकर झरोखों से झाकने लगी है। रसखान कवि कहते है कि उनके मुख की शोभा को देखकर सारी ब्रज बनिताएँ अपनी दिन-भर की थकान को भूल गई, अर्थात् उनके जीवन मे नवीन चेतना और स्फूर्ति आ गई।

पाठान्तर—'आवत है बन तें मनमोहन गाइन सग लसै ब्रज ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत अभीत इतै करिगौ कछु स्याला।
हेरत टेर थकी चहुँ ओर तें भांकि भरोखनि सो ब्रजबाला।
देखत आनन को रसखान तज्यौ सब द्यौस को ताप कसाला।।'

कवित्त

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैयाँ पाछें ग्वाल गावै मृदु तानि री।
तैसी धुनि बांसुरी की मधुर मधुर जैसी,
बक चितवनि मन्द मन्द मुसकानि री।

कदम्ब विटप के निकट तटनी के तट
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपनि बुझावै नैन
प्रानन रिझावै वह आवै रसखानि री ॥३५॥

शब्दार्थ—लहलही=सुन्दर। विटप=वृक्ष। तटनी=नदी, यमुना नदी। रस=आनन्द। तन-तपनि=शरीर के दुख।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि उसके मस्तक पर गोरज तथा हृदय पर सुन्दर वनमाला सुशोभित है। उसके आगे आगे गायें हैं पीछे पीछे ग्वाले हैं। गायों और ग्वालों के मध्य में वह मनोहर बांसुरी बजा रहा है। जितनी सुन्दर बांसुरी की ध्वनि है उतना ही सुन्दर उसका वक्र चितवन और मंद हंसी है। वह यमुना नदी के तट पर कदम्ब वृक्ष के पास है। हे सखि! यदि तू उसके पीत वस्त्रों को फहराते देखना चाहती है तो अटारी पर चढ़कर देख ले। आनन्द की वर्षा करता हुआ शरीर के दुखों को नष्ट करता हुआ तथा नेत्र और प्राणों को मोहित करता हुआ वह आनन्द-सागर कृष्ण आ रहा है।

सवैया

अति सुंदर री ब्रजराजकुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाछ चलाइ कै लाज की गाँठन खोलत है॥
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है।
रसखानि लखें मन बूड़ि गयौ मधि रूप के सिंधु कलोलत है ॥३६॥

शब्दार्थ—महामृदु=अत्यन्त मधुर। बूड़ि गयौ=डूब गया। मधि=मध्य में, अन्दर। कलोलत है=किलोल करता है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण अत्यन्त सुन्दर है और वे अत्यन्त मधुर वाणी बोलते हैं। वे सुन्दर नेत्रों की कोरों से कटाक्ष चलाकर लाज को दूर कर देते हैं अर्थात् उनसे इतना प्रेम हो जाता है कि लोक लाज की कोई चिंता नहीं रहती। हे सजनी! सुनो वह विलक्षण कृष्ण प्रत्येक कुंज में घूमता रहता है। उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर मेरा मन उसके रूप सागर में डूबकर किलोलें करता है।

विशेष—रूपक अलकार ।

पाठान्तर—इस सवैये की दूसरी पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'वह नैन की कोर कटाछन लाय कै लाज की ग्रथनि खोलत है ।'

तुलना—'चित्त चप जाय परे सोभा के समुद्र माँझ,
रही न सभार कछु ग्रौर भई पल मे ।
मन मेरो गरुवो गयौ री बूडि मैं न पायौ,
नैन मेरे हरूवे तिरत रूप जल मे ।'

गग कवि

सवैया

तै न लख्यो जव कुंजनि तें वनिकै निकस्यौ भटक्यौ मटक्यौ री ।
सोहत कैसो हरा टटक्यौ ग्रठ कैसो किरीट लसै लटक्यौ री ॥
को रसखानि फिरै भटक्यौ हटक्यौ व्रज लोग फिरै भटक्यौ री ।
रूप सबै हरि वा नट को हियरें ग्रटक्यौ ग्रटक्यौ ग्रटक्यौ री ॥३७॥

शब्दार्थ—वनिकै=सुन्दर रूप धारण करके। हरा=हार। किरीट=मुकुट। भटक्यौ=रूप से भकभोरा हुआ। हटक्यौ=मना करने पर भी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! तब कृष्ण भटकता हुआ और मटकता हुआ सुन्दर रूप धारण करके कुज मे से निकाला था तब तूने उसे नहीं देखा। उसके हृदय पर पड़ा हुआ हार कितना शोभायमान था और सिर पर लटकता हुआ मुकुट कितना सुन्दर दिखाई पड रहा था। रसखान कहते है कि व्रजवासियो के मना करने पर भी वह रूप से भकभोरा हुआ कृष्ण भटकता हुआ फिर रहा था। उस नटवर कृष्ण का सारा सौन्दर्य मेरे हृदय म ग्रटक गया है, ग्रर्थात् उसके सौन्दर्य का गम्भीर प्रभाव मेरे हृदय पर पडा है।

विशेष—ग्रन्तिम पक्ति मे 'ग्रटक्यौ' शब्द की तीन बार ग्रावृत्ति प्रभावशीलता म सहायक है। वीप्सा ग्रलकार।

पाठान्तर—इस सवैये की ग्रन्तिम पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'रूप सबै हरि वा नट को हियरे फटक्यौ भटक्यौ ग्रटक्यौ री।'

सवैया

नैननि बंक बिसाल के बाननि झेलि सकै अस कौन नवेली ।
बेधत हैं हिय तीछन कोर सुमार गिरीं तिय कोटिक हेली ॥
छोडै नहीं छिनहूँ रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सो जनु बेली ।
रौरि परी छबि की ब्रजमंडल कुंडल गंडनि कुंतल केली ॥३८॥

शब्दार्थ—नवेली=नई, युवती । सुमार=भयंकर मार से । कोटिक=करोड़ा । हेली=सखी । द्रुम=वृक्ष । रौरि=कोलाहल । कुंडल गंडनि कुन्तल केली=कुंडल से सुशोभित गंडस्थल पर केशों की क्रीड़ा ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! ऐसी कोई भी युवती नहीं है जो कृष्ण के वक्र एवं विशाल नेत्र रूपी बाणों की चोट को सह सके । ये बाण अपनी तीक्ष्ण नोकों से हृदय को बेधते हैं और करोड़ों नारियाँ इनकी भयंकर मार से गिर गई हैं । आनन्द सागर कृष्ण फिर उन नारियों से क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़े जाते और वे उनसे इसी प्रकार चिपट जाती हैं जिस प्रकार वृक्ष से बेल लिपट जाती है । सारे ब्रज में कृष्ण की शोभा तथा उनके कुंडल से सुशोभित गंडस्थल पर केशों की क्रीड़ा का कोलाहल मचा हुआ है ।

विशेष—रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सवैया

अलबेली बिलोकनि बोलनि औ अलबलियै लोल निहारन की ।
अलबेली सी डोलनि गंडनि पै छबि सो मिली कुंडल बारन की ॥
भट ठाढ़ौ लख्यौ छबि कैसें कहौं रसखानि गहें द्रुम डारन की ।
हिय में जिय मैं मुसकानि रसी गति को सिखवै निरवारन की ॥३९॥

शब्दार्थ—अलबेली=विलक्षण । बिलोकनि=दृष्टि । लोल=चंचल । गंडनि पै=गंडस्थलों पर । बारन=हाथी । द्रुम=वृक्ष । निरवारन की=छूटने की ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उसकी दृष्टि और वाणी विलक्षण है, उसकी चंचल दृष्टि भी विलक्षण सी है । उसके कपोलों पर कुंडलों की छबि हाथी के गंड-

स्थल पर पड़ी हुई छवि की भाँति विलक्षण है। हे सखि ! मैंने उसको (कृष्ण को) पेड की डालियाँ पकड कर खडे हुए देखा था। उस समय उसकी जो शोभा थी, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसकी रस से भरी हुई मुस-कान मेरे हृदय मे और मन मे भर गई है। उसको छूटने की मुझे कौन शिक्षा दे सकती है ? अर्थात् किसी के कहने से भी वह नही छूट सकती।

पाठान्तर—'अलबेली बिलोकनि बोलनि है अलबेली सु लोलनि हारन की।
अलबेली सी डोलनि गडनि पैं छबि कु डल सो मिलि बारन की।
भटू ठाढो लख्यौ छबि कैसे कहौं रसखान गहै द्रुम डारन की।
हिय मे जिय मे मुसकानि रमी गति को सिखवै निरवारन की॥'

सवैया

बाँकी वडी अँखियाँ बडरारे कपोलनि बोलनि कौ कल वानी।
सुन्दर रासि सुधानिधि सो मुख मूरति रग सुधारस-सानी॥
ऐसी नवेली ने देखे कहूँ ब्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डालति है बन बीथिन मैं रसखानि मनोहर रूप-लुभानी॥ ४० ॥

शब्दार्थ—वडरारे=बडे, विशाल। कल=सुन्दर। सुधानिधि=चद्रमा। सुधारस सानी=अमृत से युक्त।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी अन्य नवीन गोपी का, जो कृष्ण से प्रेम करती है, वणन करती हुई कहती है कि हे सखि । जब से उस नवीन गोपी ने अत्यन्त सुख देने वाल, वक्र तथा विशाल नेत्र वाले, पुष्ट कपोल वाले मधुर भाषण करने वाले, सुन्दर हँसी वाले, चद्रमा के समान मुख वाले और अमृत जैसे प्रेम से युक्त शरीर वाले कृष्ण को देखा है, तब से वह उनकी खोज म बनो मे और गलिया मे घूमती फिर रही है तथा उनके मनोहर रूप पर लुब्ध हो गये हैं।

विशेष—द्वितीय पक्ति म उपमा अलकार।

सवैया

दृग इते खिंचे रहैं कानन लौ लट आनन पै लहराइ रही।
छकि छैल छबील छटा छहराइ कै कौतुक कोटि दिखाइ रही॥
झुकि झूमि झमाकनि चूमि अमी चरि चाँदनी चन्द चुराइ रही।
मन भाइ रही रसखानि महा छबि मोहन की तरसाइ रही॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—कानन लौं=कानों तक। आनन=मुख। कौतुक=खेल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि उनके दोनों नेत्र कानों तक खिंचे रहते हैं, अर्थात् उनके नेत्र विशाल हैं, उनके केश मुख पर लहराते रहते हैं उनकी सुन्दर शोभा की कांति निखर कर करोड़ों प्रकार के खेल दिखा रही है। उनकी शोभा झुककर घूमकर और अमृत का चमक कर चन्द्रमा की चांदनी को चुरा रही है। रसखान कहते हैं कि कृष्ण की महा छवि मनमोहक है इसीलिए वह मन को तरसा रही है।

विशेष—द्वितीय और तृतीय पंक्ति में छेकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास।

सवैया

लाल लसैं पगिया सब के सबके पट कोटि सुगंधनि भीने।
अंगनि अंग सजे सब हीं रसखानि अनेक जराउ नवीने॥
मुक्ता गलमाल लसैं सब क सब ग्वार कुवार सिंगार सो कीने।
पै सिगरे ब्रज क हरि ही हरि ही के हरैं हियरा हरि लीने॥ ४२॥

शब्दार्थ—कोटि=करोड़। जराउ=आभूषण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! सारे ग्वालों के सिर पर लाल पगड़ी सुशोभित है सभी के वस्त्र करोड़ों प्रकार की सुगंधियों से सुगंधित हो रहे हैं। रसखान कहते है कि सभी के अंग अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं। सभी के गले में मोतियों की मालायें सुशोभित है सारे युवक ग्वाल शृंगार किये हुए है किन्तु श्रीकृष्ण सारे ब्रज के सिंह हैं अर्थात् सभी में श्रेष्ठ है। उन्होंने अपने हृदय पर पड़ी हुई लहलहाती वनमाला से ही सबके हृदय अपने वश में कर लिए।

विशेष—अंतिम पंक्ति में यमक अलंकार।

सवैया

वह घेरनि धेनु अबेर सबेरनि फेरनि लाल लकुट्टनि की।
वह तीछन चच्छु कटाछन की छबि मोरनि भौंह भृकुट्टनि की॥

वह लाल की चाल चुभी चित में रसखानि सँगीत उघुट्टनि की ।
वह पीतपटक्कनि की चटकानि लटक्कनि मोर मुकुट्टनि की ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—घेरनि=घेरना । अवेर=देर से । सवेरनि=जल्दी से । घेरनि=घुमाना । ललुकट्टनि की=लाठी का । चच्छु=चक्षु, आँख । पटक्कनि की=वस्त्रों की ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण का देर से या जल्दी से गायों को घेरना, अपनी लाठी को घुमाना, आँखों के द्वारा तीक्ष्ण कटाक्ष करना, भौंह और भृकुटियों की मोड़ने की शोभा, संगीत की तानें बजाना, पीले वस्त्रों की फड़फड़ाहट और मोर-मुकुट का लटकना, ये कृष्ण की सभी चालें मेरे मन में घर कर गई हैं।

विशेष—अनुभावों की सुन्दर योजना है।

सवैया

साँझ समैं जिहि देखति ही तिहि पेखन कौं मन मो ललकै री ।
ऊँची अटान चढ़ी ब्रजबाम सुलाज सनेह दुरै उभकै री ॥
गोधन धूरि की धूँधरि मैं तिनकी छबि यौं रसखानि तकै री
पावक के गिरि तें वुधि मानो चुँवा-लपटी लपटैं ललकै री ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—साँझ समैं=सन्ध्या के समय में । पेखन कौं=देखने के लिए । ललकै=इच्छा करना । धूँधरि मैं=धुँधलेपन में ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के रूप की शोभा इतनी आकर्षक है कि सन्ध्या के समय उसे ब्रज को लौटते समय देखकर मन उसे देखने के लिए इस प्रकार प्रबल इच्छा करने लगता है कि ब्रज की युवतियाँ लज्जा और प्रेम के कारण ऊँची अटारियों पर चढ़कर उभक उभक कर इसे देखने लगती है । रसखान कहते हैं कि गौओं के खुरों से उठी हुई धूलि से धुँधलेपन में कृष्ण की छवि इस प्रकार दिखाई देती है, मानो आग के पहाड़ से बुझकर धुँए के बादल चढ़े आ रहे हों।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सवैया

देखि रास महावन को इक गोपवधू मन्यो एक वधू पर।
देखति हों सखि मार स गोप कुमार बने जितने ब्रज-भू पर ॥
तीछें निहारि नखो रसखानि सिंगार करो किन कोऊ कछू पर।
फेरि फिरैं अँखियाँ ठहराति हैं कारे पितम्बर वारे के ऊपर ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—मार=स्मर काम देव। तीछें=तिरछी दृष्टि।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के द्वारा रचाइ गइ रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण ने महावन मे रासलीला रची थी। जितने भी व्रज के गोप हैं वे सब इस प्रकार स सजे हुए थे कि व कामदेव की भाँति दिखाई पडते थे। मैंने तिरछी दृष्टि स उनको देखा व कुछ न कुछ शृंगार किय हुए थे अथवा विविध प्रकार के शृंगारो स सुसज्जित थे। उन्हें देखने के बाद फिर दृष्टि पीताम्बर धारी कृष्ण पर जाती थी। वे भी इतने सुशोभित हो रहे थे कि आँखें बार बार उन्ही पर जाकर ठहरती थी।

सवैया

दमकैं रवि कुंडल दामिनी से धुरवा जिमि गोरज राजत है।
मुकताहल वारन गोपन क सु तों बूँदन की छवि छाजत है ॥
ब्रजवाल नदी उमही रसखानि मयकवधू दुति लाजत है।
यह आवन श्री मनभावन की बरषा जिमि आज बिराजत है ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—रवि-कुंडलसूर्य जैसी तेज चमक वाले कुंडल। दामिनी=बिजली। धुरवा=बादलों के स्तम्भ। गोरज=गऊओं के पैरों से उठी हुई धूलि। मुक्ताहल=मोती। मयकवधू=बीर बहूटी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी स कृष्ण की शोभा का वर्णन कर रही है। वह कहती है कि कृष्ण का ब्रज को लौटना वर्षाऋतु के समान है। इसा वर्णन का सागरूपक द्वारा इस तरह प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण के कानो म पडे हुए सूर्य-जसी चमक वाल कुंडल बिजली के समान चमकते हैं गौओं के पैरों से उठी हुई धूलि बादलों के उमडने के समान प्रतीत होती है। गोपों पर वे मोतियों का बिखेर रहे हैं जो वर्षाकाल म पडती हुई बूंदों के समान मालूम होते हैं। कृष्ण के दर्शन के लिए उमडी हुई ब्रजबालाओं के समूह मानो वर्षाकाल म उमडी हुई नदी हैं। जिस प्रकार बादलो म आगमन स चन्द्रमा की

ज्योति धूमिल पड जाती है, उसी प्रकार कृष्ण के सौन्दर्य के आगे बीरबहूटिय की शोभा मद पड गई है। अत मन को सुन्दर लगने वाले कृष्ण का ब्रज म माना ऐसा लग रहा है, मानो वर्षाऋतु आगई है।

विशेष—सागरूपक अलकार।

सवैया

मोर किरीट नवीन लसै मकराकृत कुण्डल लोल की डोरनि।
ज्या रसखान घन घन म दमकै बिबि दामिन चाप के छोरनि।
मारि है जीव तो जीव बलाय विलोकि बलाय लो नन की कोरनि।
कौन सुभाय सो आवत स्याम बजावत बैनु नचावत मौरनि ॥४७॥

शब्दाथ—किरीट=मुकुट। लसै=सुशोभित है। मकराकृत कुण्डल=मकर की आकृति के समान कुण्डल। लोल=चचल। दमकै बिबि दामिनि चाप के छोरनि=इन्द्रधनुष के दोनो सिरो पर दो बिजलियाँ दमक रही हैं। मारि है जीव तो जीव बलामा=यदि प्राण मार भी दिये जायें तो भी जीवन मुश्किल है, अर्थात् मरकर भी इस शोभा से छुटकारा नही मिल सकता। सुभाय=शोभा, सजधज।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी! कृष्ण के सिर पर मोर पखो का मुकुट सुशोभित है। कानो के कुण्डल, जो मकर की आकृति के समान है, अपनी डोरियो पर झूलते हुए चचल बन रहे हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे इन्द्रधनुष के दोनो सिरो पर दो बिजलियाँ दमक रही हैं। कृष्ण के कटाक्षो की जो शोभा है वह इतनी घनीभूत है कि उससे मर कर भी पीछा नही छूट सकता। वह देखो, वह कृष्ण बाँसुरी बजाता हुआ और अपने मोर मुकुट को नचाता हुआ कितनी सजधज के साथ आ रहा है।

विशेष—यह छवि-वणन परम्परागत है।

तुलना—चदन खौरि ललाट विराजत मोरपखा सिर ऊपर सोहै।
कुण्डल लोल कपोल लसैं मुरली के बजावत मो मन मोहै।
मोहि विलोकि विलोकि हँसे चितचोर बडे बडे नैनन जोहै।
पूछति गोवधू भगवन्त या साँवरो सो जमुना-तट को है॥

—भगवत

सवैया

दोउ कानन कुंडल मोरपखा सिर सोहै दुकूल नयो चटको।
मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको॥
सुभ काछनी बैंजनी पावन आवन मैन लगै भटको।
वह सुन्दर को रसखानि अली जु गलीन मैं आइ अबै अटको।४८।

शब्दार्थ—कानन=कानों में। मोरपखा=मोर-मुकुट। दुकूल=वस्त्र चटको=चटकीला। मनिहार=मणियों का हार। टटका=नवीन वेश। सुभ=सुन्दर। पायन=पैरों में। आमन मैं=आने में।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह दोनों कानों में कुंडल पहने हुए है। सिर पर मोर-पखों का मुकुट सुशोभित है। नवीन चटकीला वस्त्र धारण किये हुए है। उनके गले में मणियों का हार है। वह प्रियतम नवीन तथा सुन्दर नट-वेश धारण किये हुए है। उसकी कमर में सुन्दर काछनी है, पैरों में बजने वाली पैंजनी हैं जिसके कारण उसे चलने में कोई बाधा नहीं होती। हे सखि! वह सुन्दरता और आनन्द का सागर कृष्ण अब इन गलियों में आकर ठहर गया है।

विशेष—सौन्दर्य-वर्णन परम्परागत है।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—
　　सुभ काछनी बैंजनी पैं अनी पाँवन आवत मैन लगै भटको'

सवैया

काटे लटे की लटी लकुटी दुपटी सुफरी सोउ आवै कँधाही।
भावते भेप सबै रसखान न जानिए क्यो अँखियाँ ललचाहीं।
तू कछु जानत या छबि को यह कौन है साँवरिया बन माही।
जोरत नैन मरोरत भौंह निहारत सैन अमेटत बाँही॥ ४६॥

शब्दार्थ—काटे लटे की=किसी वृक्ष की डाल से काटी हुई। लटी=छोटी-सी। भावतें भेष=मनोहर वेश भूषा। जोरत नैन=आँखें मिलाता है। मरोरत भौंह=भौंहों को मटकाता है। निहोरत सैन=नेत्रों के संकेत से अनुनय विनय करता है। अमेटत बाँही=बाँह हिला हिलाकर चलता है।

अर्थ—कृष्ण की छवि को देखकर कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! वह किसी वृक्ष की डाल से काटी हुई छोटी-सी छड़ी अपने हाथ में

लिए हुए है। उसका दुपट्टा सुन्दर है जो उसके आधे ही कधे पर पडा हुआ है। वह मनोहर वश-भूषा धारण किये हुए है। न जाने क्यो मेरी आँखें उसकी ओर ललचा कर आकृष्ट हो गई है। हे सखि ! क्या तुम जानती हो कि ऐसी शोभा से युक्त, वह सांवरा युवक जो बन मे रहता है, कौन है ? वह हर किसी युवती से आँखें मिलाता है, भौंहो को मटकाता है, नत्रो के सकेतो स अनुनय-विनय करता है और अपन हाथो को हिला-हिलाकर इतराता हुआ चलता है।

विशेष—१. अतिम पक्ति में विविध भावो की सुन्दर योजना है।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान-ग्रथावली मे नही है।

सवैया

कैसो मनोहर बानक मोहन सोहन सुन्दर काम ते आली।
जाहि बिलोकत लाज तजी कुल छूटो है नैननि की चल चाली॥
अधरा मुसकान तरग लसै रसखानि सुहाइ महाछबि छाली।
कुज गली मधि मोहन सोहन देख्यौ सखी वह रूप-रसाली॥ ५०॥

शब्दार्थ—बानक=वेश। काम=कामदेव। आली=सखी। चल=चचल। अधरा=होठो पर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती हैं कि हे सखि ! कृष्ण का वेश अत्यन्त सुन्दर है। अपनी सुन्दरता मे वह कामदेव की सुन्दरता से भी बढ-चढकर है। उसको देखकर मैंने लाज त्याग दी है और नेत्रो की चचल गति के साथ ही कुल छूट गया है। उनके होठो पर मुस्कान की लहरें सुशोभित है। वह आनन्द सागर कृष्ण अत्यधिक शोभा से सुशोभित हो रहे है। हे सखि ! मैंने उस सुन्दर कृष्ण को कुंज गली के अन्दर देखा था।

दोहा

मोहनि छवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं॥५१॥

शब्दार्थ—दृग=नेत्र। अपने नाहि=अपने वश मे नही रहे। ऐंचे=खीचने पर। सर=बाण।

अर्थ—रसखान कहते है कि जब से कृष्ण की शोभा को देखा है, तब से

ये मेरे नेत्र मेरे वश में नहीं रहे हैं। ये कृष्ण-छवि पर से बड़ी कठिनतासे धनुष की भाँति खिंचते हैं, पर बाण की तरह तेजी से फिर वहीं पहुँच जाते हैं।

विशेष—उपमा अलंकार।

तुलना—'रहिमन ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर॥

—रहीम

दोहा

या छबि पै रसखानि अब वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कबिन नहिं पाई रहे सु खोज॥५२॥

शब्दार्थ—वारौं=न्यौछावर करता हूँ। कोटि=करोड़ों। मनोज=कामदेव सु=भली प्रकार से, तन्मय होकर।

अर्थ—रसखानि कृष्ण की छवि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं कृष्ण की इस शोभा पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर करता हूँ। कृष्ण की छवि की उपमा अभी तक कवियों को नहीं मिली है और वे अब भी पूर्ण तन्मय होकर उसके लिए उचित उपमा की खोज कर रहे हैं।

विशेष—अतिशयोक्ति अलंकार।

प्रेमलीला

कवित्त

कदम करीर तरि पूछनि अधीर गोपी
आनन रुखोर गरों खरोई भरोंहा सो।
चोर हो हमारा प्रेम चौतरा मैं हार्‌यो
गरावनि तें निकसि भाज्यो है करि सजेरों सो।
ऐसे रूप ऐसा भेप हमें हूँ दिखायो, देखि
दसत ही रसखानि नैननि घुभेरो सा।
मुकुट झकोहा हाग हियरा हरोहा कटि,
फेटा पियरोहों अगरग सांवरोहों सो॥ ५३॥

शब्दार्थ—तीर=किनारा गरावनि=बधन। पियरोहा=पीला।

अर्थ—कोई व्याकुल गोपी यमुना के किनारों से, कदम्ब तथा करील के वृक्षों से पूछती है कि तुम्हारे साथ रहने वाला वह कृष्ण कहाँ चला गया जिसका मुख मलीन हैं ग्रीवा अत्यन्त भरी हुई है, अर्थात् पुष्ट है। वह प्रेम रूपी खेल मे हारा हुआ हमारा चोर है जो लज्जित सा होकर हमारे बधन (फदे) से निकल कर भाग गया है। अत्यन्त सुन्दर रूप और कला को हमे दिखाने वाला, जिसे देखते उसका सौन्दर्य आँखो मे गड गया, वह कृष्ण कहाँ है ? उसका मुकुट झुका हुआ है, उसके हृदय पर सुन्दर हार पडा हुआ है, वह अपनी कमर मे पीला वस्त्र बाँधे हुए है और श्याम रग का है।

विशेष—परोक्ष रीति से कृष्ण के सौन्दर्य का भावपूर्ण वर्णन है।

सवैया

भौंह भरी सुथरी बरुनी अति ही अधरानि रच्यो रग रातो ।
कुंडल लोल कपोल महाछबि कुंजन तें निकस्यो मुसकातो ॥
छूटि गयो रसखानि लखे उर भूलि गई तन की सुधि सातो ।
फूटि गयो सिर तें दधि भाजन टूटिगो नैन न लाज को नातो ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—सुथरी=सुन्दर। बरुनी=पलकें। रग रातो=लाल रग। लोल=चचल। सातो=सातो इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि)

अर्थ—कृष्ण से भेंट हो जाने पर गोपी की क्या दशा हुई, उसी का वह वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि कृष्ण के भौहें भरी हुई थी, पलकें सुन्दर थी और अधर लाल रग से रगे हुए-से जान पडते थे, अर्थात् वे लालिमा से भरे हुए थे। उसके कानो म कुडल थे जिनकी चचलता (हिलने डुलने) के कारण कपोलो पर भारी शोभा व्याप्त थी। ऐसा सौन्दर्य धारी कृष्ण कुजा मे से मुसकराता हुआ निकला। उस आनन्द सागर कृष्ण को देखते ही मेरा हृदय जोर जोर से धडकने लगा, मेरी सातो इन्द्रियाँ (पाच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि) अपनी सुधि बुधि भूल गई। मैं इतनी वसुध-सी हो गई कि मुझे अपने सिर पर रक्खे हुए दही के मटके का भी ध्यान नही रहा और वह सिर से पृथ्वी पर गिर कर फूट गया तथा आँखो से लाज का सम्बन्ध समाप्त हो गया, अर्थात् मैं नारी सुलभ लज्जा को त्यागकर बहुत देर तक उसे निनिमेष दृष्टि से देखती रही।

सवैया

जात हुती जमुना जल को मनमोहन घेरि लयो मग आइ कै।
मोद भर्यो लपटाइ लयो पट घूँघट ढारि दयो चित चाइ कै॥
और कहा रसखानि कहाँ मुख चूमत घातन बात बनाइ कै।
कैसे निभै कुल-कानि रही हिये साँवरी मूरति की छबि छाइ कै॥५५॥

शब्दार्थ—जात हुती=जा रही थी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से पनघट-लीला का वर्णन करती हुई कह रही है कि हे सखि ! मैं यमुना में पानी भरने के लिए जा रही थी कि कृष्ण ने आकर मेरा रास्ता रोक लिया। प्रसन्न होकर उसने मुझे अपने शरीर से लिपटा लिया और जान-बूझकर उसने मेरे मुख पर पड़ा हुआ घूँघट हटा दिया। हे सखि ! मैं और तो क्या कहूँ, वह बातें बनाकर और अवसर निकाल कर मेरा मुख चूमने लगा। अब वंश की मर्यादा का पालन किस प्रकार हो सकता है, क्योंकि मेरे हृदय में कृष्ण की साँवरी मूर्ति की शोभा बस गई है।

सवैया

जा दिन ते निरख्यो नदनंद कानि तजी घर बंधन टूट्यो।
चारु बिलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन मार ने लूट्यो॥
सागर कों सलिता जिमि धावे न रोकी रुकै कुल को पुल टूट्यो।
मत्त भयो मन संग फिरै रसखानि सरूप सुधारस घूट्यो॥५६॥

शब्दार्थ—निरख्यो=देखा। कानि=मर्यादा। चारु—सुन्दर। बिलोकनि=दृष्टि। सुमार=गहरी चोट। सम्हार=सुधि। मार=स्मर, कामदेव। सलिता=नदी। सरूप=सौंदर्य।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस दिन से मैंने कृष्ण को देखा है, उसी दिन से मर्यादा त्याग दी है, घर का बंधन छूट गया है। उसकी सुन्दर दृष्टि ने मेरे हृदय पर गहरी चोट की है जिसके कारण मैं अपनी सुधि खो बैठी हूँ और कामदेव ने मेरे मन को लूट लिया है। जिस प्रकार नदी अपना पुल तोड़कर सागर की ओर दौड़ती है और रोके से नहीं रुकती, उसी प्रकार मेरे कुल की मर्यादा का पुल टूट गया है और मेरा मन प्रवाह गति से कृष्ण की ओर दौड़ रहा है। मेरा मन मादक हो गया है और यह आनन्द-सागर कृष्ण के साथ-साथ फिरता है क्योंकि इसने उनके सौन्दर्य के अमृत में आनन्द का पी लिया है।

विशेष—दृष्टान्त और रूपक अलंकार।

सवैया

सुधि होत बिदा नर नारिन की दुति दीठिं परे बहियाँ पर की ।
रसखान बिलोकत गुंज छरानि तजैं कुल कानि दुहूँ घर की ।
सहरात हियो फहरात ह्वौं चितवै महरानि पितंबर की ।
यह कौन खरो इतरात गहै बलि की बहियाँ छहियाँ बर की।।५७।।

शब्दार्थ—बहियाँ पर की=भुजा की। गुंज छरानि=गुंज की माला को। दुहूँ घर की=दोनों घरों की—पिता तथा श्वसुर के घर की। सहरात हियो=हृदय शीतल होता है, अपार आनन्द मिलता है। फहरात ह्वौं=शरीर रोमांचित होता है। बलि की=बलराम की। छहियाँ बट की=बट वृक्ष की छाया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई कहती है कि जिसकी भुजाओं की शोभा पर दृष्टि पड़ते ही नर नारियों की सुधि नष्ट हो जाती है। जिसके गले में पड़ी हुई गुँजा की माला को देखते ही नारियाँ अपने पिता और श्वसुर के घरों की मर्यादा को भूलकर उन्हें प्रेम करने लगती हैं। उनके पीले वस्त्र की फहरान को देखकर हृदय को अपार आनन्द मिलता है और सारा शरीर रोमांचित हो जाता है। हे सखि ! बताओ तो, वट वृक्ष की छाया में बलराम की बाँह पकड़कर इतराता हुआ वह कौन खड़ा है ?

विशेष—१. इस सवैया में अनुभावों की योजना है।

२. श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रंथावली' में यह सवैया नहीं है।

सवैया

ए सजनी मनमोहन नागर आगर दौर करी मन माहीं।
मास के त्रास उसास न आवत कैसे सखीं ब्रजवाम बसाहीं।
मावो भई मधु की तरनी बरुनीन के बान, बिधी कित जाहीं।
बीथिन डोलति है रसखानि रहै निज मन्दिर में पल नाहीं ।।५८।।

शब्दार्थ—आगर=निधि। त्रास=भय। तरुनी=युवती। बरुनीन=पलकें यहाँ वक्र-दृष्टि से तात्पर्य है। बीथिन=गलियों। मंदिर=घर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की प्रेम लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सजनी ! कृष्ण अत्यन्त चतुर हैं। उन्होंने मेरे मन में दौड़ कर

सी है अर्थात् मेरे मन म समा गये हैं। सासु के डर से मुझे तो साँस भी नही आते। इस विषम स्थिति म तुम्ही बताओ मै व्रज म किस प्रकार रह सकती हूँ ? अर्थात् व्रज म रहना मेरे लिए एक विकट समस्या बन गया है। व्रज की सारी युवतियाँ शहद की मक्खियाँ बनी हुई हैं क्योंकि जिस प्रकार शहद की मक्खी अपने ही बनाये हुए शहद म फस जाती है उसी प्रकार सारी व्रज-युवतियाँ अपने ही किये हुए प्रेम म फसी हुई हैं। वे सब कृष्ण की वक्र-दृष्टि के बाण स बिंधी हुई हैं। उन्ह पता नही कि वे किधर जायें अर्थात् कृष्ण के प्रेम म पडकर व किंकर्तव्य विमूढ बन गई है। वह आनन्द-सागर कृष्ण पलभर के लिए भी अपने घर नही ठहरता बल्कि सदैव व्रज की गलियों म घूमता रहता है।

सवैया

सखि गोधन गावत हो इक ग्वार लख्यौ वहि डार गहें बट की।
अलकावलि राजति भाल बिसाल लसै बनमाल हियें टटकी।
जब तें वह तानि लगी रसखानि निवारै को या मग हौं भटकी।
नटकी लट मो दृग मीननि सो बनसी जियवा नट की अटकी ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—इक ग्वार=एक ग्वाला कृष्ण। बट=वृक्ष। अलकावलि=अलकराशि। निवारै=रोकना। बनसी=बसी मछली को पकडने का काँटा।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि स कृष्ण के सौन्दर्य का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! गोचारण का गीत गाते हुए मैंने कृष्ण को उसी वृक्ष की डाल पकडकर खडे हुए देखा था जिस वृक्ष की डाल को व प्राय पकडा करते हैं। उनके विशाल मस्तक पर केशराशि तथा हृदय पर बनमाल सुशोभित थी। जब स उस आनन्द सागर कृष्ण की बंसी की तान मैंने सुनी है तब स कोई भी मुझे उसके प्रभाव स नहीं रोक सका है और मैं प्रत्येक मार्ग पर उसकी खोज के लिए भटकती फिर रही हूँ। उस नटनागर कृष्ण की लट मेरा हुई जो मेरी आँख रूपी मछलियों के लिए मछलियाँ पकडने वाला काँटा बन गई है।

विशेष—दृष्टिम पक्ति म रूपक अलकार।

सवैया

गाइ गुहारि न या पै कहूँ न कहूँ वह मेरी करी निकर्यौ है।
धारसमीर कलिन्दी के तीर खरयो रह आजु री डौरि परयो है॥

जा रसखानि विलोकत ही सहसा ढरि रांग सो आँग ढर्‌यो है।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत टेरत आनि पर्‌यो है ॥६०॥

शब्दार्थ—धीरसमीर=वृन्दावन के एक कुंज का नाम। कलिन्दी=यमुना। तीर=तट। डीठि परयो है=दिखाई दिया है। ढरि रांग सो आँग ढरयो है=ढले हुए रांग की भाँति शरीर ढल गया है, अर्थात् शरीर बहुत ही शिथिल हो गया है। आनि परयो है=हृदय में बस गया है।

अर्थ—कृष्ण की सुन्दरता और उसके प्रति अपना आकर्षण व्यक्त करती हुई कोई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैंने कभी कृष्ण पर अपनी गाय का दूध भी नहीं निकलवाया, न कभी वह मेरी गली से होकर ही निकला है जिसके कारण इससे मेरा पहला परिचय हो। मुझे तो वह आज ही यमुना के तट पर धीरसमीर कुंज में खड़ा हुआ दिखाई दिया है। आनन्द के सागर उस कृष्ण को देखते ही प्रेमाकर्षण के कारण मेरा सारा शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया है। गायों को घेरता हुआ, मेरी ओर देखता हुआ, अपने वस्त्रों को सँभालता हुआ और पुकारता हुआ, अपनी इन रमणीय मुद्राओं के कारण वह मेरे हृदय में बस गया है।

विशेष—१ प्रेमाकर्षण का वर्णन स्त्री-सुलभ रीति से हुआ है।
२. अन्तिम पंक्तियों में अनेक मुद्राओं के संकेत से घटना साकार हो गई है।
३ 'ढरि रांग सो आँग ढर्‌यो है' में उपमा अलंकार है।

सवैया

खंजन मीन सरोजन को मृग को मद गंजन दीरघ नैना।
कुंजन ते निकस्यो मुसकात सु पान पर्‌यो मुख अमृत बैना॥
जाइ रटे मन प्रान बिलोचन कानन में रुचि मानत चैना।
रसखानि कर्‌यो घर मो हिय में निसिवासर एक पलो निकसै ना॥६१॥

शब्दार्थ—सरोजन को=कमल को। मद=घमण्ड। गंजन=चूर-चूर करना। कानन में=बन में। निसिवासर=रात दिन।

अर्थ—एक गोपी की कृष्ण से भेंट हो गई है। उसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि कृष्ण के विशाल नेत्र खंजन, मीन, कमल और मृग के घमण्ड को भी चूर-चूर करने वाले हैं। ऐसे सुन्दर नेत्रों वाला कृष्ण कुंजों से मुसकराता हुआ बाहर आया। उसके अधरों पर मुख में

लगे हुए पान की लाली थी और उसकी मोती भरा के समान सुख देने वाली थीं। उसे देखते ही मेरा मन और मेरे प्राण मेरे वश में नहीं रहे। ये उसी वन में बसने में ही अपना आनन्द मानते हैं जहाँ कृष्ण से भेंट हुई थी। रसखान कवि कहते हैं कि वह गोपी अपनी सखी से कहने लगी कि कृष्ण ने तो मेरे हृदय में अपना घर ही कर लिया है और रात दिन एक पल के लिए भी वह बाहर नहीं निकलता।

विशेष—तृतीय पंक्ति में विरोधाभास अलंकार है।

दोहा

मन लीनो प्यारे चितै पै छटाँक नहिं देत।
यहै कहा पाटी पढ़ी दल को पीछो लेत ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—मन=हृदय चालीस सेर। छटाँक=कटाक्ष सेर का सोलहवाँ भाग। पाटी पढ़ि=सीखा। दल को पीछो=ले लेना।

अर्थ—कृष्ण की चतुराई का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि हे कृष्ण तुम अपनी छवि दिखाकर मन को तो ले लेते हो पर उसके बदले कटाक्ष नहीं देते अर्थात् तुम दूसरों को ही अपने ऊपर रिझाते हो स्वयं नहीं रीझते। तुमने यह कहाँ से सीखा है कि केवल लेना ही जानते हो देना नहीं।

द्वितीय अर्थ—प्रथम पंक्ति का द्वितीय अर्थ यह होगा—

हे प्यारे! तुम बहका कर चालीस सेर तो ले लेते हो पर उसके बदले में सेर का सोलहवाँ भाग भी नहीं देते।

विशेष—श्लेष अलंकार।

तुलना—१ यह कौन सी पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देत छटाँक नहीं।
—घनानन्द

२ साहु कहावत फिरत है चित सरसाये चाव।
तेरे नैन दिवालिया मन ले देत न पाव॥
—रसनिधि

दोहा

मो मन मानिक ले गयौ चितै चोर नंदनंद।
अब बेमन मैं क्या करूँ परी फेर के फंद ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—बेमन=मन रहित उदास। फेर=दुख। फंद=बंधन।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरे मन रूपी मोती को चितचोर कृष्ण चुरा कर ले गया है। अब मैं उदास हूँ। मैं तो वियोग दुख के बंधन में बंध गई हूँ।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

दोहा

नैन दलालनि चौहटें, मन मानिक पिय हाथ।
रससौं ढोल बजाइकें, बेच्यौ हिय जिय साथ ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—दलालनि=दलालों ने। चौहटें=चौक में, बाजार में।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि इन नेत्र रूपी दलालों ने मेरे हृदय को बीच बाजार में बेच दिया कृष्ण ने मेरे प्राणों को अपने वश में कर लिया। इस प्रकार मैंने ढोल बजाकर (प्रकट रूप से) अपने मन और प्राणों को बेच दिया है।

विशेष—१ रूपक अलंकार।
२ द्वितीय पंक्ति में मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग।

सोरठा

प्रीतम नन्दकिशोर, जा दिन तें नेननि लग्यौ।
मन पावन चित चोर पलक ओट नहिं सहि सकौं ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—जादिन ते नेननि लग्यौ=जिस दिन से देखा है। पलक ओट=निमिष भर के लिए भी।

अर्थ—कोई गोपी अपने प्रेम को अपनी सखी से प्रकट करती हुई कह रही है कि जिस दिन से मुझे प्रियतम कृष्ण दिखाई दिये हैं उसी दिन से उस मन भावन और चितचोर के वियोग को मैं एक पल के लिए भी सहन नहीं कर पाती।

बंक बिलोचन

सवैया

मैन मनोहर नैन बड़े सखि सैननि ही मनु मेरो हरयौ है।
गेह को काज तज्यौ रसखानि हिय ब्रजराजकुमार अरयौ है॥
आसन-बासन सास के आसन पाने न सासन रंग परयौ है।
नैननि बंक बिसाल की जोहनि मत्त महा मन मत्त करयौ है॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—मैन मनोहर=कामदेव के समान सुन्दर। आसन वासन=आशाओं की वासना से। त्रासन=डर। सासन=साँसों में। रंग=प्रेम। मत्त=उन्मत्त पागल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण के नेत्र कामदेव के नेत्रों के समान सुन्दर और विशाल हैं। उन नेत्रों के संकेत से ही उसने मेरे मन को हर लिया है। रसखान कहते हैं कि तभी से कृष्ण हमारे हृदय में बस गया है और उसके प्रेम के कारण मैंने घर का काम करना भी छोड़ दिया है। आशाओं की वासनाएँ सासु के भय को भी नहीं मानतीं क्योंकि मेरी साँसों में कृष्ण का प्रेम भरा हुआ है। कृष्ण ने अपने विशाल नेत्रों की तिरछी दृष्टि से मेरे मन को अत्यन्त पागल बना दिया है।

विशेष—तृतीय पंक्ति में अनुप्रास अलंकार।

सवैया

भटू सुंदर स्याम सिरोमनि मोहन जोहन मैं चित चोरत है।
अवलोकन बंक विलोचन मैं ब्रजबालन के दृग जोरत है॥
रसखानि महावत रूप सलौने को मारग तें मन मोरत है।
ग्रह काज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज को तोरत है॥६७॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। सिरोमनि=शिरोमणि। दृग जोरत है=आँखें मिलाता है, प्रेम करता है। सलौने को=सौन्दर्य का।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! सुन्दर और शिरोमणि कृष्ण मन को मोहने वाला है और देखते ही मन को चुरा लेता है। वह अपने वक्र नेत्रों से देखते ही ब्रजबालाओं के नेत्रों को अपने नेत्रों से जोड़ लेता है। रसखान कहते हैं कि उसका सौंदर्य रूपी महावत हमारे मन रूपी हाथी को अपने मार्ग से मोड़ देता है। वह ब्रजराज सभी ग्रह कार्यों को समाज को और कुल की लाज को तोड़ देता है।

विशेष—रूपक अलंकार।

पाठान्तर—इस सवैया की तृतीय पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—
रसखान महावर रूप सलौने को मारग तें मन मोरत है।

सवैया

आनी लला घन सो अति सुन्दर तैसो लसै पियरो उपरैना ।
गठनि पै छलकै छवि कुडल मडित कुन्तल रूप की सैना ॥
दीरघ वक्र बिलोकनि की अवलोकनि चोरति चित्त को चैना ।
मा रससानि रटयो चित रो मुसकाइ कहे अधरामृत बैना ॥६८॥

शब्दार्थ—पियरो=पीला । उपरैना=वस्त्र । कुतल=केश, माला । सैना=सेना ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वे श्याम कृष्ण बादल से सुन्दर हैं । उसी प्रकार उनके शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है । उनके कपोलो पर कुडलो की शोभा झलक रही है । सुन्दर केश रूप का समूह हैं, अथवा रूप की सेना सुन्दर माले लिए हुए है । वे अपने दीर्घ नेत्रो की वक्र दृष्टि से देखते ही मन के चैन को चुरा लेते हैं । हे सखि ! उस आनद-सागर कृष्ण ने मुस्कराकर तथा अपने होठो से अमृत जैसे शब्दो को बोलकर मेरे मन को हर किया है ।

सवैया

वह नद को साँवरो छैल अली अब तौ अति ही इतरान लग्यौ ।
नित घाटन बाटन कुजन मैं मोहिं देखत ही नियरान लग्यौ ।
रसखानि बखान कहा करियै तकि सैननि सो मुसकान लग्यौ ।
तिरछी बरछी सम मारत है दृग-बान कमान सुकान लग्यौ ॥६९॥

शब्दार्थ—छैला=छैला । अली=सखी । नियरान=समीप । सुकान लग्यौ=कानो तक खीचकर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की आदतो का वणन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह नद पुत्र छैला कृष्ण अब तो बहुत अधिक इतराने लगा है । वह प्रतिदिन घाटो पर, मार्गों पर और कुजो मे मुझे देखकर मेरे समीप आने लगा है, अर्थात् जहाँ भी मुझे देखता है, मेरे पास चला आता है। रसखान कहते हैं कि मैं कहाँ तक उसकी आदतो का वर्णन करूँ। वह मेरी ओर देखकर मुस्कराने लगता है । वह टेढी दृष्टि को मुझ पर बरछी की भाँति मारता है और नेत्र बाणो को कमान पर कानो तक खीच कर चलाता है ।

विशेष—उपमा, रूपक अलकार ।

सवैया

मोहन रूप छकी बन डोलति घूमति री तजि लाज बिचारैं।
बंक बिलोकनि नैन बिसाल सु दम्पति कोर कटाछन मारैं॥
रंगमरी मुख की मुसकान लखे सखी कौन जु देह सम्हारै।
ज्यौं अरविंद हिमत करी भकझोरि कै तोरि मरोरि कै डारैं॥७०॥

शब्दार्थ—बंक बिलोकनि=तिरछी दृष्टि। रंगभरी=प्रेम भरी। अरविंद=कमल। हिमत करी=हुमत रूपी हाथी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मैं कृष्ण के सौन्दर्य से उन्मत्त होकर तथा लोक-लाज को छोड़कर वन वन घूमती फिर रही हूँ। कृष्ण की तिरछी दृष्टि विशाल नेत्रों की कोर सभी को अपने कटाक्षों से मार देती है। हे सखि! कृष्ण के मुख की प्रेमभरी मुस्कान को देखकर कौन ऐसी युवती है जो अपने-आप को सँभाल सकती है, अर्थात् सभी उस मुस्कान के वशीभूत हो जाती हैं और इस प्रकार व्यथित हो जाती हैं जैसे हुमत रूपी हाथी ने कमल को झटके से तोड़कर तथा मरोड़कर डाल दिया हो।

विशेष—रूपक और अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

पाठान्तर—इस सवैया का यह रूप भी मिलता है—

मोहन रूप छकी बन डोलति घूमि गिरी तजि लाज विचारैं।
बंक बिलोकनि नैन बिसाल सु दीपनि कोर कटाछन मारैं।
रंग भरे मुख की मुसकानि लखे सखि को निज देह सँभारैं।
ज्यों अरविंदहि मत्त करी भकमोरि कै तोरि कै मोहि कै डारैं॥

कृष्ण को देखा। वह मन को हरने वाला कृष्ण अपने सुन्दर सोने के पलग पर सोकर बैठा था। हे सजनी! उस आनन्द सागर कृष्ण को मुस्कराता हुआ तथा उसकी सुन्दर वक्र-दृष्टि को देखकर मैंने तभी से कुल की मर्यादा को छोड दिया है, अर्थात् कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो गई हूँ। इसी कारण व्रजमण्डल मे दुहाई मच रही है, अर्थात् कृष्ण सभी के मन का हरन करने वाले हैं, उससे बचने के लिए सारी व्रज-युवतियाँ रक्षा के लिए पुकार रही हैं।

पाठान्तर—इस सवैया की चौथी पक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'मैं तृन लौं कुल कानि तजी सुवजा व्रजमडल माँहि दुहाई।'

सवैया

मोहन के मन की सब जानति जोहन के मोहि मग लियो मन।

मोहन सुदर आनन चन्द तें कुजनि देख्यौ मैं स्याम सिरोमन।।

ता दिन तें मेरे नैननि लाज तजी कुलकानि की डोलति हौं बन।

कैसी करौं रसखानि लगी जक री पकरी पिय के हित को पन ।।७२।।

शब्दार्थ—जोहन के मग दृष्टि के द्वारा। सिरोमन=शिरोमणि। जक=धुन। हित को=प्रेम का। पन=प्रण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! कृष्ण के मन की सारी बातें मैं जानती हूँ। उसने दृष्टि के द्वारा मेरा मन अपने वश मे कर लिया है। मैंने उस मोहने वाले और चन्द्रमा से सुन्दर मुख वाले श्याम शिरोमणि को जब से कुज मे देखा है तभी से मेरे नेत्रो न लोक लज्जा और कुल की मर्यादा छोड दी है और मैं उनकी खोज मे बन बन घूम रही हूँ। रसखान कहते हैं कि हे सखि! अब मैं क्या करूँ मुझे उनसे मिलने की धुन लगी हुई है और मैं उस प्रियतम के प्रेम के प्रण मे बँधी हुई हूँ।

विशेष—द्वितीय पक्ति मे प्रतीप अलकार।

सवैया

लोक की लाज तज्यो तबहिं जब देख्यौ सखी व्रजचद सलोने।

खजन मीन सरोजन की छबि गजन नैन लला दिन होनो।।

हेर सम्हारि सकै रसखानि सा कौन तिया वह रूप सुठौनो।

भौहन कमान सो जोहन को सर बेधत प्राननि नन्द का छोनो ।।७३।।

शब्दार्थ—सलौना=सुन्दर। सरोज=कमलों। गजन=खडित।

हेरें=देखकर। सुठोनो=सुन्दर। जोहन=देखना। छोनौ=पुत्र।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा उसके प्रति अपने आकर्षण का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! जब से मैंने सुन्दर कृष्ण को देखा है, तभी से मैंने लोकलाज त्याग दी है अर्थात् निर्भय होकर उसके प्रेम में डूब गई हूँ। कृष्ण के दिन दिन शोभा धारण करने वाले नेत्र ऐसे सुन्दर हैं कि वे अपनी सुन्दरता के कारण खंजन मछली और कमला की शोभा को भी खण्डित कर देते हैं। व्रज में ऐसी कौन सी स्त्री है जो उसकी शोभा देखकर स्वयं को सम्भाल सके अर्थात् उससे प्रेम न करने लगे? उसकी भौंह कमान के समान हैं चितवन बाण के समान हैं। भौंह रूपी कमान पर चितवन रूपी बाण चढ़ाकर वह नन्द-पुत्र कृष्ण सभी के प्राणों को बींध देता है।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में रूपक अलकार है।

मुस्कान माधुरी

सवैया

वा मुख की मुसकानि भटू अँखियानि तें नेकु टरै नहिं टारी।
जो पलकैं पल लागति हैं पल ही पल माँझ पुकारैं पुकारी॥
दूसरी ओर तें नेकु चितै इन नैनन नेम गह्यौ बजमारी॥
प्रेम की बानि कि जोग कलानि गही रसखानि विचार बिचारी॥७४॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। बजमारी=कठोर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण के मुख की मुस्कान मेरी आँखों से हटाने पर भी नहीं हटती, अर्थात् हर समय मुझे वह मुस्कान याद आती रहती है। यदि मेरी पलकें क्षणभर के लिए लग जाती हैं तो वह पल ही पल में पुकारों को पुकारने लगती है। दूसरी मुसीबत यह है कि इन आँखों ने कठोर नियम धारण कर लिया है। रसखान कहते हैं कि सोचने-समझने पर भी यह पता नहीं लगता कि यह प्रेम की आदत है अथवा योग विद्या।

विशेष—संदेह अलंकार।

सवैया

कातिग क्वार कें प्रात ही प्रात सरोज किते बिकसात निहारे।
डीठि परे रतनागर कं दरके बहु दाड़िम बिम्ब बिचारे॥

लाल सु जीव जिते रसखानि ते रगनि तोलनि मोलनि भारे।
राधिका श्रीमुरलीधर की मधुरी मुसकानि के ऊपर वारे।।७५।।

शब्दार्थ—कातिग=कातिक। सरोज=कमल। बिकसात=खिलते हुए। रतनागर=रत्नों के भण्डार। दरके=फटे हुए।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से श्रीकृष्ण और राधा की मुस्कान का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैंने कातिक और क्वार मास के प्रात.काल मे कितने ही खिलते हुए कमलो को देखा है। अनेक रत्नो के भण्डार देखे हैं तथा फटे हुए अनेक अनारों के बिम्बो पर भी विचार किया है, पर राधा और कृष्ण की मुस्कान की शोभा के आगे ये नगण्य ही सिद्ध हुए हैं। रसखान कहते हैं कि इस भूमंडल पर जितने भी प्राणी हैं उनसे कृष्ण के प्रेम की तोल और मूल्य भारी ही है। ये सब राधा और कृष्ण की मधुर मुस्कान के ऊपर मैं न्यौछावर करती हूँ।

विशेष—तृतीय पक्ति मे जीव का अर्थ बधूक भी किया जा सकता है।

सवैया

बंक बिलोचन हैं दुख-मोचन दीरघ रोचन रंग भरे हैं।
घूमत बारुनी पान कियें जिमि झूमत आनन रूप ढरे है॥
गडनि पै झलकै छवि-कुडल नागरि-नैन बिलोकि भरे है।
बालनि के रसखानि हरे मन ईषद हास के पानि परे हैं।।७६।।

शब्दार्थ—रोचन=लाल। बारुनी=शराब। नागरि-नैन=युवतियो के नेत्र। बिलोकि=देखकर। ईषद=थोडी-सी। पानि परे हैं=हाथो मे पड गए हैं, वशीभूत हो गए हैं।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण के बांके नेत्र दुख को दूर करने वाले हैं, विशाल हैं और लाल रंग (प्रेम) से भरे हुए हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे मुख के सौन्दर्य की शराब पीकर झूम रहे हो। उनके कपोलो पर कुडलों की शोभा छलकती है जिसे देखकर व्रज की युवतियो के नेत्र उस शोभा मे उलझ जाते हैं। रसखान कहते हैं कि कृष्ण की थोड़ी-सी मुस्कराहट मे ही व्रज-बालाओ के मन उस मुस्कराहट के वशीभूत हो गए हैं, अर्थात् उस मुस्कान के कारण व्रज-बालायें कृष्ण के प्रेम मे बंध गई हैं।

कवित्त

अब ही खरिक गई गाइ के दुहाइबें कौं,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनी यौ पानि कौं।
कोऊ कहै छरी कोऊ मौन परी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की॥
सास ब्रत ठानै नन्द बोलत सयाने धाइ,
दौरि-दौरि मानैं-जानैं खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसैं मुरझानि पहिचानि कहूँ,
देखी मुसकानि वा अहीर रसखानि की॥७७॥

शब्दार्थ—पानि=हाथ। सयाने=जादू टोना करने वाले। खोरि=मनौती।

अर्थ—कृष्ण को देखकर कोई गोपी अपनी सुधि-बुधि खो बैठी है। इसी का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! अभी-अभी वह गोशाला में गाय का दूध निकालने के लिए गई थी लेकिन वह अपने हाथ के दूधपात्र को फेंक कर पागल होकर वापिस आ गई है। उसकी अवस्था को देखकर कोई तो यह कहती है कि किसी ने इसको छल लिया है, कोई कहती है कि यह स्तब्ध हो गई है कोई कहती है कि यह डर गई है, कोई कहती है कि यह मर गई है और कोई कहती है कि इसकी आखों की ज्योति ही नष्ट हो गई है। उसको अच्छा करने के लिए सास अनेक प्रकार के व्रतों का करने का सकल्प करती है नन्द दौड़-दौड़कर सयाना को बोलकर लाती है और जाने-अनजाने देवताओं की मनौती करती है। सारी सखियाँ उसकी मूर्छा को पहिचान कर हँसती है और कहती है कि इसने आनन्दसागर कृष्ण की कही मुस्कराहट को देख लिया है और यह उसी का प्रभाव है।

सवैया

मैन मनोहर बैन बजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यौं दमकै चमकै झमकै दुति दामिनि की मनो स्याम घटा है।
ए सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढ़ि फेरत लाल-बटा है।
रसखानि महा मधुरी मुख की मुसकानि करै कुलकानि कटा है॥७८॥

शब्दार्थ—मैन=कामदेव। पटा=वस्त्र। दामिनि=बिजली। अटा=

गेंद। नटा=नष्ट।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप का तथा तज्जन्य प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह कामदेव के समान मधुरवाणी बोलता है। उसके शरीर पर सुन्दर पीला वस्त्र सुशोभित है उसके शरीर की कांति इस प्रकार चमकती और झमकती है मानो काले बादल में बिजली चमक रही हो। हे सजनी! कृष्ण अटारी पर चढ़कर अपनी लाल गेंद को फेंकते हैं। रसखान कहते है कि उसके मुख का भारी सौंदर्य और उसकी मुस्कान कुल लज्जा को नष्ट कर देती है अर्थात् उसकी मुस्कराहट को देखकर ब्रज ललनायें उसके प्रेम में इतनी आबद्ध हो जाती हैं कि वे अपने कुल की मान मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखती।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

सवैया

जा दिन तें मुसक्यानि चुभी चित ता दिन तें निकसी न निकारी।
कुंडल लोल कपोल महा छबि कुंजन तें निकस्यौ सुखकारी।।
हौं सखि आवत ही दगरें पग पैंड तजी रिझई बनवारी।
रसखानि परी मुसकानि के पाननि कौन गनै कुलकानि बिचारी।।७९।।

शब्दार्थ—लोल=चंचल। दगरें=मार्ग में। पैंड=मार्ग। पाननि=हाथों में।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! जिस दिन से कृष्ण की मुस्कराहट मेरे मन में चुभी है उस दिन से वह निकाले से नहीं निकलती। वह सुख देने वाला कृष्ण चंचल कुण्डलों को अपने कपोलों पर हिलाते हुए तथा अत्यंत सौंदर्य धारण किए हुए कुंजों से निकला था। हे सखि! उसके मार्ग पर आते ही अर्थात् उसे देखते ही मैंने अपना मार्ग छोड़ दिया और मैं उस पर पूर्ण रूप से रीझ गई। अब तो मैं आनंद सागर कृष्ण की मुस्कान के हाथों में पड़ गई हूँ। ऐसी स्थिति में बेचारी कुल मर्यादा की गणना ही क्या है? अर्थात् ऐसी स्थिति में कुल मर्यादा नहीं रह सकती।

विशेष—अंतिम पंक्ति में मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

पाठांतर—इस सवैया की प्रथम पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'जा दिन तें मुसकान चुभी उर ता दिन तें जु भई बिजनारी।'

सवैया

कानिन दै अँगुरी रहिबो जबही मुरली धुनि मन्द बजैहै।
मोहनी ताननि सों रसखानि अटा चढ़ि गोधन गैहै तौ गैहै॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितो समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै॥८०॥

शब्दार्थ—काननि=कानों में।

अर्थ—कृष्ण के प्रति अपने अनुराग का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि जब कृष्ण की मन्द-मन्द मुरली बजती है, तब चाहे कोई मेरे कानों में अँगुरी दे दे अर्थात् मुझे वह तान न सुनने दे, चाहे कृष्ण अटारी पर चढ़कर मोहने वाली तानों के साथ गोचारण के गीत गायें, मैं सारे ब्रज के लोगों से पुकार पुकार कर इस बात को कहती हूँ कि कल चाहे कोई कितना ही समझाये, परन्तु हे सखि! मुझसे कृष्ण के मुख की मुस्कान सम्भाली नहीं जाती, अर्थात् मैं कृष्ण के प्रेम में बहुत ही व्याकुल और उन्मत्त हो गई हूँ।

विशेष—१ अन्तिम पंक्ति में 'न जैहै' का वीप्सा-युक्त प्रयोग गोपी की मनोव्यथा को द्विगुणित कर रहा है।

१. 'काननि दै अँगुरी रहिबो' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

तुलना—'अब ही सुधि भूली हौं मरी भटू,
भमरा जनि मीठी सी तानन में।
कुल-कानि जो आपनी राखी चहौ,
दै रहौ अँगुरी दोउ कानन में।'
—रिवाज

सवैया

आजु सखी नन्द नन्दन की तकि ठाढ़ौ हौं कुंजन की परछाहीं।
नैन बिसाल की जोहन को सब भेदि गयो हियरा जिन माहीं॥
घाइल घूमि सुमार गिरी रसखानि सम्हारति अंगनि जाहीं।
एते पै वा मुसकानि की डौंडी बजी ब्रज मैं अबला कित जाहीं।८१॥

शब्दार्थ—हियरा जिय माहीं=हृदय के भी हृदय में। घूमि=चक्कर

खावर। सुमार=भयंकर मार। टौरी=ढोल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से कहती है कि हे सखि ! आज मैंने कृष्ण को कुंजो की छाया मे खड़े हुए देखा था। उसके विशाल नेत्रों का दृष्टि-रूपी बाण मेरे हृदय के हृदय को भी छेद गया। उस बाण की भयंकर मार से मैं घायल होकर तथा चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और मुझे अपने अंगो को भी संभालने का होश नहीं रहा। इतनी सी घटना घटित होने पर ही उसकी मुस्कान का, हम दोनो के प्रेम का, ढोल समूचे ब्रज मे बज गया। अब तुम्हीं बताओ कि हम जैसी अबलाएँ इस ब्रज को छोडकर और कहाँ जायें।

दोहा

ए सजनी लोनो लला, लखौ नन्द के गेह।
चितयौ मृदु मुस्काइ कैं, हरी सबै सुधि देह ॥८२॥

शब्दार्थ—लोनो=सुन्दर। लखौ=देखा। गेह=घर। हर=हरण कर ली, प्रसन्न हो गई।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सजनी ! मैंने नन्द के घर मे सुन्दर कृष्ण को देखा। उसने जब मधुर मुस्कान के साथ मेरी ओर देखा तो उसने मेरे शरीर की सारी सुधि का हरण कर लिया, अथवा मेरा रोम-रोम प्रसन्नता से खिल उठा।

विशेष—अन्तिम चरण मे श्लेष अलकार है।

कृष्ण-सौन्दर्य

दोहा

जोहन नन्दकुमार को, गई नन्द के गेह।
मोहि देखि मुसकाइ कै, बरस्यौ मेह सनेह ॥८३॥

शब्दार्थ—जोहन=देखने के लिए। गेह=घर। सनेह=प्रेम।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती हुई कहती है कि हे सखि ! कृष्ण को देखने के लिए मैं नन्द के घर गई थी। मुझे देखकर कृष्ण मुस्करा दिया। उसकी मुस्कराहट से प्रेम का मेंह बरसा। अर्थात् मैं उसके प्रेम मे आबद्ध हो गई।

विशेष—रूपक अलकार।

सवैया

मोरपखा सिर कानन कुण्डल कुतल सा छवि गडनि छाई।
बक विसाल रसाल विलोचन हैं दुखमोचन मोहन माई।.
आली नवीन महा घन सो तन पीट घटा ज्यों पटा बनि आई।
ह्वौं रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाइ ठगौरी सी लाई॥८४॥

शब्दार्थ—रमाल=आनन्द दने वाली। पटा=वस्त्र। टोना=जादू। ठगौरी=ठग विद्या।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दय का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण के सिर पर मोरपखो का मुकुट और कानो म कुण्डल सुशोभित हैं। उनके केशा की शोभा उनके कपालो पर बिखरी हुई है। उनकी वक्र दृष्टि आनन्द देने वाली और विशाल है। वह दुख को दूर करने वाली तथा मन को मोहने वाली है। हे सखि! उनका श्याम शरीर नवीन विशाल बादल के समान है जिस पर पीले वस्त्र की शाभा बहुत ही प्रभावशाली है। रसखान कहते हैं कि मैं उनकी शोभा को देखकर स्तब्ध-सी रह गई और उसने मेरे ऊपर कुछ जादू सा करके मुझे ठग लिया।

विशेष—तृतीय पक्ति मे उपमा अलकार है।

सवैया

जा दिन तें वह नन्द को छोहरा या बन धेनु चराइ गयो है।
मोहिनी तानिनि गोधन गावत बेनु बजाइ रिझाइ गयो है।
वा दिन सो कछु टोना सो कै रसखानि हिये मैं समाइ गयो है।
कोऊ न काहू की कानि करै सिगरो ब्रज बीर! बिकाइ गयो है॥८५॥

शब्दार्थ—छोहरा=पुत्र। गोधन=गोचारण के गीत। टोना=जादू। कानि करै=लज्जा करती है। बीर=सखी।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखो से कहती है कि हे सखि! जिस दिन स वह नन्द-पुत्र कृष्ण इस वन म गायें चरा कर गया है मधुर तानो के साथ वशी बजाकर तथा गोचारण के गीत गाकर रिझा गया है उस दिन से कुछ जादू-सा करके वह आनन्द सागर कृष्ण हृदय म समा गया है। इसलिए यहाँ पर कोई स्त्री भी किसी का लज्जा नही करती। वास्तविकता तो यह है कि सारा ब्रज ही उसके हाथो विक गया है, अर्थात् ब्रज के सब नर-नारी पूर्णरूप से कृष्ण के वश म हो गये हैं, उसे प्रेम करने लगे है।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—
'ऐ सजनी वह नन्द को साँवरो या वन धेनु चराइ गयो है।'

सवैया

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहों तू न गई वहि ठैया।
या व्रज मे सिगरी वनिता सब वारति प्राननि लेति वलैया।
कोऊ न काहु की कानि करें कछु चेटक सो जु कियो जदुरैया।
गाइ गो तान जमाइ गो नेह रिझाइ गो प्रान चराइ गो गैया ॥८६॥

शब्दार्थ—आयो हुतो=आया था। रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण। ठैया=स्थान। सिगरी=सब। वनिता=स्त्रियाँ। कानि करें=लज्जा करती हैं। चेटक=जादू। जदुरैया—कृष्ण। नेह=स्नेह, प्रेम।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! आज आनन्द-सागर कृष्ण पास आया था। क्या कहती हो कि तुम उस स्थान पर नहीं गई। इस व्रज मे सारी स्त्रियाँ कृष्ण के ऊपर अपने प्राणों को न्यौछावर करती हैं और उसकी वलैया लेती है। यहा पर सभी कृष्ण के प्रेम में इतनी उन्मत्त हैं कि कोई किसी की लज्जा नहीं करती। इस प्रकार का कुछ जादू-सा कृष्ण ने सबके ऊपर कर दिया है। वह कृष्ण तान बजाकर, हृदय में प्रेम उत्पन्न करके, प्राणों को रिझाकर और गायों को चराकर चला गया।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में विविध भावों की सुन्दर योजना है।

सवैया

कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रंग-भीनी।
तान सुनी जिनही तिनही तबही तित लाज बिदा करि दीनी।
घूमै घरी घरी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या व्रज मण्डल में रसखानि सु कौन भटू जू लटू नहिं कीनी ॥८७॥

शब्दार्थ—ठगौरी भरी=जादू से भरी हुई। रंग भीनी=प्रेम से पूर्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! न जाने कृष्ण ने किस जादू से भरी हुई तथा प्रेम से परिपूर्ण बाँसुरी बजाई कि जिस भी गोपी ने उसे सुना, उसने भी उसी समय अपनी लाज को त्याग दिया, अर्थात् वह लाज त्याग कर अपने घर से बाहर निकल पड़ी। हे सुन्दर तथा प्रवीण सखि! तब से सभी

गोपियाँ प्रत्येक समय नन्द के दरवाजे का चक्कर काटने लगी। हे सखि ! इस ब्रज मे कोई भी ऐसी युवती नही है जिसे आनन्दसागर कृष्ण ने अपने प्रेम के वश म नही कर लिया है।

विशेष—अंतिम पंक्ति म 'लटू नही' कीनो मुहावरे का भावमय प्रयोग है।

तुलना—१ कितो न गोकुल कुल-बधू किहिं न काहि सिख दीन।
कौनें तजी न कुल गली है मुरली सुर-लीन॥
—बिहारी

२ सखि मोही न मोहन को मुख देखि,
सु ऐसी धौं गोकुल को कुल की।
—ब्रह्म कवि

सवैया

बाँकी धरैं कलगी सिर ऊपर बाँसुरी तान कटै रस बीर के।
कुण्डल कान लसैं रसखानि बिलोकन तीर अनंग तुनीर के।
डारि ठगौरी गयो चित चोरि लिए है सबै सुख सोखि सरीर के।
जात चलावन मो अबला यह कौन कला है भला वे अहीर के॥८८॥

शब्दार्थ—कलगी—मुकुट। अनंग=कामदेव। सोखि=सुखाना।

अर्थ—कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि वह अपने सिर पर सुन्दर मोर मुकुट धारण किये हुए है बाँसुरी म वह आनन्द स भरी हुई तान बजाता है। उसके कानो म कुण्डल शोभायमान है जिन्हें देखकर कामदेव के तूणीर के बाणो-जैसा प्रभाव पडता है अर्थात् मन काम वासना क वशीभूत हो जाता है। ऐसा कृष्ण मेरे ऊपर जादू डालकर मेरा मन चुरा कर ले गया है और उसने मेरे शरीर क सारे सुखो को नष्ट कर दिया है। फिर वह कृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे अहीर के पुत्र ! इसम तुम्हारी कौनसी वीरता है जो तुम मुझ अबला पर काम बाण चलाते हो।

विशेष—१ 'वे' शब्द का प्रयोग अत्यधिक आत्मीयता का सूचक है।
२ 'अबला' शब्द का साभिप्राय प्रयोग है अत परिकर अलंकार है।

सवैया

कौन की नागरि रूपकी आगरि जाति लिएँ सँग कौन की बेटी।
जाकी लसै मुख चद-समान सु कोमल अँगनि रूप-लपेटी ॥
लाल रहौ चुप लागि है डीठि सु जाके कहूँ उर बात न मेरी।
टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई मनो कारिख-पेटी ॥ ८९ ॥

शब्दार्थ—आगरि=भडार। लागि है डीठि=दृष्टि लग जाना। बात=प्रणय करना। टटकार=तुरन्त, तत्काल। कारिख-पेटी=कालिख का सन्दूक।

अर्थ—*जाती हुई राधा को देखकर कृष्ण एक गोपी से पूछते हैं कि यह* युवती जो सौन्दर्य का भंडार है, जिसका मुख चन्द्रमा के समान सुशोभित है, सम्पूर्ण कोमल अगो मे छवि लिपटी हुई है, किसकी स्त्री है, ? किसके साथ जा रही है ? किसकी पुत्री है ? यह सुनकर गोपी कहती है कि हे लाल ! चुप रहो। इसके हृदय को अभी तक प्रणय की हवा नही लगी है, अत मुझे डर है, कि कहीं तुम्हारी दृष्टि इसे न लग जाये। रसखान कवि कहते हैं कि उसे टोकते ही वह तत्काल रुक गई और भय से इतनी स्याह पड गई मानो वह कालिख की सन्दूक बन गई हो।

विशेष—उपमा, उत्प्रेक्षा अलकार।

सवैया

मकराकृत कुंडल गुंज की माल के लाल लसै पग पाँवरिया।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयौ भावती भाँवरिया ॥
रसखानि बिलोकत ही सिगरी भईं बावरिया ब्रज-डाँवरिया।
सजनी इहिं गोकुल मैं विष सो बगरायौ हे नद के साँवरिया ॥ ९० ॥

शब्दार्थ—मकराकृत=मकरकी आकृति वाले। पाँवरिया=जूती। मिस=बहाने से। भावतो=प्रिय। भावती=सुहावनी। ब्रज—डाँवरिया=ब्रज—बालाएँ। बगरायौ है=बिखेर दिया है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण के कानो मे मकर की आकृति वाले कुंडल गले मे गुँजों की माला और पैरों मे जूतियाँ सुशोभित थी। वह प्रिय बछडो को चराने के बहाने से सुहावनी भाँवर दे गया। रसखान कहते हैं कि उसे देखते ही सारी ब्रज-बालाएं पागल होगई। हे सजनी ! ऐसा प्रतीत होता है कि नद कुमार कृष्ण इस गोकुल मे विष बिखेर गया

है, जिसके कारण सभी ब्रज-बालाएँ व्याकुल हैं।

विशेष—हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

९०

रूप-प्रभाव

सवैया

नवरंग अनंग भरी छवि सौं वह मूरति आँखि गड़ी ही रहै।
बतिया मन की मन ही में रहै घतिया उर बीच अड़ी ही रहै।।
तबहूँ रसखानि सुजान अली नलिनी दल बूँद पड़ी ही रहै।
जिय की नहिं जानत हौ सजनी रजनी अँसुवान लड़ी ही रहै।। ९१।।

शब्दार्थ—नवरंग=यौवन। अनंग=कामदेव। घतिया=प्रेम की घातें। रजनी=रात।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को प्रकट हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण का यौवन कामदेव की शोभा से भरा हुआ है; अर्थात् उनका रूप अत्यन्त मन मोहक है। उनकी यह मन मोहक मूर्ति सदैव आँखों में समाई रहती है। उन्होंने जो मुझसे प्रेम भरी बातें की थी, वे मन ही मन रह गई हैं; अर्थात् मैं किसी से उन्हें कह नहीं पाती। प्रेम की घातें हृदय के बीच अड़ी हुई हैं। रसखान कहते हैं कि हे सखि। फिर भी नलिनी के समूह पर बूँदें पड़ी रहती हैं। हे सजनी! मेरे मन पर क्या बीत रही है, इसे कोई नहीं जानता। मेरी आँखों में सारी रात आँसुओं की लड़ी रहती है, अर्थात् मैं रातभर कृष्ण को स्मरण करके रोती रहती हूँ।

विशेष—१. रूप-प्रभाव का सजीव वर्णन है।

२. वियोग-वर्णन परम्परागत है।

का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! वह नंदपुत्र कृष्ण कामदेव से भी अधिक मनोहर है, दुखों को दूर करने वाला है, सुख देने वाला है । उसका वक्र दृष्टि से देखना दुखों को दूर करके प्रेम के फंदे में बाँध लेता है । कृष्ण का मुख इतना सुन्दर है कि उसे देख कर करोड़ों चन्द्रमा पराजित हो जाते हैं ; अर्थात् उसके मुख की शोभा करोड़ों चन्द्रमाओं की शोभा से भी बढ़कर है । हे सजनी ! मैं तो सुख देन वाले कृष्ण ने मोल ले ली हूँ और मैं उनके हाथों में बिक भी गई हूँ । अर्थात् कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो गई हूँ ।

सवैया

सोहत हैं चँदवा सिर मोर के तैसिय सुन्दर पाग कसी है ।
तैसिय गोरज भाल बिराजति जैसी हियें बनमाल लसी है ॥
रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूँदि कै ग्वालि पुकारि हसी है ।
खोलि री नैननि, खोलौं कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—गोरज=गोओं के द्वारा उड़ाई गई धूल । लसी है=सुशोभित है । बौरी=पागल ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! जिस प्रकार कृष्ण के सिर पर मोर-मुकुट सुशोभित है, वैसे ही उनके सिर पर सुन्दर पगड़ी भी सुशोभित है । वैसे ही उनके माथे पर गोरज तथा हृदय पर वनमाल शोभा प्राप्त कर रही है । हे सखि ! मैं तो उस आनन्द सागर कृष्ण को देखकर पागल ही हो गई । यह कहकर वह गोपी अपने नेत्रों को बन्द कर तथा करुण भाव को प्रकट करने वाले शब्दों का उच्चारण करके हँसी पड़ी । इस घटना को देखकर उसकी सखी ने कहा—अरी ! आँखें तो खोल । उसने उत्तर दिया—मैं आँखें नहीं खोल सकती, क्योंकि उस कृष्ण की सुन्दर मूर्ति मेरी आँखों में ही बसी हुई है । यदि आँखें खोल दी तो डर लगता है कि कहीं वे उनमें से निकल न जायें ।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में गोपी नैन नहीं खोलती । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि स्त्री यह नहीं चाहती कि जिससे वह प्रेम करती है, उसे अन्य स्त्री भी प्रेम करे । उसे विश्वास है कि यदि उसकी आँखों में बसी हुई कृष्ण की छवि को उसकी सखी ने देख लिया तो वह अवश्य उनसे प्रेम

करने लगेगी। इसीलिए वह वह अपनी आँखो को नहीं खोलती।

सवैया

सुनि री ! पिय मोहन की वतियाँ अति ढीठ भयौ नहिं कानि करै।
निसि बासर औसर देत नहीं छिनही छिन द्वार ही आनि अरै॥
निकसौ मति नागरि डौंडी बजी ब्रज मडल में यह कौन भरै।
अब रूप की दौर परी रसखानि रहै तिय कोऊ न माँझ घरै ॥९४॥

शब्दार्थ—पिय=प्रिय। ढीठ=धृष्ट। कानि=लज्जा। निसि बासर=रात-दिन। रौर=शोर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! सुनो, कृष्ण की बातें अत्यन्त प्रिय होती हैं, पर वह बहुत धृष्ट है और किसी भी प्रकार की लज्जा नही करता। वह मुझे कभी भी अवसर नही देता, बल्कि रात दिन प्रत्येक क्षण मेरे द्वार पर आकर अड जाता है। हे नारियो ! घर से बाहर मत निकलो, क्योकि समूचे ब्रज मे कृष्ण की धृष्टता का ढोल बज रहा है अत ब्रज मे नारियो को अपने दिन काटने कठिन हो रहे हैं। रसखान कहते हैं कि अब तो सारे ब्रज मे कृष्ण के रूप का शोर मचा हुआ है, इसीलिए सारी स्त्रियाँ उसे देखने को इतनी उत्सुक रहती हैं कि कोई भी अपने घर मे नही ठहरती।

सवैया

रग भर्यौ मुसकात लला निकस्यौ कल कुन्जन ते सुखदाई।
मैं तबही निकसी घर ते तकि नैन बिसाल की चोट चलाई॥
घूमि गिरी रसखानि तबै हरिनी जिमि बान लगै गिरी जाई।
टूटि गयौ घर को सब बधन छूटिगो आरज लाज बडाई॥ ९५॥

शब्दार्थ—रग=प्रेम। कल=सुन्दर। आरज लाज=आर्य धर्म की लज्जा।

अर्थ—कृष्ण से भेंट होने पर गोपी की क्या दशा हुई, इसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! जब प्रेम से मुसकराता हुआ कृष्ण सुख देने वाले सुदर कु जन म बाहर निकला तो सयोग से मैं भ तभी अपने घर से निकली। मुझे दख कर उसन मुझ पर अपने विशाल नेत्रो रे चोट चलाई। मैं उस चोट को सहन न कर सकी और जिस प्रकार वाण लगने पर हिरनी चक्कर खा कर पृथ्वी पर गिर पडती है, उसी प्रकार मैं भी अपने

सुधि-बुधि भूल कर पृथ्वी पर गिर पडी। घर की मर्यादा के सारे बधन टूट गये और आर्य धर्म की लज्जा का बडप्पन भी छूट गया, अर्थात् मैं अपने वश की मर्यादा और नारी-सुलभ लज्जा को त्याग कर कृष्ण की ओर देखती रही।

सवैया

खजन नैन फँदे पिजरा छबि नाहिं रहैं थिर कैसे हु भाई।
छूटि गई कुलकानि सखी रसखानि लखी मुसकानि सुहाई॥
चित्र कढे से रहे मेरे नैन न बैन कढे मुख दीनी दुहाई।
कैसी करौं चित जाऊँ अली सब बोलि उठैं यह बावरी आई॥ ६६॥

शब्दार्थ—खजन नैन=खजन रूपी नेत्र। थिर—स्थिर। कुलकानि=कुल की मर्यादा। कढे से=अकित से।

अर्थ—कोई गोपी अपनी प्रेमावस्था का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि मेरे खञ्जन रूपी नेत्र कृष्ण के शोभा रूपी पिंजडे में बन्दी हो गये हैं। हे सखि! ये किसी भी प्रकार स्थिर नही रहते। बार-बार बरबस कृष्ण की छबि को देखने की लालसा मे उसी की ओर दौडते रहते हैं। हे सखि! जब से मैंने आनन्द सागर कृष्ण की मनोहर मुसकराहट देखी है, तबसे मैंने अपने कुल की मर्यादा को भी छोड दिया है। मेरे ये नेत्र, सदैव अपलक रहने के कारण, चित्र मे अकित से बने रहते हैं। प्रयत्न करने पर भी मुख कोई शब्द नहीं निकलता। हे सखि! तुम्ही बताओ कि मैं क्या करूँ, किधर जाऊँ, क्योकि मैं जिधर जाती हूँ उसी ओर लोग कहते हैं कि वह पगली आ गई है।

विशेष—प्रेमावस्था का सजीव एव मार्मिक चित्रण है।

कुंज लीला

सवैया

कु जगली मैं अली निकसी तहाँ साँकरे ढोटा कियौ भटभेरो।
माई री वा मुख की मुसकान गयौ मन बूढि फिरै नहिं फेरो॥
डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डारयौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करौं अब क्यों निकसौ रसखानि परयौ तन रूप को घेरो॥ ६७॥

शब्दार्थ—अली=सखी। ढोटा=कृष्ण से तात्पर्य है। भटभेरो=मुठभेड

अचानक मिलना। बूडि=डूबना। डोरि लियो=बाँध लिया।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से मिल कर गई है। उसी का वर्णन करती हुई वह अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! मैं आज प्रातः जब कुंज गली में निकली तो अचानक कृष्ण से भेंट हो गई। हे सखि! कृष्ण के मुख की मुसकान में मेरा मन इतना अधिक डूब गया कि वह उस मुसकान की छवि पर से हटाने पर भी नहीं हटा। उस मुसकान ने मेरे नयनों को बाँध लिया चित्त को चुरा लिया और प्रेम का गहरा फंदा डाल दिया। तुम्हीं बताओ अब मैं क्या करूँ। मेरे चित्त में बसा हुआ कृष्ण कैसे बाहर निकल सकता है? उस आनन्द सागर कृष्ण के सौन्दर्य ने मेरे सारे शरीर को घेर लिया है।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण के साथ हुआ मिलन और तज्जन्य सुख भुलाने से भी नहीं भुलाया जा रहा है।

सोरठा

दरस्यौ रूप अपार मोहन सुन्दर स्याम को।
वह ब्रजराज कुमार हिय जिय नैननि में बस्यौ ॥ ९८ ॥

शब्दार्थ—मोहन=मोहने वाला। हिय हृदय। जिय=मन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि मैंने मोहने वाले सुन्दर कृष्ण का जब से अपार रूप देखा है, तबसे वह ब्रजराज कुमार मेरे हृदय में मन में और आँखों में बसा हुआ है।

८२

नटखट कृष्ण

कवित्त

अन्त तें न आयौ याही गाँवरे को जायौ
माई बाप रे जिवायौ प्याइ दूध बार बार को।
सोई रसखानि पहिचानि कानि छाँड़ि चाहै
लोचन नचावत नचैया द्वार द्वार को।
मैया की सौं सोच कछू मटकी उतारे को न
गोरस के ढारे को न चीर चारि ढार को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी माझ
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को ॥ ९९ ॥

शब्दार्थ—अन्त मे=और किसी जगह से। गाँवरे को=गाँव का ही। लोचन=आँख। सौं—सौगन्ध। चीरि=फाड़ना। वगर=घर।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कह रही है कि हे कृष्ण! तुम और किसी जगह से नही आये हो। तुम्हारा जन्म हमारे इसी गाँव मे हुआ है। बचपन मे हमने तुम्हे दूध पिला-पिला कर माँ बाप की तरह पाला है। उसी पहिचान और मर्यादा को तुम छोडना चाहते हो, तुम बचपन मे द्वार-द्वार पर नाचा करते थे और अब हमारे सामने अपनी आँखें नचा रहे हो। तुम्हे तुम्हारी माँ की सौगन्ध है, यदि तुमने हमारी मटकी उतारी तो। हमें न तो अपनी इस मटकी के उतर जाने का सोच है, न गोरस के निकल जाने का और न अपने वस्त्रो के फट जाने का। हमे केवल यही दुख है कि तुम हमारे ही गाँव के और हमारे ही घर के होकर हमारा रास्ता रोक लेते हो और हमें तंग करते हो।

पाठान्तर—इस कवित्त की तीसरी पक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'सो तो रसखान पहिचान हू न मानत है'

सवैया

एक ते एक लौं कानन मैं रहे ढीठ सखा सब लीने कन्हाई।
आवत ही हौं कहाँ लौं कहौं कोउ कैसे सहै अति की अधिकाई॥
खायो दही मेरो भाजन फोर्यो न छोडत चीर दिवाएँ दुहाई।
सौंह जसोमति की रसखानि ते भागे मरू करि छूटन पाई॥ १००॥

शब्दार्थ—एक तें एक लौं=एक से एक बढकर। ढीठ=शरारती। सौंह=सौगन्ध। मरु करि=कठिनता से।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की दधिलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि कृष्ण एक से एक बढ कर शरारती साथियो को लेकर बन मे रहता है। उनकी शरारत की बातें कहाँ तक कहूँ, और कोई किस प्रकार उनकी शरारत की अति को सहन कर सकती है कि किसी भी गोपी के आते ही वे उसे तंग करने लगते है। उन्होंने मेरी दही खा ली, मेरा मटका फोड दिया और अनेक प्रकार की दुहाई देने पर भी मेरे वस्त्रो को पकड़े रहा। रसखान कहते हैं कि जब मैंने उसे यशोदा जी की सौगन्ध खिलाई तो वे भागे और मैं बडी कठिनता से उनसे छूट पाई।

सवैया

आज महूँ दधि बेचन जात ही मोहन रोकि लियो मग आयो।
मांगत दान मे आन लियो सु कियो निलजी रस जोवन खायो॥
काह कहूँ सिगरी री बिथा रसखानि लियो हँसि के मुसकायो।
पाल परी मैं अकेली लली, लला लाज लियो सु कियो मनभायो॥१०१

शब्दार्थ—निलजी=लज्जा रहित। सिगरी=सारी। बिथा=व्यथा।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! आज जब मैं दही बेचने के लिए जा रही थी तो कृष्ण ने आकर मेरा रास्ता रोक लिया। उसने दही का दान मागा, किन्तु उस दान के बदल म उसने मुझे लज्जा रहित करके यौवन रस का आनन्द लिया। हे सखि! मैं अपनी समस्त व्यथा का क्या वणन करूँ आनन्द सागर कृष्ण ने हँस हँस कर मेरा यौवन दान लिया। मैं अकेली ही उसे मिल गई थी अत मैं कुछ कर भी नही सकती थी। उसने मरी लज्जा ले ली और जो चाहा वही किया।

विशेष—१ *भावो की सम्मानित अभिव्यक्ति प्रशसनीय है।*
२ अतिम पक्ति म अनुप्रास अलकार है।

सवैया

पहलें दधि लै गई गोकुल मे चख चारि भए नटनागर पै।
रसखानि करी उनि मैनमई कहैं दान दे दान खरे अर पै॥
नख तें सिख नील निचोल लपटे सखी सम भांति कँपे डर पै।
मनो दामिनि सावन के घन म निकस नही भीतर ही तरपै॥१०२॥

शब्दार्थ—चाव=आँख। मैनमई=प्रेम से परिपूर्ण। दामिनी=बिजली।

अर्थ—*दानलीला का वणन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कह* रही है कि पहल मैं गोकुल म दही ल गई। वहा मुझे कृष्ण मिल गय जिनसे आँखें चार हुई। उन्होने मुझे प्रेम परिपूण कर दिया और दही के दान के लिए अडकर खडे हो गय। मरी सारी सखियां सिर स पैर तक अपने नीले वस्त्र को लपटे हुए डर स कांप रही थी। वस्त्रो म लिपटा हुआ उनका सौन्दय ऐसा प्रतीत होता था मानो सावन म उमडे हुए बादल म स बिजली की द्युति न निकलन क कारण अन्दर ही अन्दर तडप रही हो।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलकार।

पाठान्तर—

पहिले दधि लै गई गोकुल मे चख चार भए नटनागर पै।
रसखान करी उन चातुरता कहै दान दे दान खरे घर पै॥
नख ते सिख लौं पट नील लपेटि लली सब भाँति कँपै डर पै।
मनु दामिनी साँवन के घन मे निकसे नहिं भीतर ही तरपै॥

सवैया

दानी नए भए माँगत दान सुने जु ॰ कंस तौ बाँधे न जैहौ।
रोकत हौ बन मे रसखानि पसारत हाथ महा दुख पैहौ।
टूटें छरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै पुनि रेहौ।
जै है जो भूषन काहू तिया को तौ मोल छलाके लला न बिकैहौ। १०३॥

शब्दार्थ—दानी=कर वसूल करने वाले। सुने जु पे कस तौ बाँधे न जैहौ=यदि कंस सुन लेगा तो क्या बन्दी नही बना लिए जाओगे ? अर्थात् यह जानकर कि तुम उसकी प्रजा को तग करते हो, कंस तुम्हें बन्दी बना लेगा। छरा=गुंजा की माला। छला=छल्ला, अगूठी।

अर्थ—दही के लिए जबरदस्ती करते हुए कृष्ण को भय दिखाती हुई कोई गोपी कहती है कि हे कृष्ण ! यह सुनकर कि तुम नये कर वसूल करने वाले अपने आप ही बन गए हो, कस तुम्हें पकडवा कर बन्दी बना लेगा। तुम बन मे हमारा मार्ग रोककर हमारे सामने दही के लिए हाथ फैलाते हो, इस प्रकार की याचक वृत्ति से तुम्हे बहुत अधिक दुख भोगना पड़ेगा। इस छीना-झपटी मे यदि किसी गोपी की गुँज की माला टूट गई तो उसकी क्षति-पूर्ति के लिए तुम्हारे पास जो बछडा आदि धन है, वह सबका सब देना पड जायेगा। और यदि सयोगवश किसी गोपी का कोई आभूषण टूट गया तो उसके एक छल्ले के मूल्य मे ही तुम्हे बिक जाना पड़ेगा।

तुलना—'चेरी न तेरी न तेरे बबा की मैं घेरी गली मे का पैर लङेहसो।
जो तुम चाहत चाखन माखन सो तुम माखन नेकु न पैहौ।
कस के राज मे धूम नही बरि आई बबा की सौ बून्द न देहौ।
टूटँगो हार हजार को तौ तुम नन्द जसोदा समेत बिकैहौ॥
—अज्ञात

सवैया

छीर जो चाहत चीर गहै एजू लेउ न केतिक छीर अचैहो।
चाखन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहो।
जानति हो जिय की रसखानि सु काहे को एतिक बात बढ़ैहो।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्हजू नेकु न पैहो ॥ १०४ ॥

शब्दार्थ—छोर=क्षीर, दूध । अचैहो=पीओग । एतिक=उतनी । गोरस=दही । रस=आनन्द, इन्द्रिय, सुख । नेकुन=तनिक भी ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से कह रही है कि हे कृष्ण ! तुम मेरा चीर पकड़कर जो दूध माँग रहे हो, तो लो । देखती हूँ तुम कितना दूध पी जाओगे । चाखने के बहाने से जो मक्खन तुम माँग रहे हो तो लो और जितना चाहो उतना खालो । लेकिन मैं तुम्हारे मन की बात जानती हूँ, इसलिए क्यों इतनी बढ़ा रहे हो । तुम दही के बहाने से जो इन्द्रिय-सुख चाहते हो, वह तुम्हें तनिक भी नहीं मिलेगा ।

तुलना—१ 'जो रस चाहो सो रस नाही गोरस पियहुँ अघाय ।'

—सूरदास

२ 'गोरस के मिस डोलती, सो रस नेकु न दइ ।'

—रहीम

३ 'गोरस चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाहिं ।'

—बिहारी

सवैया

लगर छैलहि गोकुल मैं मग रोकत संग सखा ढिग तें हैं।
जाहि न ताहि दिखावत आँखि सु कौन गई अब तोसो करै हैं।
हाँसी में हार हट्यौ रसखानि जु जौ कहूँ नकु तगा टुटि जैं हैं।
एकहि मोती के मोल लला सिगरै ब्रज हाटहि हाट बिकैं हैं ॥ १०५ ॥

शब्दार्थ—लगर=प्रेमी । ढिग=पास । गई=परवाह, चिन्ता ।

अर्थ—गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि यह सच है कि तुम प्रेमी और छैला बनकर गोकुल में हमारा रास्ता रोक लेते हो, क्योंकि तुम्हारे पास तुम्हारे बहुत से साथी हैं, लेकिन हम अपनी चालें दिखाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अब तुम्हारी परवाह कोई नहीं करता । हे आनन्द-सागर कृष्ण

तुमने हँसी-हँसी में मेरा हार ले लिया है, लेकिन ध्यान रखो, यदि इसका जर ा भी धागा टूट गया तो सिर्फ इसके एक मोती के लिए तुम सारे ब्रज के बाजार में बिकते फिरोगे।

सवैया

काहू को माखन चाखि गयौ अरु काहू को दूध दही ढरकायौ।
काहू को चीर लै रूख चढ्यौ अरु काहूको गुंजहरा छहरायौ।
मानै नहीं बरजे रसखानि सु जानियै राज इन्हैं घर आयौ।
आव री बूझैं जसोमति सों यह छोहरा जायौ कि मेव मंगायौ ॥ १०६।

शब्दार्थ—ढरकायौ=बिखेर दिया। गुंजहरा=गुंजो की माला। छहरायौ=तोड दी। बरजें=रोकने पर मेव=लूट मार करने वाला।

अर्थ—कृष्ण की शरारतों से तंग आकर गोपियाँ परस्पर उपालम्भ देती हुई कहती हैं कि यह कृष्ण हमें बहुत तंग कर रहा है। किसी का मक्खन छीनकर उसे खा लिया, किसी की दही बिखेर दी और दूध बिखेर दिया। किसी का वस्त्र लेकर पेड पर चढ गया। किसी की गुंजों की माला तोड दी। रसखान कहते हैं कि रोकने पर भी यह अपनी आदतों से बाज नहीं आता। ऐसा जान पडता है कि इन्हीं के घर का राज्य आ गया हो। हे सखियो! आओ, और यशोदा जी से यह चलकर मालूम करें कि तुमने यह पुत्र उत्पन्न किया है या लूटमार करने वाला मेव।

विशेष—कृष्ण जी विविध लीलाओं का भावपूर्ण वर्णन है।

मुरली प्रभाव

कवित्त

दूध दुह्यौ सीरो पर्यो तातो, न जमायौ कर्यौ,
जामन दयौ सो धर्यौ धर्योई खटाइगौ।
आन हाथ आन पाइ सबही के तब ही तें,
जब ही तें रसखानि तानिनि सुनाइगौ।
ज्योंही नर त्योंही नारी तैसीयै तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रिज बिललाइ गौ।
ज्योंही नर त्योंही नारी तैसीयै तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइ गौ।
जानियै न माली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइ गौ कि विष बगराइ गौ ॥१०६॥

शब्दार्थ—तातो=गर्म। जामन=दूध को जमाने के लिए दही का जो

हिस्सा दूध मे डाला जाता है, उसे जामन कहते हैं। पाइ=पाँव, चरण। रसखानि आनद सागर कृष्ण। बारी=युवती। छोहरा= पुत्र। बगराइ= बिखेरना।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब कृष्ण ने बाँसुरी बजाई तो ब्रज की सारी व्यवस्था ही छिन्न भिन्न हो गई। जो निकाला हुआ दूध गर्म था, वह ठडा पड़ गया, इसीलिए वह जमाया न जा सका, क्योंकि बासुरी की धुनि को सुनकर दूध जमाने वाली गोपी दूध जमाना ही भूल गई। जिस गोपी ने दूध को जमाने के लिए उसमे जामन लगा दिया था, वह उसे उचित स्थान पर रखना भूल गई अत वह रक्खा रक्खा ही खट्टा हो गया। जब से आनद-सागर कृष्ण ने बाँसुरी की मधुर तानें सुनाई हैं, तब से ब्रजवासियो के हाथ पैर और ही हो गये हैं, अर्थात् उनके हाथ-पैर चलते ही नही। जो दशा आदमियो की है, वही दशा स्त्रियो की है, वही युवको और युवतियो की है। हे सखि ! मैं ब्रज की दुर्दशा का कहा तक वर्णन करूँ, बस इतना समझ लो कि सारा ब्रज ही व्याकुल हो गया। हे सखि ! पता नहीं यशोदा-पुत्र ने बाँसुरी बजाई थी या ब्रज मे विष बिखेरा था, जिसके कारण सारे ब्रज-वासियो की कर्मण्य शक्ति ही नष्ट हो गई।

विशेष—सदेह अलकार।

तुलना—'आन कहै आन करै आन हाथ पाइ भई,
अनग के अनख दही न सुधि तिय मे।
सीरो तात तातो कर तातो जान सीरो करै,
दूध न जमायो जाइ नेह जम्यो हिय मे।'
—केशव

कवित्त

जल की न घट भरैं मग की न पग धरैं
घर को न कछु करैं बैठी भर साँसु री।
एकै सुनि लोट गई एकै लोट पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।
कहै रसखानि सो सबै ब्रज वनिता बधि,
बधिक कहाय हाय भई कुल हाँसु री।

करियै उपायै बास डारियै कटाय,
नाहिं उपजैगो बांस नाहिं बाजे फेरि बाँसुरी ॥१०८॥

शब्दार्थ—घट=घडा । वधि=वध करके, मार करके ।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के अपूर्व प्रभाव का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण ने जब बाँसुरी बजाई तो सारे व्रज के काम बन्द हो गए । जो गोपियाँ यमुना नदी में घुस कर पानी भरने वाली थी वे पानी मे खडी की खडी रह गई और अपना घड़ा न भर सकी । जो मार्ग मे आ रही थी, वे वही रुक गई, एक कदम भी आगे न रख सकी । जो घर मे थीं, वे अपना सारा काय छोडकर केवल लम्बे-लम्बे साँस भरने लगी । एक गोपी बाँसुरी की धुनि को सुनकर तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई, एक लोट-पोट हो गई, एक की आँखो से आँसू निकल आये । रसखान कहते हैं कि वह गोपी अपनी सखी से कहती ही गई कि कृष्ण तो सारी व्रज-नारियो का वध करके वधिक बन गये और हम उसके प्रेम मे पड़-कर अपने कुल की हँसी का कारण बन गई । अब तो यही उपाय करना चाहिए कि दुनिया के सारे बाँसो को कटवा डालो । इससे न तो बाँस रहेगा और न फिर बाँसुरी बनकर हमे व्यथित करेगी ।

विशेष—१. कृष्ण की बाँसुरी का प्रभाव-वर्णन अत्यन्त भावपूर्ण है ।

२. अंतिम पंक्ति मे लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है ।

३. डा० भवानीशंकर याज्ञिक इस कवित्त को रसखानकृत नही मानते । अतः हमने इसे संदिग्ध छन्दो के अन्तर्गत भी रखा है ।

सवैया

चंद सो आनन मैन-मनोहर बैन मनोहर मोहत हौं मन ।
बंक बिलोकनि लोट भई रसखानि हियो हित दाहत हौं तन ॥
मैं तब तै कुलकानि की मैंड नखी जु सखी अब डोलत हौं बन ।
वेनु बजावत आवत है नित मेरी गली व्रजराज को मोहन ॥

शब्दार्थ—आनन=मुख । मैन=कामदेव । हित=प्रेम । कुल-कानि की मैंड=कुल की मर्यादा की सीमा ।

अर्थ—बाँसुरी के प्रभाव से कृष्ण के प्रति उत्पन्न प्रेम की बात एक गोपी अपनी सखी को बताती हुई कह रही है कि हे सखि ! चन्द्रमा के समान सुन्दर

मुख वाले, कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण के मधुर वचनों ने मेरा मन मोह लिया है। उसकी बाँकी चितवन को देखकर मैं सज्ञा शून्य हो गई। आनन्द-सागर कृष्ण का मेरे हृदय में बसा हुआ प्रेम मेरे शरीर को जलाता है। मैंने तभी से कुल की मर्यादा की सीमा छोड दी है और अब कृष्ण को प्राप्त करने के लिए वन-वन डोल रही हूँ, क्योंकि ब्रज के मन को मोहने वाला ब्रजराज कृष्ण बाँसुरी बजाता हुआ प्रतिदिन मेरी गली आता है।

विशेष—'चद सो आनन' मे उपमा और 'मैंन मनोहर' मे रूपक अलकार है।

सवैया

बाँकी बिलोकनि रंगभरी रसखानि खरी मुसकानि सुहाई।
बोलत बोल अमीनिधि चैन महारस-ऐन सुनै सुखदाई॥
सजनी पुर बीथिन मैं पिय-गोहन लागी फिरैं जित ही तित धाई।
बाँसुरी टेरि सुनाइ अली अपनाइ लई ब्रजराज कन्हाई॥११०॥

शब्दार्थ—बिलोकनि=दृष्टि। रगभरी=प्रेमपूर्ण। रसखानि=आनन्द सागर कृष्ण की। खरी=सुदर। बोल=वचन। अमीनिधि=अमृत का भडार। चैन=आनन्द। महारस ऐन=अत्यत आनन्द का भडार। पुर बीथिन मैं=नगर की गलियो मे। पिय गोहन=कृष्ण के साथ।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! उस कृष्ण की दृष्टि प्रेमपूर्ण है, वह आनद का सागर है, उसकी सुन्दर मुस्कान मन को मोहने वाली है। वह अमृत भडार से युक्त वचनों को कहता है, अर्थात् उसकी वाणी का माधुर्य अमृत के समान परमानन्द प्रदान करने वाला है। उसकी मधुर वाणी अत्यत आनन्द का भडार है, जिसे सुनने से सुख प्राप्त होता है। हे सजनी! नगर की गलियों मे समस्त ब्रज वालाएँ कृष्ण के साथ साथ लगी हुई हैं। वह जिधर भी जाता है सभी गोपियाँ उधर ही दौडने लगती हैं। हे सखी! उस ब्रजराज कृष्ण ने बाँसुरी की ध्वनि सुनाकर समस्त ब्रज-बालाओं को अपने प्रेम के वशीभूत कर लिया है।

विशेष—अनुप्रास, यमक अलकार।

सवैया

मोहन की मुरली सुनिकैं वह बौरि ह्वै आनि अटा चढ़ि झाँकी।
गाप बडेन की डीठि बचाइ कै डीठि सो डीठि मिली दुहुँ झाँकी॥
देखत मोल भयो अखियान को को करे लाज कुटुम्ब पिता की।
कैसे छुटाई छुटै अटकी रसखानि दुहूँ की बिलोकनि बाँकी॥ ११३॥

शब्दार्थ—बौरी ह्वै=पागल होकर। बिलोकनि बाँकी=वक्र चितवन।

अर्थ—गोपी प्रेम का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि कृष्ण की मुरली की तान को सुन कर वह पागल होकर अटारी पर चढ़ कर नीचे की ओर झाँकी। अन्य लोगों की निगाह बचाकर उसने कृष्ण से निगाह मिलाई। दोनों की आँखें मिली। आँखें मिलते ही दोनों में प्रेम हो गया और उन्होंने कुल की तथा पिता की लाज को तिलांजलि दे दी। रसखान कवि कहते हैं कि उन दोनों की परस्पर मिली हुई बाँकी चितवन किस प्रकार हटाने से हट सकती है अर्थात् उन दोनों का प्रेम नहीं टूट सकता।

सवैया

बसी बजावत आनि कढ़ो सो गली मैं अली! कछु टोना सो डारे।
हेरि चितै तिरछी करि दृष्टि चलो गयो मोहन मूठि सी मारे॥
ताही घरी सो परी धरी सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहुँ वारे।
राधिका जी है तो जी हैं सब न तो पीहैं हलाहल नन्द के द्वारे॥११४॥

शब्दार्थ—टोना=जादू। हेरि=देखकर। मूठि सी मारे=मूठ सी मारकर। हलाहल=विष।

अर्थ—प्रेम व्यथिता राधिका जी का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती हैं कि हे सखि! बाँसुरी को बजाता हुआ वह कृष्ण अचानक गली में आ निकला और राधा पर कुछ जादू सा डाल गया। वह उसकी ओर देखकर ध्यान देकर और तिरछी निगाह करके मन को मोहने वाली मूठ सी मार कर चला गया अर्थात् राधा पर अपना प्रेम जता कर और राधा के हृदय में प्रेम की भावना जगाकर चला गया। वह प्यारी राधा उसी समय से सेज पर निश्चेष्ट होकर पड़ी हुई है। वह कुछ बोलती भी नहीं है तथा अपने प्राणों को न्योछावर करने पर उतारू है। हे सखि! यदि राधा जी जीवित बच गई तो हम सबका जीवन है यदि वह मर गई तो हम सभी नन्द के द्वारे

पर जाकर विष पी लेंगी, अर्थात् उसके द्वारे पर जाकर आत्म हत्या कर लेंगी।

विशेष—१ जो है तो जी हैं, मे यमक अलकार है।

२ 'न तो पी हैं हलाहल नन्द के द्वारे' म मन का सारल्य एव दृढता निहित है।

तुलना—चेतें न जो वृषभान सुता दुख ह्वँ ह्वँ बडो इहि की सजनीन को।
जाय के साथ परेगी सबे या अहीर के द्वार पै हीर-कनीन को॥
—अज्ञात

सवैया

कल काननि कुण्डल मोरपखा उर पैं बनमाल बिराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि-तरग महा छबि छाजति है॥
रसखानि नखें तन पीत पटा सत दामिनि की दुति लाजति है।
वहि बासुरी की धुनि कान परे कुलकानि हियो तजि भाजति है॥११५॥

शब्दार्थ—कल=सुन्दर। काननि=कानो म। अधरा=होठो पर। मुसकानि तरग=हसी की लहरें। छाजति है=शोभायमान है। सत दामिनि की=सैकडो बिजलियो की। दुति=द्युति, शाभा। लाजति है=लज्जित होता है। कुलकानि=वश की मर्यादा। भाजति है=भागती हैं।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा तथा उनकी बासुरी के प्रभाव का वणन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण के कानो म सुन्दर कुण्डल सिर पर मोर-पखो का मुकट और हृदय पर वैजयन्तीमाला सुशोभित है। उनके हाथ म वशी और होठो पर मुसकराहट की लहरें अत्यन्त शोभा प्राप्त करती है। रसखान कवि कहत हैं कि उनके तन पर सुशोभित पीत वस्त्र को देखकर सैंकडो बिजलिया की शोभा लज्जित होती है। उसी बासुरी की ध्वनि कानो म पडने पर व्रज वनिताएँ अपने हृदय से वश की मर्यादा छोड कर उसी ओर भागती है।

विशेष—अनुप्रास, रूपक और प्रतीप अलकार।

सवैया

वाल्हि भटू मुरली धुनि म रसखानि लियो कहूँ नाम हमारो।
ता छिन ते भई बैरिनि सास कितौ कियौ झाँकन देति न द्वारो॥

पर जाकर विष पी लेंगी, अर्थात् उसके द्वारे पर जाकर आत्म हत्या कर लेंगी।

विशेष—१ जी है तो जी हैं, मे यमक अलकार है।

२ 'न तो पी हैं हलाहल नन्द के द्वारे' मे मन का सारल्य एव दृढता निहित है।

तुलना—'चेतै न जो वृषभान सुता दुख ह्वै ह्वै बडो इहि की सजनीन को।
जाय के साथ परेगी सबै या अहीर के द्वार पै हीर-कनीन को॥
—अज्ञात

सवैया

कल कानिनि कुण्डल मोरपखा उर पै बनमाल विराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि-तरग महा छवि छाजति है॥
रसखानि लखैं तन पीत पटा सत दामिनि सी दुति लाजति है।
वहि बासुरी की धुनि कान परे कुलकानि हियो तजि भाजति है॥११५॥

शब्दार्थ—कल=सुन्दर। काननि=कानो मे। अधरा=होठो पर। मुसकानि-तरग=हसी की लहरें। छाजति है=शोभायमान है। सत दामिनि को=सैंकडो बिजलियो की। दुति=द्युति, शोभा। लाजति है=लज्जित होता है। कुलकानि=वश की मर्यादा। भाजति है=भागती हैं।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की शोभा तथा उनकी बासुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण के कानो मे सुन्दर कुण्डल, सिर पर मोर-पखो का मुकट और हृदय पर वैजयन्तीमाला सुशोभित है। उनके हाथ मे वशी और होठो पर मुसकराहट की लहरें अत्यन्त शोभा प्राप्त करती हैं। रसखान कवि कहते हैं कि उनके तन पर सुशोभित पीत वस्त्र को देखकर सैंकडो बिजलियो की शोभा लज्जित होती है। उसी बासुरी की ध्वनि कानो मे पडने पर व्रज वनिताएँ अपने हृदय से वश की मर्यादा छोड कर उसी ओर भागती हैं।

विशेष—अनुप्रास, रूपक और प्रतीप अलकर।

सवैया

काल्हि भटू मुरली धुनि मे रसखानि लियौ कहुँ नाम हमारौ।
ता छिन ते भई वैरिनि सास कितौ कियौ झाँकन देति न द्वारौ॥

होत चवाव बलाई सो आली री जो भरि आँखिन भेंटिये प्यारो।
बाट परी अब री ठिठक्यो हियरे अटक्यो पियरे पटवारो ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। चवाव=बदनामी की चर्चा। जो भरि आँखिन=आँखें खोलकर। बाट परी=रास्ता रुक गया। ठिठक्यौ=रुक गया।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आनन्द-सागर कृष्ण ने अपनी मुरली मे मेरा नाम बजा दिया था। तभी से मेरी सासू मेरी बैरिन हो गई है, तथा प्रयत्न करने पर भी द्वार झाँकने नही देती, अर्थात् मैं अपने घर से बाहर निकलने का बहुत प्रयत्न करती हूँ, किन्तु मेरी सासू मुझे तनिक भी बाहर नही आने देती है। हे सखि! यदि मैं कृष्ण को तनिक भी आँखें भर कर देख लेती हूँ तो इससे मेरी भारी बदनामी होती है। जब से कृष्ण मेरे मन मे बसा है, अर्थात् कृष्ण से मुझे प्रेम हुआ है, तब से मेरा रास्ता और हृदय दोनो रुक गये हैं अर्थात् न तो मैं कहीं बाहर जा सकती हूँ और न अपने हृदय से कृष्ण को ही निकाल सकती हूँ।

विशेष—अन्तिम पंक्ति म यमक अलंकार है।

पाठान्तर—इस सवैया की प्रथम पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'एक समै मुरली धुनि मे रसखान लियौ उन नाम हमारौ।'

सवैया

आजु भटू इक गोपबधू भई बावरी नेकु न अंग सम्हारै।
माई सु धाइ कै टौना सो ढूँढति सास सयानी-सयानी पुकारै॥
यों रसखानि घिरौ सिगरौ ब्रज आन को आन उपाय बिचारै।
कोऊ न कान्हर के कर ते वहि बैरिनि बासरिया गहि जारै॥११७॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। टोना=जादू। सयानी=टोना करने वाली। आन को आन=अन्य-अन्य प्रकार के। कान्हर के=कृष्ण के। गहि जारै=लेकर जलाता है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुन कर एक गोप वधू पागल हो गई उसे अपने अंगों की सम्हालन का तनिक भी ध्यान नही रहा। उसकी सखियाँ दौड दौड कर जादू करने वालों का ढूँढने लगीं, उसकी सासु टोना करने वाली को पुकारने लगी। रसखान कहते हैं कि

इस प्रकार सारा ब्रज वहाँ आ गया और उस गोपवधू को चारो ओर से घेर लिया। सब नर-नारी अन्य-अन्य प्रकार के उपचार बताने लगे, लेकिन किसी की भी समझ मे नही आया कि कृष्ण के हाथ से उस वैरिन बाँसुरी को छीन कर जला दे, क्योकि वह उसी का तो प्रभाव था, जिसके कारण वह गोप वधू पागल हो गई थी।

विशेष—बासुरी के प्रभाव का प्रभावोत्पादक वर्णन है।

पाठान्तर—इस सवैया की द्वितीय पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'मात अघात न देवन पूजत सास समानो सयानो पुकारै।'

सवैया

कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखि ! हमको चहिहै।
निसद्यौस रहै सग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यो सहिहै॥
जिन मोहि लियौ मन मोहन को रसखानि सदा हमको दहिहै।
मिलि आओ सबै सखि ! भागि चलै अब तो ब्रज मे बसुरी रहिहै॥११८॥

शब्दार्थ—कान्ह=कृष्ण। चहिहै=चाहेगा, प्रेम करेगा। निसद्यौस=रात-दिन। तापन=दुखो को। दहिहै=जलती है, दुख देती है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बासुरी के प्रति सौतिया डाह प्रकट करती है कि हे सखि ! कृष्ण तो अब बासुरी के वश मे हो गये हैं, अत. अब हमे कौन प्यार करेगा ? अर्थात् कृष्ण तो केवल अपनी बाँसुरी को ही प्रेम करते हैं वे हमसे प्रेम नही करेंगे। यह बासुरी रात दिन उनके साथ लगी रहती है, अत यह सौतिया दुख हमसे नही सहे जाते। इस बाँसुरी ने दूसरो का मन मोहने वाले कृष्ण का भी मन मोह लिया है, इसीलिए यह हमे सदैव दुख देती रहती है। इस दुख से छूटने का तो केवल यही उपाय है कि सारी सखियाँ इकट्ठी होकर ब्रज से भाग चलें, क्योकि अब तो ब्रज मे यह बासुरी ही रहेगी।

विशेष—१. नारी के सपत्नी-भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
२ 'मोहि लियौ मन मोहन को' वाक्याश विशेष महत्वपूर्ण है।

तुलना—१ हम ब्रज बसिहैं तो बाँसुरी बसै न यह,
बासुरी बसाइ कान्ह हमे विदा दीजिए।

—शेख आलम

२ 'धुनि सुनाय चेटक भरी, सुधि नसाय चित चैन।
ब सी गिरधर घर बसी, हम घर बसी रहै न॥'

—अज्ञात

सवैया

ब्रज की वनिता सब घेरि कहैं, तेरो ढारो बिगारो कहा कस री ।
अरी तू हमको जम काल भई नैक कान्ह गही तो कहा रस री ॥
रसखानि भली विधि आनि बनी बसियो नहीं देत दिसा दस री ।
हम तो ब्रज को बसिबोई तजो बस री ब्रज बेरिन तू बसरी ॥ ११९ ॥

शब्दार्थ—ढारो=ढंग । जमकाल=मृत्यु ।

अर्थ—कृष्ण अपनी बाँसुरी को बहुत प्रेम करते हैं । उसके प्रेम को देखकर गोपियों के मन में उसके प्रति ईर्ष्या और जलन की भावनायें उत्पन्न हो गई हैं । अतः ब्रज की सारी नारियां बांसुरी को घेर कर उससे पूछती हैं कि हे बांसुरी ! हममें से किसने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू हमारे लिए मृत्यु-काल के समान बन गई है ? अगर कृष्ण ने तुझे जरा सा छू लिया तो तुझे कौन सा भारी आनन्द प्राप्त हो गया । रसखान कवि कहते हैं कि गोपियाँ बांसुरी से कहने लगीं कि अब तो हम इस परिणाम पर पहुँच गई हैं कि तू हमें यहाँ पर थोड़े दिन भी नहीं बसने देगी । हमने तो ब्रज में रहना ही छोड़ दिया है, इसलिए हे बैरिन बांसुरी, तू ही अब ब्रज में आनन्द से रह ।

विशेष—१. इस कवित्त में सौतभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है ।
२. अन्तिम पंक्ति में अनुप्रास का भावपूर्ण प्रयोग है ।

तुलना- 'मैंने छाड़यो ब्रज को री बसिबो, तू हीं या ब्रज में बसी री ।'
—सूरदास

सवैया

बजी है बजी रसखानि बजी सुनिकैं अब गोपकुमारी न जी है ।
न जी है कोऊ जो कदाचित कामिनी कान मैं वाकी जु तान कुपी है ॥
कुपी है बिदेस मदन न पावनि मेरी दय देह का मौन गजी है ।
गजी है तो मेरो कहा बस है सुनो बैरिनि बांसुरी फेरि बजी है ॥ १२० ।

शब्दार्थ—मैन=कामदेव ।

अर्थ—कृष्ण की बांसुरी का प्रभाव-वर्णन करते हुए कवि रसखान कहते हैं कि कृष्ण की बांसुरी बजने पर गोप-कुमारियों का जीवित रहना मुश्किल हो जाता है । जिस भी कामिनी के कानों में उस बंसी की धुनि पड़ती है वह कदाचित् जीवित ही नहीं रह जाती; अर्थात् बंसी के माधुर्य में इतनी तन्मय हो

जाती है कि वह स्वय को ही भूल जाती है। किसी-किसी गोपी के मन मे विरह की इतनी प्रबल वेदना जागृत हो जाती है कि वह अपने मन मे कुपित होकर कहने लगती है कि प्रियतम कितना बुरा है जो विदेश मे रह रहा है, पर उसने अभी तक अपना कोई भी सदेश नही भेजा, मेरे सारे शरीर मे तो अब कामदेव का सचार हो गया है, अर्थात् मन मे मिलन की उत्कठा बहुत अधिक बढ गई है। इस पर यह वैरिन बाँसुरी बजकर उस विरह वेदना को और भी अधिक उत्तेजित कर देती है। इसमें मेरा कोई वश नही है।

विशेष—१. सिंहावलोकन अलकार का भावपूर्ण प्रयोग है।

२. 'तान कुँपी हैं' मे भावोत्कर्षक शक्ति है।

तुलना—'कीजै कहा राम अब जैए केहि ठाम ऐ री,
फेरि वह वैरिन बजी है बन बासुरी।'
—द्विजदेव

सवैया

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माला गरें पहिरौंगी।
ओढि पितम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि सग फिरौंगी॥
भाव तो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥१२८॥

शब्दार्थ—मोर पखा=मोर-मुकुट। पितम्बर=पीला वस्त्र। भावतो=प्रिय। अधरान=ओठ। अधरा=नीचे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैं मोर-मुकुट को अपने सिर के ऊपर पहनूँगी, गुंजों की माला मैं पहनूँगी। पीला वस्त्र ओढ कर और हाथ म लाठी लेकर तथा ग्वालिन बनकर बन बन मे गायों के पीछे फिरूँगी। कृष्ण मेरा प्रिय है और उसे प्राप्त करने के लिए तेरे कहने से सारा स्वाँग भर लूँगी, किन्तु कृष्ण की मुरली को, जो वे ओठो पर रखे रहते हैं, नीचे नही धरूँगी।

विशेष—अतिम पक्ति मे यमक अलकार है।

कालिय दमन

कवित्त

आपनो सो ढोटा हम सब ही को जानत हैं,
दोऊ प्रानी सब ही के काज नित धावहीं।

ते तो रसखानि अब दूर तें तमासो देखें,
तरनितनूजा के निकट नहिं आवही।
मान दिन बात अनहितुन सो कहीं कहा
हितू जेऊ आए ते ये लोचन दुरावही।
कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली पर
मेरे बनमाली को न काली तें छुरावही ॥१२२॥

शब्दार्थ —ढोटा=पुत्र । तरनितनूजा=यमुना । अनहितुन=बुरी ।
हितू=मित्र। बनमाली=कृष्ण।

अर्थ —यशोदा अपनी सखी से कालिय-दमन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! हम (नंद और यशोदा) दोनों सभी गोपों को अपना-सा ही पुत्र समझते हैं और दोनों प्रतिदिन दूसरों के काम को दौड़ आते हैं, अर्थात् सदैव दूसरों की सहायता में तत्पर रहते हैं। रसखान कहते हैं कि वे ही लोग जिनकी हमने सदा सहायता की, अब दूर से ही तमाशा देख रहे हैं। कोई भी यमुना के निकट नहीं आता। न जाने किसी दिन हमने किससे क्या बुरी बात कह दी कि जो मित्र थे, वे भी अब आँखें चुरा रहे हैं अर्थात् कोई भी कृष्ण की सहायता के लिए आगे नहीं बढ़ रहा है। हे सखि ! मैं तुमसे क्या कहूँ। वैसे तो सब लोग कार्य-निवृत्त है, पर मेरे कृष्ण को कोई भी कालिय नाग से नहीं छुड़ा रहा है।

विशेष—यशोदा की भययुक्त आतुरता का स्वाभाविक वर्णन है।

पाठान्तर—इस कवित्त की पाँचवी और छठी पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

अदिन परे तें अनहितू सब भये लोग
यहै तो अजोग दखि लोचन दुरावही।'

सवैया

लोग कहैं ब्रज के रसखानि अनन्दित नंद जसोमति जू पर।
छोहरा आजु नयो जनम्यौ तुम सो कोऊ भाग भरयौ नहिं भू पर॥
वारि कै दाम सँवार करौ अपने अपचाल कुचाल ललू पर।
नाचत रावरो लाल गुपाल सो काल सो ब्यालकपाल के ऊपर।१२३।

शब्दार्थ —छोहरा=पुत्र, कृष्ण। दाम=धन। अपचाल कुचाल=दुर्दिन।

सनू पर=फण पर । व्याल-कपाल=नाग का सिर।

अर्थ—कृष्ण को कालिय नाग के सिर पर नृत्य करते हुए देखकर ब्रज के लोग आनंदित नन्द और यशोदा से कहते है कि तुम्हारे पुत्र ने आज नया जन्म लिया है, अत इस भूमडल पर तुम जैसा कोई भाग्यशाली नही है। तुम धन का दास देकर तथा उसे कृष्ण पर न्यौछावर करके अपने दुर्दिनो को नष्ट कर लो। अब चिन्ता की कोई बात नही है, क्योकि तुम्हारा पुत्र कालिय नाग के सिर के ऊपर नाच रहा है, अर्थात् इसने नाग को पूर्णतया अपने वश मे कर लिया है।

विशेष—तत्कालीन सामाजिक परम्पराओ की ओर सकेत इस सवैया मे दृष्टिगोचर होते है।

तुलना— 'जनम को चाली ऐरी अद्भुत है ख्याली आजु
काली की कनाली पै नचत बनमाली है।'
—पद्माकर

४७

चीर हरण

सवैया

एक समै जमुना जल मैं सब मज्जन हेत धसी ब्रज गोरी।
त्यौं रसखानि गयौ मनमोहन लै कर चीर कदम्ब की छोरी॥
न्हाइ जबै निकसी बनिता चहु ओर चितै चित रोष करो री।
हार हियें भरि भावन सो पट दीने लला बचनामृत बोरी ॥१२८॥

शब्दार्थ—मज्जन हेत=न्हाने के लिए। छोरी=चोटी। रोष=क्रोध। बचनामृत=अमृत जैसे सुखद बचन। बोरी=डूब गई।

अर्थ—चीरहरण लीला का वर्णन करते हुए रसखान कवि कहते हैं कि एक समय की बात है कि सब ब्रज की स्त्रियाँ न्हाने के लिए यमुना के जल मे उतरी। तभी उनके वस्त्रो को लेकर श्रीकृष्ण कदम्ब वृक्ष की चोटी पर चढ गये। स्नान करके जब वे स्त्रियाँ बाहर निकली और चारो ओर देखने पर भी अपने वस्त्रो को न पा सकी तो क्रुद्ध हो गई। जब उन्होने अपनी हार स्वीकार कर ली तो अनेक प्रकार के प्रेमपूर्ण भावो से भरकर कृष्ण ने उनके वस्त्र लौटा दिये और उनसे जो प्रेमपूर्ण बातें की, उनके अमृत जैसे सुखद बचनो को सुनकर सारी स्त्रियाँ आनन्द मे डूब गई।

प्रेमासक्ति

सवैया

प्रान वही जु रहैं रिझि वा पर रूप वही जिहि वाहि रिझायौ ।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायौ ।।
दूध वही जु दुहायौ री वाही दही सु सही जु वही ढरकायौ ।
और कहाँ लौं कहौं रसखानि री भाव वही जु वही मन भायौ ।।१२५।।

शब्दार्थ—सरल हैं।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि वे ही प्राण हैं जो कृष्ण पर रीझ जायें, वही रूप है जो कृष्ण को रिझाले। वही सिर है जो कृष्ण के चरणो का स्पर्श करे, हृदय वही है जिससे कृष्ण का स्पर्श किया गया हो। वही दूध है जो कृष्ण ने दुहा है, वही दही है जो उसने बिखेरी है। रसखान कवि कहते हैं कि और कहाँ तक कहूँ, भाव भी वही है जो कृष्ण को अच्छा लगता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि इन्द्रियो की और भावो की सार्थकता तभी है जब वे कृष्ण को या तो अपनी ओर आकृष्ट कर सकें, अथवा उसकी ओर आकृष्ट हो जायें ।

सवैया

देखन कौं सखी नैन भए न सबै तन,आवत गाइन पाछैं ।
कान भए प्रति रोम नही सुनिबे कौं, अमीनिधि बोलनि आछैं ।।
ए सजनी न सम्हारि भरैं वह बाँकी बिलोकनि कोर कटाछैं ।
भूमि भयो न हियो मेरी अली जहाँ हरि खेलत काछनी काछैं ।।१२६।।

शब्दार्थ—अमीनिधि=अमृत सागर। कटाछैं=कटाक्ष। आली=सखी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि कृष्ण गायो के पीछे आ रहे हैं। अच्छा होता कि मेरे सारे शरीर मे नैन होते, ताकि मैं उसकी शोभा को पूरी तरह देख पाती। अमृत-सागर से भरे हुए वह जो मीठे वचन बोलता है, उन्हे सुनने के लिए मेरे रोम-रोम मे कान क्यो नही हो गये। हे सखि ! उसकी कटाक्ष भरी हुई सुन्दर चितवन सभालने से सभाली नही जाती, अर्थात् उसका प्रभाव बिना पडे नहीं रह पाता। हे सखि ! मेरा हृदय वह पृथ्वी क्यो नहीं बन गया, जहाँ काछनी

हिनवर कृष्ण खेलते हैं।

तुलना—१. 'देखिवे को स्याम सोम देतो दृग रोम-रोम,
कीनो सो न विधि श्रौ श्रविधि कीनी पलकें।'
—सोमनाथ

२ 'चाहित जुगल किसोर लखि, लोचन जुगल श्रनेक।'
—बिहारी

३. 'कीजे कहा राम, स्याम श्रानन विलोकिवे को,
विरचि विरचि न श्रनन्त श्रँखिया दई।'
—पद्माकर

सवैया

मोरपखा मुरली वनमाल लखें हिय को हियरा उमह्यौ री,
ता दिन तें इन वैरिनि को कहि कौन न बोल कुबोल सह्यौ री।
तौ रसखानि सनेह लग्यौ कोउ एक कह्यौ कोउ लाख कह्यौ री॥
श्रौर तौ रग रह्यो न रह्यौ इक रग रगी सोइ रग रह्यौ री॥१२१॥

शब्दार्थ—मोरपखा=मोर पखो का मुकुट। उमह्यौ=उमड रहा है। बोल-कुबोल=श्रच्छी-बुरी। रसखनि=श्रानन्द सागर कृष्ण। रग=श्रादत। रंग=प्रेम।

श्रर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति श्रपने प्रेम का वर्णन श्रपनी सखी से करती हुई कहती है कि जिस दिन से मैंने मोर-पखो का मुकुट, मुरली श्रौर बनमाल को धारण करने वाले कृष्ण को देखा है श्रौर मेरे हृदय का भी हृदय उमड रहा है, उस दिन से इन बैरिन बदनामी करने वाली स्त्रियो की कौन सी ऐसी श्रच्छी श्रौर बुरी बात है, जो मैंने नही सही। जब श्रानन्द-सागर कृष्ण से प्रेम हो ही गया है तो चाहे कोई एक कहे या लाख कहे, यह प्रेम नही छूट सकता। मुझे श्रौर तो श्रादत रही चाहे न रही, पर कृष्ण के प्रेम मे इस प्रकार रग गई हूँ कि श्रब यही रग शेष रह गया है।

विशेष—१. यमक, छेकानुप्रास श्रलकारो का भाव पूर्ण प्रयोग है।
२ प्रेम की मान्यता वर्णित है।

पाठांतर—इस सवैये की श्रतिम दो पक्तियाँ इस प्रकार भी मिलती हैं—

'श्रब जो रसखानि सो नेह लग्यो कोउ एक कह्यो, किन लाख कह्यो री,
श्रौर सो रग रह्यो न रह्यो इक रग रगीले सो रग रह्यो री।'

तुलना—१ 'तुम साँवरे नाँवरे कोऊ धरो हम साँवरे रंग रंगी सो रंगी।'

२. 'अब कोऊ कितेऊ कहै किनरी जु हौं स्याम के रंग रंगी सो रंगी।'

—द्विजदेव

३ 'रंग दूसरो और चढ़ैगो नही अलि साँवरो रंग रंग्यौ सो रंग्यौ।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

वन बाग तडागनि कुंजगली अखियाँ सुख पाइहैं देखि दई।
अब गोकुल माँझ बिलोकियँगी वह गोप सभाग सुभाय रई॥
मिलिहै हँसि गाइ कबै रसखानि कबै ब्रजबालनि प्रेम मई।
वह नील निचोल के घूँघट की छवि देखबी देखन लाज लई॥१२८॥

शब्दार्थ—सभाग=भाग्यशाली। रई=युक्त। निचोल=वस्त्र। लाज-लई=लज्जा युक्त।

अर्थ—कोई गोपी अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण को वन में, बाग में, तडागों में और कुंज गलियों में देखकर ले मेरी आँखो ने सुख प्राप्त कर लिया है अब मेरी इच्छा यह है कि उस भाग्यशाली सुन्दरता से युक्त कृष्ण को गोकुल के बीच कब देखूंगी। वह कृष्ण प्रेममयी ब्रज-बालाओं के मध्य में कब हँसकर तथा मिलकर रासलीला करेगा? और मैं कब अपने पीले वस्त्र के घूंघट के बीच से लज्जायुक्त होकर उसकी शोभा देखूंगी।

पाठान्तर—*वन बाग तडागन कुंज गली अखियाँ सुख पाइ हैं देखि दई।*
कब गोकुल माँझ बिलोकहिंगी छवि सो वह गोप समाग रई।
मिलि है हँसि गारी दै कै रसखान कबै ब्रज बालनि प्रेम मई।
वह नील निचोल के घूँघट की कब देखबी देखन लाज लई॥

सवैया

कान्हि परयो मुरली धुनि मैं रसखानि जू कानन नाम हमारो।
ता दिन तें नहिं धीर रह्यो जग जानि लयो अति कीनो पँवारो॥
गाँवन गाँवन मैं अब तो बदनाम भई सब सौं कैं किनारो।
तो सजनी फिरि फेरि कहौं पिय मेरो वही जग ठोंकि नगारो॥१२९॥

शब्दार्थ—कान्हि=कल। कानन=कानों में। पँवारो=झंझट। सब सौं

कै किनारो=सब से ही किनारा कर लिया, सबसे अलग हो गई। ठोकि नगारो=नगारा बजाकर।

अर्थ—मुरली के प्रभाव का वर्णन करती हुई एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! कल आनन्द सागर कृष्ण के द्वारा मुरली मे लिया हुआ मेरा नाम जब मेरे कानो मे पड़ा तो उसी दिन से (उसी समय से) मेरे मन का धैर्य जाता रहा। सारे ससार को यह मालूम हो गया है कि मैंने अपनी जान को झंझट पाल लिया है। कृष्ण से प्रेम करने के कारण अब तो मैं प्रत्येक गाँव मे बदनाम हो गई हूँ, इसीलिए सबसे अलग भी हो गई हूँ। इसीलिए हे सजनी! मैं तुझ से फिर उसी बात को दोहराती हूँ कि कृष्ण ही मेरा प्रियतम है। इस बात को मैं संसार मे नगारा पीटकर कह रही हूँ।

विशेष—इस सवैये मे 'सब सो कै किनारो,' और 'ठोकि नगारो' मुहावरों का भावपूर्ण प्रयोग है।

सवैया

देखि हौं आँखिन सो पिय को अरु कानन सो उन बैन को प्यारी।
बाके अनगनि रागनि की सुरभीनि सुगन्धनि नाक मैं डारी॥
त्यों रसखानि हिये मैं धरौं वहि साँवरी मूरति मैन उजारी।
गाँव भरो कोउ नांव धरौं पुनि साँवरी हो बनिहों सुकुमारी॥१३०॥

शब्दार्थ—कानन सो=कानो से। सुरभीनि सुगन्धनि=नाना प्रकार को सुगन्धियो की गन्ध। मैन-उजारी=कामदेव से सुन्दर। नाव धरौ=नाम धरो, निन्दा करो।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं अब इन अपनी आँखो से केवल प्रियतम कृष्ण का ही दर्शन करूँगी और इन कानो से केवल उनकी प्रिय बासुरी को ही सुनूँगी। उसके बाँके कामदेव जैसी छवि की नाना प्रकार की सुगन्धियो की गन्ध को अपनी नाक मे डालूँगी। इस प्रकार मैं उस आनन्द सागर की कामदेव से भी सुन्दर मूर्ति को अपने हृदय मे धारण करूँगी। अब चाहे गाँव के सारे निवासी मेरी कितनी ही निन्दा करें मैं कृष्ण के प्रति अपने अचल अनुराग को नही छोड़ूँगी।

सवैया

तुम चाहो सो कहो हम तो नन्दवारे के सग ठई सो ठई ।
तुम ही कुलचीने प्रवीने सबै हम ही कुछ छाडि गई सो गई ।
रसखान यो प्रीत की रीत नई सु कलंक की मोटें लई सो लई ।
यह गाव के बासी हँसै सो हँसै हम स्याम की दासी भई सो भई ॥१३१॥

शब्दार्थ—नन्दवारे के संग=कृष्ण के साथ । ठई सो ठई =दृढ सकल्प करके मिल चुकी है । कुलबीने=कुलवान । मोटैं=गठरियां ।

अर्थ—गोपिया किसी अन्य गोपी से जो उन्हे कृष्ण प्रेम से विरत करना चाहती है, कहती है कि तुम जो चाहो हम को कह लो , लेकिन हम तो दृढ संकल्प करके कृष्ण के साथ मिल चुकी हैं, अर्थात् उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर चुकी हैं। तुम ही सब प्रकार से कुलवती और प्रवीण सही, पर हमने तो कुल की मर्यादा को तिलाजलि दे दी है। हमारे प्रेम की यह रीति नहीं है। हमे जो भी बदनामी की गटरिया मिली हैं, उन्हें हमने सहर्ष स्वीकार कर लिया है। अब चाहे हमारे ग्राम के निवासी हम पर कितना ही हँसें, पर हम तो कृष्ण की दासी बन ही चुकी हैं।

विशेष—१. गोपियों के अनन्य प्रेम की सुन्दर व्यजना है ।
२. वीप्सा अलकार का प्रयोग प्रभावोत्पादक है ।
३. यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रंथावली' मे नहीं है ।

सवैया

मोर पखा धरे चारिक चारु विराजत कोटि अमेठनि फेंटो ।
गुंज छरा रसखान बिसाल अनग लजावत अग करेंटो ।
ऊँचे अटा चढि एडी ऊँचाइ हितौ हुलसाय कै हौंस लपेटो ।
हौं ब्रज के लखि हौं भरि आंखिन आवत गोधन धूरि धुरेंटो ।१३२।

शब्दार्थ—चारिक=चार-एक अर्थात् थोडे से । कोटि अमेठनि फेंटो=करोडो पेंचों से युक्त पगडी । गुंजछरा=गुंज की माला, एक आभूषण विशेष । अनग=कामदेव । अग करेंटा=स्याम शरीर । हौंस=अभिलाषा । भरि आंखिन=आंखो मे भरकर । गोधन धूर धुरेंटो=गौओं की धूल से धूसरित ।

अर्थ—शाम को घर लौटते हुए कृष्ण की शोभा का वर्णन कोई गोपी

अपनी सखी से करती हुई कह रही है कि हे सखि ! वह सिर पर थोड़े-से मोर-पखों का मुकुट धारण किए हुए है। उनकी करोड़ों पेचों से युक्त पगड़ी अत्यन्त शोभायमान हो रही है। उनके हृदय पर पड़ी हुई विशाल गुंजमाला तथा श्याम शरीर कामदेव को भी लज्जित करता है। मैंने उन्हें ऊँची अटारी पर चढ़ कर तथा उचक कर हृदय में हुलस कर अनेक अभिलाषाओं से युक्त होकर देखा है। मैं गौओं की धूल से धूसरित होकर आते हुए कृष्ण को बहुत देर से आँखें भरकर देख रही हूँ।

विशेष—१ तृतीय पंक्ति में औत्सुक्य भावों की सुन्दर योजना है।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र सम्पादित 'रसखान ग्रंथावली' में नहीं है।

सवैया

कुंजनि कुंजनि गुंज के पुंजनि मंजु लतानि सौं माल बनैबो।
मालती मल्लिका कुंद सौं गूंदि हरा हरि के हियरा पहिरैबो ।।
आली कबै इन भावने भाइन आपुन रीझि कै प्यारे रिझैबो।
माइ भकै हरि हाँकरिबो रसखानि तकै फिरि कै मुसकैबो ।।१३३।।

शब्दार्थ—पुंजनि=समूह। हरा=हार। आली=सखी। भावते भाइन=प्रिय भाव। हाकरिबौ=पुकारना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती है कि कुंज कुंज के गुंजों के समूहों को इकट्ठा करके उनकी सुन्दर लताओं से माला बनाऊँगी। मालती मल्लिका और कुंदों से हार गूँथकर कृष्ण के हृदय पर पहनाऊँगी हे सखि ! न जाने कब इन प्रिय भावों से स्वयं ही रीझकर अपने प्रिय कृष्ण को रिझा पाऊँगी। मैं यथाशक्ति उन्हें पुकारूँगी, वे पीछे की ओर देखेंगे और तब मैं उनकी ओर मुड़कर पुरस्कार दूँगी।

पाठान्तर—इस सवैया की चौथी पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—
'पाइ लुकै दुरि हौं करिबौ रसखान तकै फिरि कै मुसकैबो।'

सवैया

अब धीरज क्यों न धरौं सजनी पिय तो तुम सो अनुरागेइगो।
जब जोग संजोग को आन बनै तब जोग विजोग को मानेइगो।

निसचै निरधार धरो जिय मे रसखान सबै रस पावैइगो ।
जिनके मन सो मन लागि रहै तिनके तन सों तन लागइगो ॥१३४॥

शब्दार्थ —अनुरागेइगो=अवश्य प्रेम करेगा । निसचै=निश्चय । रस=आनन्द ।

अर्थ —कोइ गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि ! तू सब प्रकार से अपने मन में धैर्य धारण कर, क्योंकि एक न एक दिन प्रियतम कृष्ण तुमसे अवश्य प्रेम करेगा । जब मिलन का समय आयेगा तो वियोग की घड़ियाँ नष्ट हो जाएँगी । तुम निश्चय ही अपने हृदय में धैर्य धारण करो, क्योंकि तुम आनंद सागर कृष्ण से अवश्य आनंद प्राप्त करोगी । जिनके मन से तेरा मन लगा हुआ है उनके शरीर से भी तेरे शरीर का मिलन होगा ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है ।

सवैया

उनही के सनेहन सानी रहैं उनही के जु नेह दिवानी रहैं ।
उनहीं की सुनै न औ बैन त्यौं सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं ॥
उनही सँग डोलन मैं रसखान सबै सुखसिंधु अघानी रहैं ।
उनहीं बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी अँसुवानी रहैं ॥१३५॥

शब्दार्थ — सनेहन—प्रेम । सानी रहैं=परिपूर्ण रहती है । अघानी=तृप्त ।

अर्थ — अपनी प्रेमावस्था का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! मेरा मन उसी कृष्ण के प्रेम से परिपूर्ण रहता है मैं उन्हीं के प्रेम में पागल बनी हुई हूँ । मेरे कान केवल उन्हीं की बातों को सुनते हैं और किसी प्रकार की वाणी को नहीं सुनते । उनकी चितवन ही मुझे अनेक प्रकार से आनंद प्रदान करती है । मैं उन्हीं के साथ रहने में इतना सुख सागर प्राप्त कर लेती हूँ कि पूर्णतया तृप्त हो जाती हूँ । उनके बिना मेरी आँखें आँसुओं में डूबकर इस प्रकार तड़पती रहती हैं जिस प्रकार पानी के बिना मछली ।

विशेष—१ आनन्द भाव व प्रेम का वर्णन है ।
२ उपमा अलंकार ।

प्रेम-बन्धन

सवैया

चदन खोर पै बिन्दु लगाय कै कु जन तें निकस्यौ मुसकातो।
राजत है बनमाल गरे अरु मोरपखा सिर पै फहरातो।
मैं जब तें रसखान बिलोकति ही कछु और न मोहि सुहातो।
प्रीति की रीति मे लाज कहा सखि है सब सों बड नेह को नातो ॥१३६॥

शब्दार्थ—खोर=तिलक। नेह=प्रेम। बड=बडा, महत्वपूर्ण।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! चन्दन के तिलक पर बिन्दी लगाकर कृष्ण मुस्कराता हुआ कु जो से निकला। उसके गल में बनमाला सुशोभित थी और सिर पर मोर-पखो का मुकुट फहरा रहा था। मैंने जब से आनन्द-सागर कृष्ण की इस शोभा को देखा है तब से मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता। हे सखि ! प्रेम की रीति मे लज्जा त्याज्य है क्योकि प्रेम का सम्बन्ध सबसे बडा सम्बन्ध है।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

सवैया

कौन को लाल सलोनो सखी वह जाकी बडी अँखियाँ अनियारी।
जोहन बक विसाल के बानिन बेधत हैं घट तीछन भारी ॥
रसखानि सम्हारि परै नहिं चोट सु कोटि उपाय करैं सुखकारी।
भाल लिख्यौ विधि हेत को बधन खोलि सकै ऐसो को हितकारी ॥१३७॥

शब्दार्थ—लाल=पुत्र। सलोनो=सुन्दर। अनियारी=विलक्षण। जोहन=दृष्टि। विधि=ब्रह्मा। हेत=प्रेम।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी म कृष्ण के विषय मे पूछती है कि हे सखि ! यह सुदर पुत्र किसका है जिसकी बडी बडी विलक्षण आँखें हैं। यह विशाल वक दृष्टि रूपी भारी तीक्ष्ण बाणो मे हृदय को बेधता है। रसखान कहत हैं कि चाहे कोई करोडो सुखकारी उपाय करे, पर इन बाणो की चोट का नही.सँभाल.सकता.।.यदि. भाग्य. म.ब्रह्मा. न. प्रेम.का.बधन.लिख. दिया. हो तो ऐसा कोई भी हितकारी नही है जो इस बधन को खोल सके।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में विवशता के माध्यम से प्रेम की दृढ़ता का वर्णन है।

नेत्रोपालम्भ

सवैया

अली पगे रँगे ज रँग साँवरे मो पैं न आवत लालची नैना।
धावत हैं उतहीं जित मोहन रोके रुकैं नहिं घूँघट ऐना॥
कानिन कों कल नाहिं परै सखी प्रेम सों भीजे सुनैं बिन बैना।
रसखानि भई मधु की मखियाँ अब नेह को बंधन क्यों हूँ छुटै ना॥१३८॥

शब्दार्थ—आली=सखी। रंग=प्रेम। ऐना=घर। कानिन कौं=कानों को। कल=चैन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मेरे ये लालची नेत्र कृष्ण के प्रेम में इस प्रकार बन्दी हो गये हैं कि अब ये मेरे वश में नहीं रहे। ये जिस ओर भी कृष्ण को देखते हैं उसी ओर दौड़ने लगते हैं और घूँघट के घर में भी नहीं रुकते, अर्थात् चाहे जितना आवरण इनके ऊपर डाला जाये ये उस आवरण को भेद कर भी कृष्ण की ओर दौड़ते हैं। हे सखि! प्रेम से भीगे हुए वचनों को सुने बिना इन कानों को चैन नहीं मिलता अर्थात् ये कान प्रेम की मधुर बातों को सुनने के लिए सदैव आकुल रहते हैं। रसखान कहते हैं कि मेरी ये आँखें शहद की मक्खियाँ बन गई हैं अतः अब प्रेम का बन्धन किस प्रकार छूट सकता है? कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार शहद की मक्खियाँ अपने ही बनाये हुए शहद में बंदी हो जाती हैं उसी प्रकार मेरे नेत्र अपने द्वारा ही उत्पन्न किये गये प्रेम में बन्दी बन गये हैं।

विशेष—१ अंतिम पंक्ति में रूपक अलंकार है।
२ आँखों को मधु मक्खी बताना बहुत ही भावपूर्ण है।

सवैया

श्री वृषभान की छान धुजा अटकी लरकान तें आन लई री।
वा रसखान के पानि की जानि छुडावति राधिका प्रेममई री।
जीवन मूरि सी नेज लिये इनहूँ चितयौ उनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही सुरझानि गुही उरझाय दई री॥१३९॥

शब्दार्थ--छान=छत। धुजा=ध्वजा। पानि=हाथ। जीवन-मूरि=सजीवनी बूटी के समान।

अर्थ--राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! वृषभानु की छत पर जो ध्वज (पतग) आकर अटकी थी, वह अन्य लडको ने आकर ले ली। उस पतग को आनन्द सागर कृष्ण के हाथो की जानकर प्रेममयी राधा उस उनसे छुडाने लगी। इसी समय राधा ने सजीवनी बूटी के समान जीवनदायक तथा बरछी के समान चोट करने वाली दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा, तथा कृष्ण ने राधा की ओर देखा। राधा और कृष्ण की आँखें मिलते ही वह सुलझन वाली पतग की डोर और भी अधिक उलझ गई।

विशेष--१ 'जीवन मूरि सी नेज लिये' म विरोधाभास अलकार है।

२ गुडी के माध्यम से प्रेमाभिव्यजना की परिपाटी रीतिकाल मे प्रचलित थी। *उदाहरण के लिए बिहारी का यह दोहा प्रस्तुत है—*

'उडति गुडी लखि ललन की अँगना अँगना माँह।
बौरी लौं दौरी फिरति छुवति छबीली छाँह॥'

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

तुलना—१ हौं झुकि के जु लगी सुरझावन, पूँछत ठोडी गहै है तू कोरी।
ब्रह्म कहै उरझै गुरझै नहिं छूटत गाँठ न टूटत डोरी॥'
—ब्रह्म कवि

२ 'बिसरी सिगरी सुधि ता छन तैं,
कछु ऐसिऐ डीठि की फाँस घली।
कढि केसन के सुरझाइबे को,
मनमोहन सो उरझाय चली॥'
—द्विजदेव

सवैया

आई सबै ब्रज गोप लली ठिठकी ह्वै गली जमुना जल न्हाने।
औचक आइ मिले रसखानि बजावत वेनु सुनावत ताने॥
हा हा करी सिसकी सिगरी मति मैन हरी हियरा हुलसाने।
घूमै दिवानी अमानी चकोर सो ओर सो दोऊ चलै दृग बाने॥१४०॥

शब्दार्थ—ब्रज-गोपलली=ब्रज की वनिताएँ। औचक=अचानक। मैन=कामदेव। अयानी=परिणाम पर विचार न करने वाली। बाने=बाण।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कह रही है कि जब सारी ब्रज-वनिताएँ यमुना मे स्नान करने के लिए आई तो गली मे आकर ठिठक गई क्योकि उन्हें अचानक ही आनन्द-सागर कृष्ण मिल गया जो वशी बजाकर मधुर तानें सुनाने लगा। उसे देखकर सब हा-हा करने लगी और सिसकने लगी। उनकी बुद्धि कामदेव ने हरण कर ली और वे अपने मन मे प्रसन्न होन लगी। व कृष्ण प्रेम मे चकोर की भाँति ऐसी पागल होकर झूमने लगी कि उसके परिणाम पर भी उन्होने विचार नही किया। दोनो ओर से नयन-बाण चलने लगे।

विशेष—उपमा अलकार।

कवित्त

छूट्यौ गृह काज, लोक लाज मन मोहिनी को
भूल्यौ मन मोहन को मुरली बजाइबौ।
दखो रसखान दिन द्वै म बात फैलि जै है
सजनी कहाँ लौ चन्द हाथन दुराइबौ।
कालि हीं कलिन्दी कूल चितयौ अचानक ही
दोउन को दोऊ ओर मुरि मुसिकाइबौ।
दोऊ परै पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैया इन्हे
भूल गईं गैया उन्हे गागर उठाइबौ ॥१४१॥

शब्दार्थ—कहाँ लौ चन्द हाथन दुराइबौ=चन्द्रमा को कहा तक हाथो से छिपाया जा सकता है। कलिन्दी-कूल=यमुना का किनारा। पैयाँ=पैर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण मिलन का वणन करती हुई कहती है कि हे सखि! जब राधा और कृष्ण का मिलन हुआ तो राधा गृह कार्यों को तथा लोक लज्जा को भूल गई। कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाना भूल गए। उनके इस मिलन की बात कुछ ही समय म सब जगह फैल जायगी क्योकि चन्द्रमा को कहाँ तक और कब तक हाथो से छिपाया जा सकता है। कल ही यमुना क तट पर अकस्मात् दोनो न एक दूसरे को देखा दोनो एक दूसरे की ओर मुडकर मुस्कराये। दोनो एक दूसरे के पैर पड और दोनो ही आपस म बलैया लेन लगे। इस प्रेम-व्यापार मे दोनो ही इतने तन्मय हुए कि

कृष्ण अपनी गायो को चराना भूल गए और राधा अपनी जल से भरी हुई गागर को उठाना भूल गई।

विशेष—लोकोक्ति अलकार।

सम्पादित—'रसखान-ग्रथावली' मे नही है।

तुलना—'बसी को बजैबौ नट नागर को भूल गयो,
नागरि का भूल गयो गागर को भरिबौ।'
—काशिराम

पाठान्तर—'ए रही आजु काल्हि सब लोक लाज त्यागि दोऊ,
सीखे हैं सबै विधि सनेह सरसाइबो।
यह रसखानि दिना द्वै मै बात फैलि जैहै,
कहाँ लौ सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो।
आजु हौ निहार्यो बीर निपट कलिन्दी-तीर,
दोउन को दोउन सो मुरि मुस्काइबो।
दोउ परै पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैया, उन्हैं
भूलि गई गैया इन्हैं गागर उचाइबो।'

सवैया

मजु मनोहर मूरि लखै तबही सबही पतही तज दीनी।
प्राण पखेरू परे तलफै वह रूप के जाल मैं आस अधीनी।।
आँख सो आख लडी जबही तब सो ये रहै अँसुवा रँग भीनी।
या रसखानि अधीन भई सब गोप लली तजि लाज नवीनी।।१४२।।

शब्दार्थ—मजु=सुन्दर। मूरि=मूल। पतही=प्रतिष्ठा को, पत्तो को।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! उस कृष्ण-रूपी सुन्दर और मनोहर मूल को देखकर सभी गोपियो न अपनी प्रतिष्ठा रूपी पत्तो को छोड दिया है, इसी कारण उनके प्राण-रूपी पक्षी रूप रूपी जाल म पडे हुए तडप रहे हैं और जीवन की आशा उसक अधीन हो गई है, अर्थात् गोपियो को जिलाना और मारना कृष्ण के हाथ मे आ गया है। जब स कृष्ण की आँखो से गोपियो की आँखें मिली है, तभी से ये आँखें निरन्तर आँसुओ से भरी रहती है। सारी युवती गोप-कन्यायें अपनी लज्जा को छोडकर आनन्द-सागर कृष्ण के अधीन हो गई हैं।

सवैया

नन्द को नन्दन है दुखकन्दन प्रेम के फन्दन बाँधि लई हौं।
एक दिना ब्रजराज के मन्दिर मेरी अली इक बार गई हौं॥
हेर्‌यो लला लचकाइ कै मोतन जोहन की चकडोर भई हौं।
दौरी फिरौं दृग डोरनि मैं हिय मैं अनुराग की बेलि बई हौं॥१४३॥

शब्दार्थ—दुखकन्दन=दुख देने वाला। जोहन की=देखन की। चकडोर=चकई नाम के खिलौने की डोर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रेम के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण बहुत दुख देने वाले हैं। उन्होंने मुझे भी अपने प्रेम के बन्धन में बाँध लिया है। एक दिन मैं कृष्ण के मन्दिर में गई थी, और उस दिन प्रथम बार ही मैं वहाँ गई थी कि कृष्ण ने लचका कर मेरी ओर देखा, मैं तो उनकी दृष्टि के लिए चकई की डोर ही बन गई, अर्थात् जिस प्रकार चकई पर डोर बार बार लिपट जाती है उसी प्रकार वे मुझे बार बार देखते रहे। तभी से मैं आँख की चकडोर से चकई की भाँति दौड़ी फिर रही हूँ और मेरे हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम की बेल फूट निकली है।

विशेष—१ दुखकन्दन' का लाक्षणिक प्रयोग है।

२ 'हेर्‌यो लला लचकाइ कै मोतन, में शारीरिक प्रेम की ओर संकेत है।

३ रूपक अलंकार।

सवैया

तीरथ भीर में भूलि परी अली छूट गई नकु धाय की बाँही।
हौं भटकी भटकी निकसी सु कुटुम्ब जसोमति की जिहि घाँही।
देखत ही रसखान मनौ सु लग्यौ ही रह्यौ कब को हियराँही।
भाँति अनेकन भूली हुती उहि द्यौस की भूलनि भूलत नाँही॥१४४॥

शब्दार्थ—अली=सखी। धाय=धात्री, पालन पोषण करने वाली। घाँही=स्थान, घर। हियराँही=हृदय में। द्यौस=दिन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मैं अकस्मात् भूलकर तीर्थ-यात्रियों की भीड़ में जा घुसी और धात्री की बाँह मेरे हाथ से छूट गई। मैं भटकती हुई उस ओर जा निकली, जहाँ यशोदा जी का घर (डेरा) था। मुझे देखते ही आनन्द सागर कृष्ण मेरे हृदय में इस प्रकार लग गया जैसे वह न जाने कब का इस हृदय से लगा हुआ

था। मैं अनेक प्रकार की भूल कर चुकी थी, जिन्हें मैं भूल गई, पर उस दिन जो भूल कृष्ण-मिलन का कारण हुई थी, वह भुलाए नही भूली जाती।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रंथावली' मे नही है।

सवैया

समुझै न कछू अजहूँ हरि सो ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै।
नित सास की सीरी उसासनि सौं दिन ही दिन माइ की काति नसै।
चहूँ ओर बवा की सौं सोर सुनै मन मेरेऊ आवति री सकसै।
पै कहा करौं वा रसखानि बिलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ॥१४५॥

शब्दार्थ—सोर=बदनामी। सकसै=उलझ। हुलसै=प्रसन्न होना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अन्य गोपी के आकर्षण को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखी! वह आज भी कुछ नही समझती, वरन् कृष्ण को देखकर ब्रज मे आँखें नचा-नचाकर हँसने लगती है। नित्य सासु की ठडी साँसो से उस गोपी की काति दिन-दिन क्षीण होती जा रही है। मैं बाबा की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि चारो ओर उसकी बदनामी को सुनकर मेरे मन मे उलझन पैदा हो गई है। लेकिन क्या करूँ, उस आनन्द-सागर कृष्ण को देखकर उसका हृदय बार-बार हुलसने लगता है, अर्थात् वह अपनी बदनामी की चिन्ता न करके बराबर कृष्ण मे अनुरक्त है।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे 'हुलसै' शब्द की आवृत्ति भावो मे तथा प्रभाव मे अभिवृद्धि का कारण है।

सवैया

मारग रोकि रह्यौ रसखानि के कान परी झनकार नई है।
लोग चितै चित दै चितए नख तै मन माँहि निहाल भई है।
ठोढ़ी उठाइ चितै मुसकाइ मिलाइ कै नैन लगाइ लई है।
जो बिछिया बजनी सजनी हम मोल लई पुनि बेचि दई है ॥१४६॥

शब्दार्थ—नख तें=नख से शिख तक, पूर्ण रूप से। निहाल=प्रसन्न। बिछिया=पैर का एक आभूषण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! आनन्द-सागर कृष्ण ने राधा का मार्ग रोका और उसके कानो मे एक नवीन झकार पड़ी।

उस झंकार को लोगों ने चित्तपूर्वक सुना और राधा भी उसकी झंकार सुनकर पूर्ण रूप से प्रसन्न हो गई। कृष्ण ने उसकी ठोढ़ी उठाकर देखा और उसकी ओर मुस्कराये तथा उन दोनों के नेत्रों से नेत्र मिले। हे सजनी! जो बजने वाली बिछिया हमने खरीदी थी, अर्थात् हमारी क्रीतदासी थी, उसीने हमें कृष्ण के हाथ बेच डाला। अर्थात् उसी की ध्वनि सुनकर कृष्ण हमारे पास आते रहे और हमारा प्रेम अगाढ होता रहा।

सवैया

जमुना-तट वीर गई जब तें तब तें जग के मन मांझ तहौं।
ब्रज मोहन गोहन लागि भटू हौं लटू भई लूट सी लाख लहौं।
रसखान लला ललचाय रहे गति आपनी हौं कहि कासों कहौं।
जिय आवत यों अबतों सब भाँति निसंक ह्वै अंक लगाय रहौं ॥१४७॥

शब्दार्थ—वीर=सखी। तहौं=जलती हूँ, ईर्ष्या का कारण बन गई हूँ। गोहन=साथ। भटू=सखी। लटू भई=मुग्ध हो गई। लूट सी लाख लहौं=लाखों की सम्पत्ति (प्रेम-सम्पदा) लूट में प्राप्त कर ली। अंक=हृदय।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! जब से मैं यमुना-तट पर गई हूँ और वहां कृष्ण से मिलन हुआ है, तब से सारा संसार मुझ से ईर्ष्या करने लगा है। हे सखि! मैं कृष्ण के साथ रहकर इतनी मुग्ध हो गई कि लाखों की प्रेम-सम्पत्ति मुझे लूट में ही मिल गई। तब से आनन्द-सागर कृष्ण मुझे अपनी ओर इतना अधिक आकृष्ट कर रहे है कि मैं अपनी इस अवस्था का वर्णन किसी से भी नहीं कर सकती। अब तो मेरे मन में यही आता है कि मैं संसार के और समाज के सारे बन्धनों को छोड़कर तथा निर्भय होकर कृष्ण के हृदय से लगी रहूँ।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रंथावली' में नहीं है।

सवैया

औचक दृष्टि परे कहूँ कान्ह जू तासों कहै ननदी अनुरागी।
सो सुनि सास रही मुख मोहि जिठानी फिरै जिय मैं रिस पागी।
नीके निहारि कै देखे न आंखिन हौं कबहूँ भरि नैन न जागी।
मो पछितावो यहै जु सखी कि कलंक लग्यो पर अंक न लागी ॥१४८॥

शब्दार्थ—औचक=अचानक । अनुरागी=प्रेमिका । रिस=क्रोध । भरि नैन न जागी=आंखों मे छवि भरकर जागने का अवसर भी नही मिला। अक=हृदय ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! अचानक ही कृष्ण मुझे दिखाई पड गये और मैं उन्हे देखने लगी। इसी पर ननद ने मेरी यह बदनामी फैला दी कि मैं कृष्ण मे अनुरक्त हूँ और उनकी प्रेमिका हूँ। इस बदनामी को सुनकर सासु ने मुझ से मुँह मोड लिया है और जिठानी क्रोध मे भर कर फिर रही है। हे सखि ! तू अच्छी प्रकार से मेरी आंखो मे झाँक कर देख, तब तुझे पता चलेगा कि मैं कभी भी इन आंखो मे कृष्ण के रूप की छवि भरकर नही जागी हूँ। हे सखि ! मुझे केवल यही पछतावा है कि कृष्ण-प्रेम का मुझे कलक तो लग गया है, पर मैं कभी भी उसके हृदय से नही लग पाई हूँ।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे यमक अलकार।

तुलना—'लागे कलकहुँ अक लग नहिं तो सखि भूल हमारी महा है।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

सास की सास नही चलिबो चलियै निसिद्यौस चलावै जिही ढग।
आली चबाव लुगाइन के डर जाति नही न नदी ननदी-सग।
भावती औ अनभावती भीर मैं छ्वै न गयो कवहूँ अग सो अग।
घैरु करै घरहाई सबै रसखानि सौ मो सौ कहा कै भयो रग ॥१४६॥

शब्दार्थ -सासनही=आदश के अनुसार । निसिद्यौस=रात दिन । चबाव=बदनामी की चर्चा। भावती=प्रिय । अनभावती=अप्रिय। घैरु=बदनामी। घरहाई=बदनाम करने वाली स्त्रियाँ। रग=प्रेम।

अर्थ – कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का उल्लेख करते हुए कहती है कि यद्यपि मैं सासु के आदश के अनुसार ही चलती हूँ। वह रात दिन जिस प्रकार चलाती है, उसी प्रकार चलती हूँ, अर्थात् हर प्रकार से प्रत्येक समय उसकी आज्ञा का पालन करती हूँ। अन्य नारियो के द्वारा बदनामी की चर्चा के डर से मैं अपनी ननदी के साथ नदी के किनारे भी नही जाती। प्रिय तथा अप्रिय भीड मे भी मेरा शरीर कभी भी उसके शरीर से छुआ नही है। फिर भी बदनाम करने वाली सभी स्त्रियाँ मेरी बदनामी

करती हैं। आनन्द-सागर कृष्ण के साथ मेरा प्रेम क्या हुआ मानो एक आफत ही मैंने मोल ले ली।

विशेष—इन पक्तियों मे प्रेमिका गोपी का भोलापन अंकित है।

सवैया

घर हीं घर घैरु घनो घरिही घरिहाइनि आगें न साँस भरौं।
लखि मेरियै ओर रिसाहिं सबै सतराहिं जौं सौं हैं अनेक करौं।
रसखानि तो काज सबै ब्रज तौ रा मेवैरी भयौ नहिं कासों लरौं।
बिनु देखे न क्यों हूँ निमेषै लगैं तरे लेखें न हूं या परेखें मरौं ॥१५०॥

शब्दार्थ—घरही घर=प्रत्येक घर मे। घैरु=बदनामी की चर्चा। घरिही=घडी भर मे ही। घरिहाइनि=बदनामी करने वाली। सौंहैं= सौगंध। तो काज=तेरे कारण। निमेषै=पलक। परेखें=पछतावे।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से अपनी विवश स्थिति का वर्णन करती हुई कहती हैं कि तुम्हारे प्रेम के कारण प्रत्येक घर में घडी भर मे ही मेरी बहुत अधिक बदनामी फैल गई है जिसके कारण मैं बदनाम करने वाली स्त्रियों के सामने साँस भी नही भर सकती। यदि मैं अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अनेक सौगन्ध खाती हूँ तो वे भृकुटी चढाकर तथा मेरी ओर देखकर क्रोध करती हैं। हे आनन्द-सागर कृष्ण। तेरे कारण सारा ब्रज मेरा शत्रु बन गया है। तुम्ही बताओ अब मैं किस-किस से लडती फिरूँ। तुम्हारे देखे बिना और तुम्हे देखते समय मेरी पलक नही लगती, अर्थात् न तो मुझे तुम्हारे वियोग मे चैन है और न तुम्हारे मिलन मे। इसी पछतावे मे मैं मर रही हूँ।

विशेष—१ प्रेमजन्य विवश स्थिति का मार्मिक वर्णन है।
२ प्रथम पंक्ति मे अनुप्रास और यमक का सुंदर प्रयोग है।
३ अंतिम पंक्ति मे विरोधाभास अलंकार ने भावों के प्रभाव को द्विगुणित कर दिया है।

तुलना—१. 'देखे निरमोही के बिस म सुख' ताहि पिय,
लगे नाहि तर मु परस माहि मरिय।

—प्रेम मानस

२ 'सबही सहौं नाहिं कहौं कछु पै
तुव लगे नहीं या परम मरौं।'

—हरिचन्द्र

दोहा

स्याम सघन घन घेरि कैं, रस बरस्यौ रसखानि ।
भई दिवानी पानि करि, प्रेम-मद्य मन मानि ॥१५१॥

शब्दार्थ—स्याम=काला, कृष्ण । सघन=गहन, प्रेमपूर्ण । रस=जल, आनन्द । दिमानी=दिवानी । पानि करि=पीकर । प्रेम-मद्य=प्रेम रूपी शराब । मन मानि=छिककर, पूर्ण तृप्त होकर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! गहन बादल रूपी प्रेमपूर्ण श्याम कृष्ण ने मेरे ऊपर जल रूपी आनन्द की वर्षा की और मैंने छिककर प्रेम रूपी शराब पी । उस शराब को पीकर मैं कृष्ण दिवानी हो गई ।

भाव यह है कि मैं कृष्ण के प्रेम में मदोन्मत्त बन गई हूँ ।

विशेष—श्लेष और रूपक अलंकार ।

सवैया

कोउ रिझावन को रसखानि कहै मुकतानि सों माँग भरौंगी ।
कोऊ कहै गहनो अंग-अंग दुकूल सुगन्ध पर्यौ पहिरौंगी ॥
तूँ न कहै न कहैं तौ कहौं हौं कहूँ न कहौ तेरे पाँय परौंगी ।
देखहि तूँ यह फूल की माल जसोमति-लाल निहाल करौंगी ॥१५२॥

शब्दार्थ—मुकतानि सों=मोतियों से । दुकूल=वस्त्र । निहाल=प्रसन्न ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि । आनन्द-सागर कृष्ण को रिझाने के लिए कोई गोपी तो यह कहती है कि मैं अपनी भौंहों में मोतियों को पिरोऊँगी, कोई कहती है कि मैं अपने अंग-अंग पर आभूषण पहनूँगी और कोई कहती है कि मैं अपने वस्त्रों को सुन्दर एवं मादक गन्ध से परिपूर्ण कर लूँगी । यदि तू किसी से मेरी बात न बताये और इस बात का वचन दे तो मैं तुझे बताये देती हूँ कि मैं तो इस फूल-माला से ही यशोदा-पुत्र कृष्ण को प्रसन्न कर लूँगी ।

कहने का भाव यह है कि कृष्ण को फूल-माला ही सर्वोत्तम प्रिय है, किन्तु इस बात को अन्य गोपियाँ नहीं जानतीं ।

विशेष—तृतीय पंक्ति में शब्द-योजना अनुपम है ।

सवैया

प्यारी पै जाइ किती परि पाइ पची समभाइ सखी की सौं बैना।
बारक नन्दकिशोर की ओर कह्यौ दृग छोर की कोर करै ना।
ह्वै निकस्यौ रसखान कहूँ उन डीठ पर्यौ पियरो उपरैना।
जीव सो पाय गई पचिबाय कियौ रुचि नेह गये लचि नैना ॥१५३॥

शब्दार्थ—किती=कितना ही। परि पाउ=पैरो मे पडकर। पची समझाई=समभाकर थक गई। सौं=सौगन्ध। बारक=एक बार। डीठि पर्यौ=दिखाई दिया। पियरो=पीला। उपरैना=वस्त्र। पचिबाय=बात रोग शान्त हुआ। गये लचि नैना=नेत्र लज्जा के कारण झुक गये।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति आकृष्ट किसी अन्य गोपी की प्रेम-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैंने अपनी उस प्रिय सखी के पास जाकर और उसके पैरो मे पडकर यह बात इतनी बार कही कि मैं समझाते-समझाते थक गई। मैंने उससे कहा कि एक बार भी तुम कृष्ण की ओर अपनी आँखो की पलकें न उठाना। परन्तु उसकी विवशता यह है कि जब भी कृष्ण बाहर निकलते हैं और उनके पीले वस्त्र पर उसकी दृष्टि पडती है, तभी उसमें नवीन जीवन का-सा सचार होता हो, उसका बात रोग शान्त हो जाता है वह कृष्ण के प्रति मनोहर प्रेम का प्रदर्शन करने लगती है और इसी कारण लज्जा से उसके नेन झुक जाते हैं।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

सखियाँ मनुहारि कै हारि रही भृकुटी को न छोर लली नचयौ।
चहुँधा घन घोर नयौ उनयौ नभ नायक ओर चितै चितयौ।
बिकि आप गई हिय मोल लियौ रसखान हितू न हियौ रिझयौ।
सिगरो दुख तीछन कोटि कटाछन काटि कै सौतिन बाँटि दियौ ॥१५४॥

शब्दार्थ—मनुहारि कै=अनुनय-विनय करके। नचयौ=नीचा किया। उनयौ=घिर आया। नायक=श्रीकृष्ण से तात्पर्य है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से किसी अन्य मानवती गोपी का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! सारी सखियाँ उस मानवती गोपी की

अनुनय-विनय करती हुई थक गई, पर उनके क्रोध मे, तनिक भी अन्तर नहीं आया। अचानक चारो ओर से आकाश मे नवीन घन घिर आया। इस उद्दीपक वातावरण के कारण उस गोपी का ध्यान कृष्ण की ओर गया। वह स्वय ही बिक गई और उसके प्रियतम कृष्ण ने उसे मोल ले लिया, अर्थात् वह पूर्णतया उनके वश मे हो गई। इस प्रकार कृष्ण ने अन्य प्रेमिकाओ के हृदय को रिझा लिया। तब उस मानवती गोपी ने अपना मारा दुख अपने तीक्ष्ण कटाक्षों के द्वारा दूर करके अपनी सौतो मे बाँट दिया, अर्थात् उसे कृष्ण के साथ देखकर अन्य सपत्नी गोपियो को दुख हुआ।

विशेष—१ प्रहर्षण अलकार।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' मे नही है।

सवैया

खेलै अलीजन के गन मैं उत प्रीतम प्यारे सो नेह नवीनो।
बैननि बोध करै इत कौं उत सैननि मोहन को मन लीनो।
नैननि की चलिबी कछु जानि सखी रसखानि चितैबे कौं कीनो।
जा लखि पाइ जमाइ गई चुटकी चटकाइ बिदा करि दीनो ॥१५५॥

शब्दार्थ—अलीजन=सखियो का समूह। बैननि=वचनो से। चलिबी=चलना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी मे किसी क्रियाविदग्धा गोपी का वर्णन करती हुई कहती है कि वह सखियो के समूह मे खेल रही है, पर उस ओर प्रियतम कृष्ण के साथ उसका नवीन अनुराग हुआ था। वह वचनो से तो इस ओर का बोध करा रही थी परन्तु सैना से उस ओर चलने का सकेत करके कृष्ण के मन को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। हे सखि! उसकी आँखो को चलता हुआ देखकर आनन्द सागर कृष्ण ने उसकी ओर ध्यान दिया। कृष्ण को अपनी ओर आकर्षित देखकर उसने जँभाई ली और चुटकी बजाकर उसे विदा किया, अर्थात् सकेत से ही अभिसार-स्थल को बता दिया।

विशेष—जो नायिका चातुर्य से कार्य करके अपनी इच्छा को पूर्ण करने मे—नायक को सकेत स्थल पर ले जाने मे—सफल होती है, उसे क्रियाविदग्धा कहते हैं।

तुलना—'१ कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे मौन मे करत है नयन ही सो बात ॥'

२ नैनन चलनु सुनि पलनु में ग्रँसुवा झलके ग्राइ।
भई लखाइ न सखिनु हूँ झूठैं ही जमुहाइ॥

—*बिहारी*

सवैया

माहन के मन भाइ गयौ इक भाइ सा ग्वालिनै गोधन गायौ।
ताका लग्यौ चट चौहट सो दुरि ग्रौचक गात सो गात छुवायौ॥
रसखानि लही इनि चातुरता चुपचाप रही जब लौं घर ग्रायौ।
नैन नचाइ चितै मुसकाइ सु ग्रोट ह्वै जाइ ग्रँगूठा दिखायौ॥१५६॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत। चट=मन। ग्रौचक=ग्रचानक।

ग्रर्थ—कोई गोपी ग्रपनी सखी से प्रेमलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि जब ग्वालिन ने मधुर स्वर से गोचारण का गीत गाया तो वह कृष्ण को बहुत ग्रच्छा लगा ग्रौर साथ ही गाने वाली गोपी के प्रति ग्राकृष्ट हो गये। ग्वालिन ने ग्रचानक लज्जा के कारण ग्रपना शरीर ग्रपने शरीर में छिपा लिया ग्रर्थात् वह लज्जा के कारण सिमट गई। रसखान कहते हैं कि उसने इतनी चतुरता से कार्य किया कि जब तक उसका घर नहीं ग्राया तब तक तो वह चुपचाप रही ग्रौर जब उसका घर ग्रा गया तो वह ग्राँखें नचाकर मुस्कराकर ग्रौर ग्रोट में होकर कृष्ण को ग्रँगूठा दिखाकर ग्रपने घर में घुस गई।

विशेष—ग्रनुभावों की सुन्दर योजना है।

सवैया

कान परे मृदु बैन मरु करि मौन रही पल ग्राधिक साधे।
नंद बबा घर को ग्रकुलाय गई दधि नैं बिरहानल दाधे।
पाय दुहूननि प्राननि प्रान सो लाज दबै चितवै दृग ग्राधे।
नैननि ही रसखान सनेह सही कियौ लेउ दही कहि राधे॥१५७॥

शब्दार्थ—मरु करि=कठिनाई से। ग्राधिक=ग्राधा। बिरहानल दाधे=विरह की ग्राग से दग्ध होकर। दबै=भयभीत होकर। चितवै=देखना।

ग्रर्थ—कोई गोपी ग्रपनी सखी से राधा के प्रेम की ग्राकुलता का वर्णन करती हुई कहती है कि जब राधा के कान में कृष्ण के सुन्दर शब्द पड़े तो

वह कठिनता से आधे पल तक तो चुपचाप रही, फिर अकुलाकर और विरह की आग से दग्ध होकर नद बाबा के घर गई। वहाँ पर उसे कृष्ण मिले। वे दोनों एक-दूसरे को अपने प्राणों के समान प्यार करते थे। दोनों ने एक-दूसरे को आधी दृष्टि से देखा और फिर वे लज्जा के कारण भयभीत हो गये। इस प्रकार उन दोनों ने अपना प्रेम आँखों के द्वारा ही पक्का कर लिया। तब 'दही लो' राधा ने यह आवाज लगानी शुरू कर दी।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

केसरिया पट, केसरि खौर, बनो गर गुंज को हार ढरारो।
को हौ जू आपनी या छवि सों जु खरे अँगना प्रति डीठि न डारो।
आनि बिकाऊ से होइ रहे रसखानि कहै तुम्ह रोकि दुवारो।
हैं तो बिकाऊं जो लेत बनै हँसबोल तिहारो है मोल हमारो' ॥१५८॥

शब्दार्थ—पट=वस्त्र। खौर=तिलक। ढरारो=सुंदर। अँगना=नारी। हँसबोल=हँस कर बातें करना।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह केसरिया रंग के वस्त्र धारण किए हुए हैं मस्तक पर केसरी रंग का तिलक लगा हुआ है, गले में गुंजों का सुन्दर हार पहने हुए हैं। इस व्रज में कौन ऐसी नारी है जो इस शोभा को देखकर इस पर अपनी दृष्टि नहीं डालेगी, अर्थात् सभी नारियाँ इस शोभा को देखे बिना नहीं रह सकेंगी। यदि तुम्हारा द्वार रोककर वह तुमसे यह कहे कि मैं बिकने के लिए हूँ और मेरा मूल्य तुम्हारा हँसकर बात करना है तो तुम भी अन्य जैसी हो जाओगी, अर्थात् अपनी सुधि बुधि भूलकर उनके सामने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दोगी।

सवैया

एक समय इक ग्वालिनि को ब्रजजीवन खेलत दृष्टि परयो है।
बाल प्रवीन सकै करि कै सरकाइ कै चीरन चीर धरयो है॥
यों रस ही रस ही रसखानि सखी अपनो मन भायो कर्यो है।
नंद के लाडिल ढाँकि दै सीस इहा हमरो बरु हाथ भर्यो है ॥१५९॥

शब्दार्थ—ब्रजजीवन=कृष्ण। सकै करि कै=बलपूर्वक।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से मिलन लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! एक समय एक गोपी ने कृष्ण को खेलते हुए देखा। वह बाला थी और कृष्ण चतुर थे अतः कृष्ण ने बलपूर्वक अपने सिर से मोर मुकुट उतार कर उसके सिर पर रख दिया। हे सखि ! इस प्रकार कृष्ण ने आनन्द पूर्वक अपनी मनोकामना पूर्ण की। तब उस गोपी ने कहा—हे नन्द के प्रिय पुत्र हमारा सिर ढँक दो क्योंकि हमारा हाथ तो खाली नहीं है अतः हम स्वयं अपना सिर ढँकने में असमर्थ हैं।

पाठांतर—इस सवैया की दूसरी पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—
वा न प्रवीन प्रवीनता कै सरकाय कांध लै चीर धरयौ है।

सवैया

मैं रसखान की खेलनि जीति कै मालती माल उतार लई री।
मेरीये जानि कै सूधि सबै चुप ह्वै रहीं काहु करी न खई री।
भावते स्वेद की बास सखी ननदी पहिचानि प्रचंड भई री।
मैं लखिवौ लखि कै अँखियाँ मुसकाय लचाय नचाय दई री ॥१६०॥

शब्दार्थ—खेलनि जीति कै=खेल में जीत कर। मेरीयं=मेरी ही है। सूधि=भोली। खई=झगडा। भावत=प्रेम के। स्वेद=पसीना। प्रचंड=अत्यन्त क्रुद्ध।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! मैंने खेल में आनन्द-सागर कृष्ण को जीत कर उसकी मालती की माला लेकर स्वयं पहन ली। मेरी भोली सखियों ने यह समझकर कि यह माला मेरी ही है मुझसे कोई झगड़ा नहीं किया अर्थात् किसी प्रकार के व्यंग्य नहीं कसे। उस माला में से प्रेम-पसीने की सुगंधि की पहिचान कर मेरी ननद मुझ पर अत्यन्त क्रुद्ध हुई। तब मैंने हँसकर आँखों को नीचा करके और नचाकर अर्थात् अपनी आँखों से अपने प्रेम भाव को सूचित करके वह माला मैंने उन्हें ही वापिस कर दी।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रंथावली में नहीं है।

सवैया

वृषभान के गेह दिवारी के द्यौस अहीर अहीरनि भीर भई।
जितही तितही धुनि गोधन की सब ही ब्रज ह्वै रह्यौ राग मई॥

रसखान तबै हरि राधिका यो कछु सैननि ही रस बेल बई।
उहि अंजन आखिनि आंज्यो भटू इन कुकुम आड लिलार दई ॥१६१॥

शब्दार्थ—द्यौस=दिन। राग मई=रागपूर्ण, प्रेमानन्द म परिपूर्ण। बई=उत्पन हुई। उहि=कृष्ण ने। भटू=सखी। आड=तिलक। लिलार=मस्तक।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वृषभानु के घर दिवाली के दिन अहीर और अहीरनियो की भारी भीड हुई। सब ओर से गोचारण के गीत गाये जा रहे थे जिनके कारण समूचा व्रज प्रेमान्द स परिपूर्ण हो रहा था। उसी समय कृष्ण और राधा के मध्य नयो के कुछ ऐसे सकेत हुए जिनके कारण उनके हृदया मे आनन्द दन वाली प्रेम-बलि उत्पन्न हुई। अपने प्रेम को साकेतिक रूप स प्रकट करने के लिए कृष्ण ने अपनी आँखो म अजन लगाया और राधा ने अपने मस्तक पर कुकुम का तिलक लगाया। अजन लगा कर कृष्ण न सकेत से राधा को यह बताया कि मैं तुम्हे अजन की भाति सदैव अपनी आँखो मे रखूँगा, और तिलक लगाकर राधा न यह प्रकट किया कि तुम्हारे कारण ही मेरा सौभाग्य बना रहगा।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रथावली' म नही है।

सवैया

बात सुनी न कहूँ हरि की न कहूँ हरि सो मुख बोल हँसी है।
काल्हि ही गोरस बेचन कौं निकसी व्रजवासिनि बीच लसी है॥
आजु ही बारक 'लहु दही' कहि कै कछु नैनन मैं बिहसी है।
बैरिनि वाहि भई मुसकानि जु वा रसखानि के प्रान बसी है ॥१६२॥

शब्दार्थ—काल्हि ही=कल ही। गोरस=दही। लसी=सुशोभित होगा। बारक=एक बार।

अर्थ—कृष्ण प्रेम म व्याकुल किसी गोपी का वर्णन एक गोपी अपनी सखी से करती हुई कहती है कि ह सखि! उसने तो कभी कृष्ण की बात भी नही सुनी, न कभी उसने हँसकर कृष्ण मे बातें की हैं। यह तो कल ही दही बेचने के लिए निकली थी और व्रजवासियो के मध्य सुशोभित हो रही थी। आज

ही वह एक बार यह वह वर कि दही लग्रा वह ग्राखा ही ग्रांखो म कुछ मुसकरा दी थी। उसकी वही मुसकराहट उसके लिए वैरिन बन गई और वह ग्रानन्द-सागर कृष्ण के प्राणा म बस गई ग्रर्थात् कृष्ण उस पर मुग्ध हो गये।

सवैया

ग्वानिन द्वै क सुजान गहे रसखानि कौं लाई जसोमति पाहैं।
लूटत हैं वहैं य बन मैं मन मैं कहैं य सुख-लूट कहाँ है॥
ग्रग हा ग्रग ज्यौं ज्यौं ही लगै त्यौं त्यौं ही न ग्रग ही ग्रग समाहैं।
व पछलै उलटैं पग एक तो वे पछल उलटैं पग जाहैं॥१६३॥

शब्दार्थ—पाहैं=पास। न ग्रग ही ग्रग समाहैं=ग्रपन ग्रगा म नही समाती हैं ग्रर्थात् ग्रत्यन्त प्रसन्न होती हैं।

ग्रर्थ—दो एक ग्वालिनें कृष्ण को वाहा स पकडकर यशोदा जी के पास ल गई ग्रौर उनस कृष्ण की शिकायत करने लगीं कि इनस पूछो कि य बन म ग्रौर मन म हम लूटत हैं। भला इनस इनको क्या सुख मिलता है? हमारे ग्रग स ज्यो ज्या इनका शरीर छूता है तो ऐस ग्रानन्द का ग्रनुभव होता है कि हम ग्रपन ग्रगा म ही नहीं समाती, ग्रर्थात् ग्रत्यन्त प्रसन्न होती हैं। गोपियाँ यदि एक पग लौटती हैं तो य लौटकर उनके माग को घर लत हैं।

विशेष—उपालम्भ क माध्यम स कृष्ण क प्रति गोपियो क ग्रमित प्रेम का वणन है।

पर चढ़कर उसकी सासु ने उसे आकर पुकारा। इस भय से कि कहीं सासु ने उन्हें देख तो नहीं लिया है, वह कोमलांगी भय के मारे सूख गई, उसका हृदय धड़कने लगा। उसकी भयग्रस्त दशा को देखकर उसकी सखी ने आँखों के इशारे से ही बता दिया कि कृष्ण चला गया है, अतः डरने की कोई बात नहीं है।

पाठान्तर—इस सवैया की द्वितीय पंक्ति इस प्रकार भी मिलती है—

'चित्त कहूँ चितवै किनहूँ चित चोर सो चाहि करै चख चारी।'

तुलना—'ताही समै औचक ही चढ़ि परवारी 'सेख'
भासु आनि अनजानि नीचे ते पुकारिये।
मूरछि मृगाछी गिरी हियो हनि हाथनि सों।
नैनन सों कह्यौ हा हा स्याम जू सिधारिये॥'

—शेख आलम

दोहा

बंक बिलोकनि हसनि मुरि, मधुर बैन रसखानि।
मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिये रसखानि॥ १६५॥

शब्दार्थ—बंक बिलोकनि=वक्र दृष्टि। हरखि=हर्षित होकर।

अर्थ—मिलन का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि वक्र दृष्टि से मुड़कर हँसते हुए और मधुर वचन बोलते हुए आनन्द सागर कृष्ण हृदय में हर्षित होकर राधा से इस प्रकार मिले मानो रसिक और रसराज दोनों मिल गये हों।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

प्रेम-वेदना

सवैया

वह गोधन गावत गोधन मैं जब तें इहि मारग ह्वै निकस्यौ।
तब तें कुलकानि कितीय करौ यह पापी हियो हुलस्यौ हुलस्यौ॥
अब तौ जु भई सु भई नहि होत है लोग अजान हँस्यौ सुहँस्यौ।
कोउ पीर न जानत जानत सो तिनके हिय मैं रसखानि बस्यौ॥१६६॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत। गोधन मैं=गऊओं के समूह में। कितीय करौ=कितना ही करे, कितना ही रोके।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने आकर्षण की व्यथा प्रकट करती हुई कहती है कि जब से कृष्ण गोचारण के गीत गाता हुआ गौओं के समूह के साथ इस मार्ग से निकला है तब से यह कुल की मर्यादा चाहे जितना रोकना है पर यह पापी हृदय बार बार डुला रहा है। अब तो जो हुआ गया है, सो हो गया है वह टल नहीं सकता चाहे अज्ञानी लोग कितना ही मुझ पर हँसें मेरे हृदय की वेदना को कोई नहीं जानता केवल वही जान सकता है जिसके हृदय में आनन्द सागर कृष्ण बसा हुआ है अर्थात् जिसे कृष्ण से प्रेम है।

विशेष—प्रथम पंक्ति में यमक अलंकार है।

सवैया

वा मुसकान पै प्रान दियौ जिय जान दियौ वहि तान पै प्यारी।
मान दियौ मन मानिक के संग वा मुख मंजु पै जोबनवारी॥
वा तन कौं रसखानि पै री तन ताहि दियौ नहिं ध्यान बिचारी।
सो मुँह मोरि करी अब का हहा लाल लै आज समाज में ख्वारी॥१६७॥

शब्दार्थ—मंजु=सुन्दर। मान=मर्यादा। ख्वारी=बदनामी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैंने कृष्ण की मुस्कराहट पर अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया था। उसकी मधुर बाँसुरी की तान पर अपने जी को न्योछावर कर दिया था। अपने मन रूपी मोती के साथ ही मैंने अपना सम्मान भी उन्हें सौंप दिया था अर्थात् प्रेम के कारण जो बदनामी होगी उसकी भी मैंने तनिक भी चिन्ता नहीं की थी। उसके सुन्दर मुख पर मैंने अपने यौवन को न्योछावर कर दिया था। उसके शरीर पर मैंने अपना शरीर वार दिया था। इस आत्म समर्पण में मैंने अपनी कुल मर्यादा का भी विचार नहीं किया था। जिस कृष्ण के लिए समाज में मेरी बदनामी हुई है वह कृष्ण अब मुझसे मुँह मोड़कर चला गया है। यह बड़े ही दुख की बात है।

विशेष—रूपक अलंकार।

सवैया

मोहन सो अटक्यौ मनु री कल जाते पर सोई क्यौं न बतावै।
व्याकुलता निरखे बिन मूरति भागति भूख न भूषन भावै॥

देखे तें नेकु सम्हार रहै न तबै झुकि के लखि लोग लजावैं ।
चैन नही रसखानि दुहूँ विधि भूली सबै न कछू बनि श्रावैं ॥ १६८॥

शब्दार्थ—कल जातें परै=जिससे सुख हो । नेकु=तनिक ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मेरा मन कृष्ण से लग गया है जिसके कारण मैं सर्दव व्याकुल रहती हूँ । मेरी यह व्याकुलता नष्ट हो और मुझे सुख मिले, ऐसी विधि मुझे कोई नही बताता । कृष्ण की मूर्ति को देखे बिना मुझे व्याकुलता रहती है । भूख भाग जाती है अर्थात् कुछ भी खाने को मन नही करता और न आभूषण ही मुझे अच्छे लगते हैं । किन्तु जब मैं उन्हें देख लेती हूँ तो अपने को तनिक भी नही सँभाल पाती, तब उसके सामने मुझे झुकी देखकर लोग मुझे लज्जित करते हैं । रसखान कहते हैं कि मुझे दोनो प्रकार से चैन नहीं है । उनके देखने पर और न देखने पर मैं सब कुछ भूल जाती हूँ और उस समय मुझे कोई उपाय नही सूझता ।

सवैया

भई बावरी ढँढति काहि तिया श्ररी लाल ही लाल भयौ कहा तेरो ।
ग्रीवा ते छूटि गयौ अबही रसखानि तज्यौ घर मारग हेरो ॥
डरियै कहै माय हमारी बुरी हिय नेकु न सूनो सहै छिन मेरो ।
काहे को खाइबो जाइबो है सजनी अनखाइबो सीस सहेरो ॥ १६६ ॥

शब्दार्थ—लाल=रत्न । लाल=कृष्ण । ग्रीवा=गर्दन, हृदय । माय=सासु । अनखाइबो=डाँट-फटकार । सहेरो=सहना ही पडेगी ।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के विरह मे पागल सी हो गई है । उसकी सखी उससे उस स्थिति का कारण पूछती है तो वह कुशलता से और बातें उसे बताती है । दूसरी सखी पूछती है कि हे सखि ! तुम पागल सी बनकर किसको ढूँढ रही हो ? वह उत्तर देती है—मेरे हार का रत्न टूट कर गिर गया है । वह अभी अभी मेरी गर्दन से छूट कर गिर गया है । मैंने घर तक का मार्ग ढूँढ लिया है, लेकिन वह मिला ही नही । यह सुन कर उसकी सखी कहती है—तब इसमे डरने की क्या बात है ? वह उत्तर देती है—मेरी सासु बहुत बुरी है, वह मेरे हृदय को क्षणभर के लिए भी सूना नही देख सकती । अब तो उसका पाना पाना क्या है । अब तो मुझे सासु की डाँट फटकार सहनी ही पडेगी ।

विशेष—१ वाग्वैदग्ध्य की सुन्दर योजना है।
२ लाल शब्द के प्रयोग में यमक अलंकार है।

सवैया

मो मन मोहन को मिलि कै सबही मुसकानि दिखाइ दई।
वह मोहनी मूरति रूपमई सबही चितई तब हौं चितई॥
उन तौ अपने अपने घर की रसखानि चली विधि राह लई।
कछु मोहि को पाप परयौ पल मैं पग पावत पौरि पहार भई॥ १७०॥

शब्दार्थ—रूपमई=सौन्दर्य युक्त। चितई=देखना। पग पावत पौरि पहार भई=पैदल अपने घर तक पहुँचना पहाड़ बन गया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखि! मेरा मन जब मोहन के मन से मिला, अर्थात् जब मुझे कृष्ण के प्रति प्रेम हुआ तो सारी सखियाँ मुस्करा दीं। वास्तविकता तो यह है कि कृष्ण की सौन्दर्यमयी मूर्ति को जब सब अन्य सखियों ने देखा था तो मैंने भी देखा था। रसखान कहते हैं कि वे सब तो अपने-अपने घर अच्छी तरह से पहुँच गई पर मुझे ही पल भर में यह पाप लगा है कि पैदल अपने घर तक पहुँचना मेरे लिए पहाड़ बन गया अर्थात् बहुत कठिन हो गया।

सवैया

डोलिबो कुंजनि कुंजनि को अरु बेनु बजाइबो धेनु चरैबो।
मोहिनी ताननि सों रसखानि सखानि के संग को गोधन गैबो॥
ये सब डारि दियें मन मारि बिगारि दयौ सगरौ सुख पैबो।
भूलत क्यों करि नेहन हाँ को दही करिबो मुसकाइ रिझैबो॥ १७१॥

शब्दार्थ—बेनु=वेणु बंसी। मोहिनी=मोहित करने वाली। रसखानि=आनन्द-सागर कृष्ण। गोधन=गोचारण के गीत।

अर्थ—एक गोपी अपने हृदय में उमड़ते हुए कृष्ण प्रेम को व्यक्त करती हुई कहती है कि आनन्द सागर कृष्ण का कुंज-कुंज में घूमना, बंसी बजाना, गौएँ चराना, मोहित करने वाली तानें सुनाना, अपने साथियों के साथ गोचारण के गीत गाना, प्रेम से दही माँगना और मुस्करा कर देखना कैसे भुला जा सकता है? अर्थात् कृष्ण की ये सब क्रीड़ाएँ मेरे मन में गड़ गई हैं। इन्होंने

मेरे मन को अपने वश मे कर लिया है और इन्ही के कारण मेरा सारा प्राप्त किया हुआ सुख छू मन्तर-हो गया है ।

सवैया

प्रेम मरोरि उठै तब ही मन पाग मरोरनि मे उरझावै ।
रूसे से ह्वै दृग मोसो रहैं लखि मोहन मूरति मो पै न आवै ॥
बोले बिना नहिं चैन परै रसखानि सुने कल श्रोनन पावै ।
भौह मरोरिबो री रूसिबो झुकिबो पिय सो सजनी सिखरावै ॥१७२॥

शब्दार्थ—पाग मरोरनि मे=पगडी के घुमावो मे। रूसे से=रूठे हुए से। श्रोनन=कान।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! जब भी वह अपनी पगडी के घुमावों में मेरे मन को उलझाता है, तभी मेरा प्रेम सजग उठता है। मेरे नेत्र मुझसे रूठे हुए से रहते है और वे कृष्ण को देख कर मेरे वश मे नही रहते। कृष्ण की बातें सुने बिना मुझे चैन नही पडता, तथा उसकी बातें सुनने पर कानो को आनन्द प्राप्त होता है। यह सुन कर उसकी सखी ने प्रियतम से भौह मोडने की, वक्र दृष्टि से देखने की, रूठने की तथा फिर मान जाने की शिक्षा दी।

विशेष—अनुभावो की सुन्दर योजना है।

सवैया

बागन मे मुरली रसखान सुनी सुनिकै जिय रीझ पचैगो ।
धीर समीर को नीर भरौं नहिं माइ झकै औ बबा सकुचैगो ॥
आली दुरेधे को चोटनि नैम कहौ अब कौन उपाय बचैगो ।
जायबौ भाँति कहाँ घर सो परसो वह रास परोस रचैगो ॥१७३॥

शब्दार्थ—रीझि पचैगो=प्रेम के वशीभूत हो जायेगा। धीर समीर=वृन्दावन का एक कुंज। झकै=झकझक करना। दुरघे—निर्लज्ज। नैम=नियम।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रति अपनी आसक्ति का सकेत देती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! बागो मे कृष्ण की मुरली की ध्वनि को सुन कर यह मन प्रेम के वशीभूत हो जायेगा। धीर समीर से पानी भरकर न लाने के कारण सारा झक-झक करेगी और बाबा धर्म से सकुचा जायेंगे। हे सखि ! उस निर्लज्ज कृष्ण की चोटो से कुल की मर्यादा का नियम किस प्रकार

बच सकता है ? अब घर से भी किस प्रकार कहीं चली जाऊँ, क्योंकि परसों ही वह हमारे पड़ोस में अपनी रासलीला करेगा।

विशेष—यह सवैया श्रीविश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

वेनु बजावत गोधन गावत ग्वालन संग गली मधि आयौ।
बाँसुरी मैं उनि मेरोई नाँव सुग्वालिनि के मिस टेरि सुनायौ॥
ए सजनी सुनि सास के त्रासनि नंद के पास उसास न आयौ।
कैसी करौं रसखानि नहीं हित चैनन ही चितचोर चुरायौ॥१७४॥

शब्दार्थ—मेरोई नाँव=मेरा ही नाम। मिस=बहाने से। त्रासनि=डर से। नंद=ननद।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कह रही है कि हे सखि! वंशी बजाता हुआ गोचारण के गीत गाता हुआ अन्य ग्वालों के साथ जब कृष्ण मेरी गली में आया तो उसने सुग्वालिन के बहाने से बाँसुरी में मेरा नाम बजाकर सुनाया। हे सजनी! अपने नाम को सुनकर मैं तो सास के डर से इतनी डर गई कि मुझे अपनी ननद के पास भी ठीक तरह से सांस नहीं आये। आनन्द सागर कृष्ण ने यह कैसी बात कर दी, इसमें मेरा भला नहीं है क्योंकि उस चितचोर ने मेरे सुख को भी चुरा लिया है अर्थात् जब से बाँसुरी में उसने मेरा नाम बजाया है तब से मैं उसके प्रेम में इतनी डूब गई हूँ कि मुझे पलभर के लिए भी चैन नहीं मिलता। मेरा मन हर समय कृष्ण के लिए ही तड़पता रहता है।

सोरठा

एरी चतुर सुजान भयौ अजान हि जान कै।
तजि दीनी पहचान जान अपनी जान कौं॥१७५॥

शब्दार्थ—सुजान=प्रिय। जान=जानकर। जानकौं=प्रिया का।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! वह चतुर प्रिय मुझे जानकर भी अजान बना हुआ है अर्थात् उसने मेरी पूर्णतया उपेक्षा कर दी है। अपनी प्रिया मुझसे गहरा सम्बन्ध बनाकर भी वह आज मुझे पहिचानता भी नहीं है।

विशेष—यमक, विरोधाभास अलंकार।

सवैया

पूरन पुंयनि तें चितई जिन ये अखियाँ मुसकानि भरी जू ।
कोऊ रही पुतरी सी खरी कोऊ घाट डरी कोऊ बाट परी जू ।।
जे अपने घरही रसखानि कहै अरु हौंसनि जानि भरी जू ।
लाल जे बाल बिहाल करी ते निहाल करी न निहाल करी जू ।।१७६।।

शब्दार्थ—चितई=देखी । पुतरी=काठ की पुतली । हौंसनि=प्रसन्नता-भरी लालसाएँ । बिहाल=व्याकुल । निहाल=प्रसन्न ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! कृष्ण की हँसी भरी आँखों को जो बालाएँ देख पाईं, यह उनके पूर्व जन्मों के पुण्यों का ही फल था । उन मुस्कान भरी आँखों को देखकर कोई तो काठ की पुतली की तरह निश्चेष्ट खड़ी रही, कोई घाट पर डर गई और कोई अपनी सुधि-बुधि खोकर मार्ग में ही पड़ गई । रसखान कहते हैं कि जो बालाएँ अपने घर थी, वे प्रसन्नता-भरी लालसाओं में मरी जाती थी । कृष्ण ने जिन बालाओं को व्याकुल किया था, वस्तुत उन्हें व्याकुल न करके प्रसन्न किया था ।

सवैया

आजु री नन्दलला निकस्यौ तुलसीवन तें बन कै मुसकातो ।
देखें बनै न बनै कहतै अब सो सुख जो मुख मैं न समातो ।।
हौं रसखानि बिलोकिबे कौं कुलकानि के काज कियौ हिय हातो ।
आइ गई अलबेली अचानक ए भटू लाज को काज कहा तो ।।१७७।।

शब्दार्थ—नन्दलला=कृष्ण । तुलसीवन=वृन्दावन । बनकै=बन ठनकर । हातो=दूर । भटू=सखी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज बन-ठनकर मुस्कराता हुआ कृष्ण वृन्दावन से निकला । उसकी शोभा न तो देखते बनती थी और न कहते बनती थी और उसे देखकर जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । उस आनन्द सागर को देखने के लिए सभी ब्रज बालाओं ने कुल की लाज और मर्यादा को अपने हृदय से दूर कर दिया । हे सखि ! इतने में ही, अचानक वह अलबेली आ गई तो फिर लाज का क्या काम था ? अर्थात् सभी कृष्ण के प्रति पूर्णतया अनुरक्त होकर अपनी लौकिक मर्यादाओं को भूल गई ।

सवैया

अति लोक की लाज समूह मैं छोरि कै राखि थकी वहु सकट सों।
पल मैं कुलकानि की मेड नखी नहिं रोकी रुकी पल के पट सों॥
रसखानि सु केतो उचाटि रही उचटी न सकोच की औचट सों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही अटकी अँखियाँ लट की लट सो ॥१७८॥

शब्दार्थ—समूह मैं=भीड म ही। मेड=सीमा। नखी=लाघ दी। पल के पट सो=पलक रूपी वस्त्र म। उचाटि=व्याकुल। औचट=ठैस, चोट।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के रूप के प्रभाव का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! भीड मे ही अत्यधिक लोक की लाज को छोडकर मैं अत्यन्त सकटम पडकर थक गई, क्योकि उस समय भी मैं अपने मन को काबू में न रख सकी। कृष्ण को दखते ही क्षणभर म ही कुल की मर्यादा की सीमा मैंने लाँघ दी, अर्थात् कुल लाज को छोड दिया। मरी दृष्टि पलको के वस्त्र मे भी नही रुक सकी। रसखान कहते हैं कि मैं चाहे जितनी व्याकुल रही, पर मैं सकोच की चोट से पृथक् न हो सकी, अर्थात् सकोच किये बिना न रह सकी; हे सखि! मैंने करोडो प्रयत्न किय, पर स्वय को न रोक सकी और मेरी आँखें कृष्ण की लटकती हुई कु तल राशि म उलझ गई।

रास लीला

कवित्त

अधर लगाइ रस प्याइ बाँसुरी बजाइ,
मेरो नाम गाइ हाइ जादू कियो मन मैं।
नटखट नवल सुघर नन्दनन्दन ने,
करि कै अचेत चेत हरि कै जतन मैं।
झटपट उलट पुलट पट परिधान,
जान लागीं लालन पै सबै बाम बन मैं।
रस रास सरस रँगीलो रसखानि आनि,
जानि जोर जुगुति बिलास कियौ जन मैं ॥१७९॥

शब्दार्थ—नवल=युवक। सुघर=सुन्दर। जतन मैं=यत्नपूर्वक। पट=वस्त्र। *बाम=स्त्री। सरस=आनन्द देने वाला।*

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी स रासलीला का वर्णन करती हुई कहती

है कि जब कृष्ण ने अपनी बांसुरी को अपने अधरो से लगाकर और उसे अधरो का रस पिलाकर तथा मेरा नाम गाकर बजाया तो मेरे मन पर मानो वह जादू कर गया। नटखट युवक सुन्दर कृष्ण न मुझे अचेत करके यत्नपूर्वक हरि के ध्यान मे लगा दिया, अर्थात् कृष्ण के ध्यान के बिना मुझे और किसी बात का पता न रहा। बांसुरी की ध्वनि को सुनकर सारी व्रज की स्त्रियाँ जल्दी से अपने वस्त्रो को उलटा-सीधा पहनकर वन मे पहुँच गई। तब सुन्दर रास रचने वाले सरस और रँगीले कृष्ण ने वहां आकर रासलीला की तथा युवतियो का समूह एकत्र करके उनके साथ आनन्द मनाया।

सवैया

काछ नयौ इकतौ बर जेउर दीठि जसोमति राज कर्यौ री।
या ब्रज-मडल मे रसखान कछू तब तें रस रास पर्यौ री॥
देखियै जीवन को फल आजु ही लाजहिं काल सिंगार हौं बौरी।
केते दिनानि पै जानति हो अँखियान के भागनि स्याम नच्चौरी॥१८०॥

शब्दार्थ—काछ=कटिवस्त्र। इकतौ=अद्वितीय, अनुपम। जेउर=जेवर आभूषण। दीठि=ढिठौना, काजल का टीका (माताएँ अपने बच्चो को काजल का टीका इसलिए लगा देती हैं ताकि उन्हें किसी की नजर न लग जाये)। राज=सुन्दर। बौरी=पगली।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रास-लीला का वर्णन करती हुई कहती है कि रासलीला के लिए तत्पर कृष्ण का कटि-वस्त्र अनुपम और नवीन है। वे सुन्दर आभूषण पहने हुए हैं। यशोदा ने उसके माथे पर सुन्दर ढिठौना लगाया हुआ है। हे पगली! जब से इस व्रज-मंडल मे आनन्द सागर कृष्ण ने रासलीला करनी शुरू की है, तब से व्रजवासियो मे नवीन जीवन का सचार हो गया है। अपने जीवन के पुण्य बल से प्राप्त इस रासलीला का आज तो देखकर आनन्द उठा ले, कल से लज्जा का शृगार कर लेना; अर्थात् लज्जा को त्याग कर रासलीला को देख, क्योकि न जाने कितने दिनो के पश्चात् इन आँखो के भाग्य से कृष्ण नृत्य करेंगे।

विशेष—१ 'बौरी' शब्द का प्रयोग घनिष्ठ आत्मीयता का सूचक है।

२. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नहीं है।

सवैया

आजु भटू इक गोपकुमार ने रास रच्यो इक गोप के द्वारें।
सुंदर बानिक सौं रसखानि बन्यो वह छोहरा भाग हमारें॥
ए बिधना! जो हमैं हँसती अब नेकु कहूँ उतको पग धारें।
ताहि बदौं फिरि आबै घरैं बिनहीं तन औ मन जोवन वारें॥१८१॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। बानिक=वेश। बदौं=शर्त लगाकर कहती हूँ। वारें=न्यौछावर करके।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! आज एक गोप ने (कृष्ण ने) दूसरे गोप के द्वारे पर रास लीला रचाई। हमारे सौभाग्य से वह नन्द पुत्र कृष्ण अच्छे वेश वाला बन गया अर्थात् उसकी छवि द्विगुणित हो गई। हे भगवान्! जो हमारे प्रेम को लक्ष्य करके हमारे ऊपर हँसती है अब यदि वह तनिक भी उस ओर चली जावें तो मैं शर्त लगाकर कहती हूँ कि वे अपना मन और यौवन कृष्ण पर न्यौछावर किये बिना अपने घर वापिस नहीं आ सकती।

सवैया

आज भटू मुरली-बट के तट नंद के साँवरे रास रच्यो री।
नैननि सैननि बैननि सों नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यो री॥
जद्यपि राखन कों कुल-कानि सबै ब्रज-बालन प्रान पच्यो री।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानी कों अंत लच्यो पै लच्यो री॥१८२॥

शब्दार्थ—भटू—सखी। साँवरे—कृष्ण ने

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण द्वारा रचाई गई रासलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी! आज मुरली-बट के नीचे श्रीकृष्ण ने रासलीला रची थी। उसमें उन्होंने जो प्रदर्शन किया वह इतना विविधतापूर्ण था कि उनकी आँखों से सैनों से तथा वचनों से कोई भी मनोहर भाव नहीं बचा अर्थात् अपने आंगिक और वाचिक नृत्य के द्वारा उन्होंने सभी प्रकार के मनोहर भावों की अभिव्यक्ति कर दी थी। यद्यपि अपने वंश की मर्यादा का पालन करने के लिए सारी ब्रज-बालाओं ने प्राणपण से प्रयत्न किया तथापि वे अंत में अपने प्रण से झुक गईं और आनन्द सागर कृष्ण के हाथ बिक गईं। अर्थात् सभी ब्रज-वनिताएं कृष्ण की छवि पर मुग्ध हो गईं।

सवैया

कोजै कहा जु पै लोग चवाव सदा करिबौ करि हैं बजमारो ।
सीत न रोकत राखत कागु सुगावत ताहिरी गावन हारो ।
आव री सीरी करैं अँखियां रसखान धनै धन भाग हमारो ।
आवत है फिरि आज बन्यौ वह राति के रास को नाचन हारो ॥१८३॥

शब्दार्थ—चवाव=निन्दा। बजमारो=अत्यन्त घातक। सीत न राखत राखत कागु=कौआ शीतकाल (शरद् ऋतु) का आगमन नहीं रोक सकता। (शरद आगमन के साथ ही श्राद्ध समय समाप्त हो जाता है। अतः कौवा नहीं चाहता कि शरद ऋतु आवे पर उसे रोकना उस बेचारे के वश की बात नहीं है। सीरी करैं=शीतल करें, आनन्द प्राप्त करें।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला में सम्मिलित होने का आग्रह करती हुई कहती है कि हे सखि! यदि लोग हमारी अत्यन्त घातक निन्दा सदा करते रहते हैं तो करें, हमें इससे चिन्तित नहीं होना चाहिए, क्योंकि कौआ चाहे जितनी काँव-काँव करे पर वह शरद् ऋतु के आगमन को नहीं रोक सकता। अतः चलो रासलीला में सम्मिलित होकर हम अपनी आँखें शीतल करें आनन्द प्राप्त करें। हमारा भाग्य धन्य है जो हम इस प्रकार की रासलीला को देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। कल रात को रासलीला में नृत्य करने वाला वह कृष्ण आज फिर बन ठनकर रासलीला में सम्मिलित हो रहा है।

विशेष—१ लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसादमिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रंथावली' में नहीं है।

सवैया

सासु अछै बरज्यौ बिटिया जु बिलोके अतीव लजावत है ।
मोहि कहै जु कहूँ वह बात कही यह कौन कहावत है ।
चाहत काहू के मूड चढ्यौ रसखान झुकै झुकि आवत है ।
जब तें वह ग्वाल गली में नच्यौ तब तें वह नाच नचावत है ॥१८४॥

शब्दार्थ—अछै बरज्यौ=अच्छी प्रकार रोकी। बिटिया=पुत्रवधू। मूड चढ्यौ=सिर पर चढ़ गया, धृष्ट हो गया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से रासलीला का वर्णन करती हुई कहती

है कि यद्यपि अपनी पुत्रवधू को उसकी सास ने रासलीला मे आने से अच्छी प्रकार रोक दिया, तथापि वह न रुक सकी। अपनी आज्ञा का उल्लघन देखकर सास बहुत लज्जित हो रही है। यदि मुझसे वह यह बात कहती तो मैं तुरन्त उत्तर दे देती कि यह कहाँ की बात है। आनद सागर कृष्ण इतन धृष्ट हो गये है कि वे किसी गोपी को अपने वश म करना चाहते हैं, तभी तो वे बार-बार उसकी ओर झुक-झुककर आते हैं। जब से कृष्ण न उस गली म रासलीला की है तब से उसने सभी गोपियो का पूर्णतया अपने वश मे कर लिया है।

विशेष—१ मुहावरा का सुन्दर प्रयोग।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' म नही है।

सवैया

देखत सेज बिछी री अछी सु बिछी बिष सो भिदिगो सिगरे तन।
ऐसी अचेत गिरी नहिं चेत उपाय कर सिगरी सजनी जन।
बोली सयानी सखी रसखानि बचे यौं सुनाइ कह्यौ जुवती गान।
देखन कौं चलियै री चलो सब रास रच्यो मनमोहन जू बन ॥१८५॥

शब्दार्थ—अछी=अच्छी। भिदिगो=दौड गया। सयानी=चतुर।

अर्थ—रासलीला के प्रभाव से एक गोपी इतनी भाव विभोर हो गई कि उस अपनी सुधि ही न रही। उसी की अवस्था का वणन एक गोपी अपनी सखी स कर रही है कि एक गोपी अपनी अच्छी सेज को बिछी देखकर उस पर सोना चाहती थी कि इतने म बाँसुरी की ध्वनि सुनाई दी। उसे सुनकर उसके सारे शरीर म विष-सा फैल गया। वह ऐसी अचेत होकर गिरी कि उसकी सारी सखियो ने अनेक उपाय किय पर उस चेत नही हुआ। तब एक चतुर गोपी ने अपनी सखियो को बताया कि इसकी अचेतना तभी हट सकती है जब इसको सुनाकर यह कहा जाय कि हे सखि! कृष्ण न बन मे रास रचा है अत सब उस देखने क लिए चलो।

तुलना—१ 'दुसह बिरह दारुन दसा, रहै न और उपाय।
जात जात ज्यो राखियतु पिय को नाम सुनाय ॥
—बिहारी

२ 'मोहि घरीक जिवायो चहै तो।
कहै किन वाही बिसासी की बातें।' —किशोर

फाग-लीला

सवैया

खेलतु फाग लख्यौ पिय प्यारी को ता सुख की उपमा किहि दीजै।
देखत ही बनि आवै भलै रसखान कहा है जो वारि न कीजै॥
ज्यौं ज्यौं छबीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यौं त्यौं छबीलो छकै छबि छाक सो हेरै हँसे न टरै खरो भीजै॥१८६॥

शब्दार्थ—किहि=किस प्रकार। वारि=न्योछावर करना। छकै छबि छाक सो=रूप के नशे मे मस्त होते हैं।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से फागलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! मैंने कृष्ण और उनकी प्यारी राधा को फाग खेलते हुए देखा। उस समय की जो शोभा थी, उसकी किस प्रकार उपमा दी जा सकती है। उस समय की शोभा तो देखते ही बनती है और कोई भी ऐसी वस्तु नही है जो उस शोभा पर न्योछावर न की जा सके। ज्यो ज्यो वह सुन्दरी राधा चुनौती देकर एक के बाद दूसरी पिचकारी कृष्ण के ऊपर चलाती है, त्यो त्यो वे रूप के नशे मे मस्त होते जाते हैं। राधा की पिचकारी को देखकर वे हँसते तो हैं, पर वे वहाँ से भागे नही और खडे-खडे भीगते रहे।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं हैं।

सवैया

खेलत फाग सुहागभरी अनुरागहि लालन कौं भरि कै।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन मैं रंग को भरि कै॥
गेरत लाल गुलाल लली मन मोहिनि मौज मिटा करि कै।
जात चली रसखानि अली मदमत्त मनी मन को हरि कै॥१८७॥

शब्दार्थ—अनुरागहि=प्रेम को। मनी-मन=मन रूपी मणि।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! सौभाग्यवती ब्रजबालाएँ कृष्ण के प्रेम को हृदय मे धारण करके फाग (होली) खेल रही हैं। वे कुंकुम और केसर को तथा रंग भरी पिचकारी को कृष्ण के ऊपर छोड रही हैं। ब्रजबालाएँ, जो मन को मोहने वाली हैं, अपने गुरु को भुलाकर कृष्ण के ऊपर लाल गुलाल डाल रही हैं। हे सखि!

वह ब्रजबाला मदमस्त मन रूपी मन का हरण करके चली जा रही है।

पाठांतर—इस सवैया की अंतिम पंक्ति का यह रूप भी मिलता है—

'जात चली रसखान अली मदमत्त मनो मन को हरि कैं।'

सवैया

फागुन लाग्यौ जब तें तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचै नहिं एक बिसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है।
साँझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
को सजनी निलजी न भई अब कौन भटू जिहिं मान बच्यौ है॥१८८॥

शब्दार्थ—नवेली=नई, युवती। अच्यो=पीना। सुरंग=सुन्दर रंग, लाल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई करती है कि हे सखि! जबसे फागुन का महीना लगा है, तबसे सारे ब्रज मंडल में धूम मची हुई है। कोई भी युवती नारी इस धूमधाम से नहीं बची है और सभा ने एक विशेष प्रकार का प्रेम पी लिया है। प्रातः और सायं आनंद-सागर कृष्ण लाल गुलाल लेकर फाग का खेल खेलते रहते हैं। हे सजनी! इस फागुन के महीने में कौन ऐसी ब्रजबाला है जो निर्लज्ज नहीं बन गई है? तथा जिसका मान बचा रह गया है?

विशेष—अंतिम पंक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार।

कवित्त

आई खेलि होरी ब्रजगोरी वा किसोरी संग
अंग अंग अंगनि अनंग सरसाइ गौ।
कुंकुम की मार वा पै रंगनि उहार उड़ै,
बुक्का औ गुलाल लाल लाल बरसाइगौ।
छोड़ै पिचकारिन धमारिन बिगोइ छोड़ै,
तोड़ै हिय हार धार रंग बरसाइ गौ।
रसिक सलोनो रिझवार रसखानि आजु
फागुन मैं औगुन अनेक दरसाई गौ॥१८९॥

शब्दार्थ—अनंग=कामदेव। तरसाइ गौ=ललचा गया। धमारिन=होली-गीत। सलोनो=सुन्दर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई

कहती है कि आज कृष्ण ने ब्रज की गोरियों और राधा के साथ ऐसी होली खेली कि उनके अंग-अंग को रंग कर कामभावना उत्पन्न कर दी। कुंकुम की मार से और उसके ऊपर अनेक प्रकार के रंगों को डालकर लाल गुलाल की मुट्ठियाँ बिखेरकर वह कृष्ण सबको ललचा गया। उसने पिचकारियाँ छोडी, होली के गीत गाये तथा गोपियों के हृदय के हारों को तोडकर वह रंग की धारा बरसा गया। रसखान कहते हैं कि वह रसिक और सुन्दर कृष्ण आज फागुन में होली खेलते समय अपने अनेक अवगुणों को प्रकट कर गया।

कवित्त

गोकुल को ग्वाल काल्हि चौमुँह की ग्वालिन सों,
चाचर रचाइ एक धूमहिं मचाइ गौ।
हियो हुलसाइ रसखानि तान गाइ बाँकी,
सहज सुभाइ सब गाँव ललचाइ गौ।
पिचका चलाइ और जुवती भिजाइ नेह,
लोचन नचाइ मेरे अंगहि नचाइ गौ।
सासहिं नचाइ भोरी नदहि नचाइ खोरी,
बैरनि सचाइ गोरी मोहि सकुचाइ गौ ॥१९०॥

शब्दार्थ—काल्हि=कल। चौमुँह=चारों ओर की। पिचका=पिचकारी। भिजाई नेह=प्रेम में भिगोकर। खोरी=गली। बैरनि सचाइ=बैरों का बदला लेकर। सकुचाइ गौ=लज्जित कर गया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कल गोकुल का एक ग्वाला (कृष्ण) चारों ओर की गोपियों को घेरकर, चाँचर रचाकर धूम मचा गया। रसखान कहते हैं कि वह बाँकी बाँसुरी की तान सुनाकर तथा हृदय को उल्लसित करके सहज स्वभाव से सब गाँव वालों को ललचा गया है। वह अपनी पिचकारी चलाकर तथा समस्त युवतियों को प्रेम से भिगोकर और अपनी आँखों को नचाकर मेरे सारे अंगों को नचा गया है। वह हमारी ही गली में मेरी सास को तथा भोली ननद को नचाकर और पुराने बैरों का बदला लेकर मुझे लज्जित कर गया।

सवैया

आवत लाल गुलाल लियें मग सूने मिली इक नार नवीली।
त्यौं रसखानि लगाइ हियें भटू मौज कियौ मन माँहि अधीनी।
सारी फटी सुकुमारी हटी अँगिया दर की सरकी रंगभीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अंक रिझाइ बिदा करि दीनी ॥१६१॥

शब्दार्थ—लाल=कृष्ण। सारी=साड़ी। अंक=हृदय।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण हाथ में गुलाल लिए हुए आ रहे थे कि सूने मार्ग में उन्हें एक युवती नारी मिली। उस उन्होंने अपने हृदय से लगाकर आनन्द के साथ अपनी मनचाही की। उसकी साड़ी फट गई, सौकुमार्य नष्ट हो गया, चोली फट गई और अपने स्थान से हट गई। कृष्ण ने उसके कपोलों पर गुलाल लगाकर उसके हृदय से लगाकर तथा रिझाकर बिदा कर दिया।

सवैया

लीने अबीर भरे पिचका रसखानि खरो बहु भाय भरो जू।
मार से गोपकुमार कुमार से देखत ध्यान टरो न टरो जू॥
पूरब पुन्यनि हाथ परयो तुम राज करो उठि काज करो जू।
ताहि सरों लखि लाज जरो इहि पाख पतिव्रत ताख धरो जू ॥१६२॥

शब्दार्थ—पिचका=पिचकारी। भाय=भाव। मार=कामदेव। कुमार=थोड़ी अवस्था के। सरों=समक्ष सम्मुख। पाख=पक्ष। ताख=ताक।
ताख धरो=छोड़ दिया।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! वह आनंद सागर कृष्ण अनेक प्रकार के भावों में भरकर तथा अबीर भरी पिचकारी लेकर खड़ा हुआ था। छोटी अवस्था के गोपकुमार कामदेव जैसे दिखाई दे रहे थे जिन्हें देखते देखते ध्यान उन पर टारे से भी नहीं टरता था। वह तुम्हारे हाथ पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण ही लग गया है अब तुम उठकर अपना काम करो और उस पर शासन करो उसके सामने दरकर लज्जा को छोड़ो तथा। इस पक्ष में पतिव्रत धर्म का त्याग कर दो।

विशेष—१. द्वितीय पंक्ति में उपमा अलंकार।

२ चतुर्थ पंक्ति में मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग।

तुलना—हम आपन हैं हरिचन्द पिया अहो लाडिलि देर न मानें अँरा।
चलो फूलो झूलाओ झुको उमको इहि पाल पतिव्रत त न धरो॥

सवैया

मिलि खेलत फाग बढ्यो अनुराग सुराग सनी सुख की रमकै।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी प्रिय के दृग लावन कों धमकै॥
रसखानि गुलाल की धूंधर में ब्रजबालन की दुति यों दमकै।
मनो सावन माँझ ललाई के माँझ चहूँ दिसि तें चपला चमकै॥१९३॥

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम। रमकै=अठखेलियाँ। कंजमुखी=कमल जैसे सुन्दर मुख वाली। लावन कों—फेंकने के लिए। धूंधर=धुंधार। चपला=बिजली।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की होली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण गोपियों के साथ फाग खेल रहे थे। सुख की इन सौभाग्यशाली अठखेलियों में उनका प्रेम बढ़ गया था। कमल जैसे सुन्दर मुख वाली गोपियाँ हाथ में कुंकुम लेकर उसे उनके ऊपर फेंकने के लिए अवसर ताक रही थीं। रसखान कहते हैं कि गुलाल की धुंआधार में ब्रजबालाओं की द्युति इस प्रकार चमक रही थी मानो सावन मास की लालिमा में चारों ओर से बिजली चमक रही हो।

विशेष—अंतिम पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार।

राधा का सौन्दर्य

कवित्त

आजु बरसाने बरसाने सब आनंद सों
लाडिली बरस गाँठि आइ छबि छाई है।
कौतुक अपार घर घर रंग बिसतार
रहत निहारि सुध बुध बिसराई है।
आये ब्रजराज ब्रजरानी दधि दानी संग,
अति ही उमंगे रूप रासि लूटि पाई है।
गुनी जन गान धन दान सनमान, बाजे—
पौरीन निसान रसखान मन भाई है॥१९४॥

शब्दार्थ—बरसाने=वर्षा ऋतु में। बरसाने=ब्रज का एक गाँव, राधा

इसी गाँव की रहने वाली थी। रंग विसतार=आनंद का प्रसार। निसान=नगाड़ा।

अर्थ—राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! आज वर्षा ऋतु में बरसाने गाँव के सभी निवासी प्रसन्न हैं क्यों आज प्यारी राधा की वर्षगाँठ है, इसीलिए चारों ओर शोभा छाई हुई है। हर स्थान पर अपार आश्चर्य और आनन्द का प्रसार है जिसे देखकर लोग अपनी सुधि-बुधि भूल जाते हैं। दही का दान लेने वाले कृष्ण राधा के साथ यहाँ आये हैं। वे अत्यन्त प्रसन्न हैं, क्योंकि उन्हें रूप-राशि राधा को लूटने का अवसर मिला है। गाँव में हर स्थान पर गुणी व्यक्ति गीत गाते हुए सम्मानपूर्वक धन का दान कर रहे हैं और सर्वत्र मनोहर बाजे-बज रहे हैं।

विशेष—यह कवित्त श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली में नहीं है।

कवित्त

कैधों रसखान रस कोस दृग प्यास जानि,
आनि कै पियूष पूष कीनो बिधि घर घर
कैधों मनि मानिक कैडारिबे को कचन मैं,
जरिया जोबन जिन गढ़िया सुघर घर।
कैधों काम कामना के राजत अधर चिन्ह,
कैधों यह भौर ज्ञान बोहित गुमान हर।
एरी मेरी प्यारी दुति कोटि रति रम्भा की,
वारि डारौं तेरी चित चोरनि चिबुक पर ॥१६५॥

शब्दार्थ—रस कोस—आनन्द निधि। पियूष पूष=अमृत का सार। बिधि=ब्रह्मा। गढ़िया सुघर घर=सुन्दर घर बना लिया। बोहित=नौका। गुमान हर=गर्व को नष्ट करने वाला। दुति=शोभा।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि ब्रह्मा ने संसार को प्यासा जानकर उसकी तृप्ति के लिए तुम्हारे नेत्रों में आनन्द-निधि भर दिया है। तुम्हारा मुख इतना सुन्दर है जैसे इसने अमृत-सार का संजोकर स्वयं चन्द्रमा उत्पन्न हो गया हो। तुम्हारे शरीर का रूप देखा है जैसे सोने के मणि-मुक्ताओं को जड़ने के लिए सुन्दर जड़िया यौवन ने

सुन्दर घर (रत्न जड़ने के लिए) स्थान बना लिया हो। तुम्हारे अधरों की लाली काम कामना जैसी सुशोभित है। तुम्हारी नासिका का छिद्र उस भौंरे के समान है जिसमें ज्ञान की नौका का गर्व नष्ट हो जाता है, अर्थात् सुधि-बुधि नष्ट हो जाती है। मेरी प्यारी सखी राधा! तेरी मनोहर चिबुक पर मैं करोड़ों रति और रम्भा की शोभा को न्यौछावर करती हूँ।

विशेष—यह कवित्त श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

श्री मुख यों न बखान सकै वृषभान सुता जू को रूप उजारो।
हे रसखान तू ज्ञान सँभार तरैंनि निहार जु रीभन हारो।
चारु सिंदूर को लाल रसाल लसै ब्रज बाल को भाल टिकारो।
गोद में मानों बिराजत है घनस्याम के सारे को सारे को सारो॥१९६॥

शब्दार्थ—श्रीमुख=मुख की शोभा। वृषभान सुता=राधा। तरैंनि=नक्षत्र। रसाल=सरस। टिकारो=टीका। घनस्याम के सारे को सारे को सारो=मंगल।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! राधा के मुख की शोभा का कौन वर्णन कर सकता है। उसका सौन्दर्य प्रकाशित करने वाला है। रसखान कहते हैं कि हे मनुष्य! तू अपना ज्ञान सँभाल और यदि तू राधा के रूप का कुछ बोध करना चाहता है तो नक्षत्रों की ओर देख अर्थात् जिस प्रकार नक्षत्रों की प्रभा अनुपम है, उसी प्रकार राधा का रूप भी अद्वितीय है। उस ब्रजबाला के मस्तक पर लगा हुआ सिन्दूर का टीका अत्यन्त सुन्दर एवं सरस है। वह टीका ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा की गोद में मंगल सुशोभित हो।

विशेष—१ उत्प्रेक्षा अलंकार।

२ घनस्याम के सारे को सारे को सारो' में क्लिष्टत्व दोष है क्योंकि इसका अर्थ क्लिष्टता से निकलता है—घनस्याम का साला=चन्द्रमा चन्द्रमा की स्त्री=बीरबहूटी, बीरबहूटी का भाई मंगल।

३ *यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित* 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली ! अलि कुंतल राजत है।
मखतूल समान के गुंज घरानि मैं किंसुक की छवि छाजत है।।
मुक्ता के कंदब तें अंब के मौर सुने सुर कोकिल लाजत है।
यह आवनि प्यारी जु की रसखानि बसंत सी आज बिराजत है।।१६७।।

शब्दार्थ—अली=सखी। अलि=भ्रमर। कुंतल=केश। मखतूल=काला रेशम। छरानि मैं=डोरियों में।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! उसका अत्यन्त लाल गुलाल के समान दुकूल गुलाब के लाल फूल की भाँति शोभायमान है। उसकी काली केशराशि भौंरों के समान सुशोभित है। काले रेशम की डोरियों में बँधे हुए गुंज पलाश-पुष्प की भाँति शोभा सम्पन्न है। उसके मोती कदंब और आम की मंजरियों के समान शोभायमान हैं। उसकी वाणी में इतना माधुर्य है कि उसके वचनों को सुनकर कोयल भी लजा जाती है। इस अपनी प्यारी और आनन्द की खान राधा की शोभा वसन्त श्री के समान प्रतीत हो रही है।

विशेष—यमक उपमा, छेकानुप्रास और सांग रूपक अलंकार।

सवैया

तन चन्दन खौर कै बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मनसी।
मनो इन्दुवधून लजावन को सब ज्ञानिन काढि धरी गन सी।।
रसखानि बिराजति चौकी कुचौ बिच उत्तमताहि जरी तन सी।
दमकै दृग बान के घायन को गिरि सेत के संधि के जीवन सी।।१६८।।

शब्दार्थ—सुधा की सुता मनसी=सुधा की मानस पुत्री। इंदुवधून=चन्द्रमा की पत्नियाँ तारिकाओं को। लजावन=लज्जित करने के लिए। गन सी=गणश्री अपने समूह की सात्विक छटा। चौकी=हार के बीच का चंदा। उत्तमताहि=सौन्दर्य को। संधि=बीच। जीवन सी=जलाशय की भाँति।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! अपने शरीर पर चन्दन लगाकर बैठी हुई वह सुधा की मानस पुत्री राधा ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो चन्द्रमा की पत्नियों

तारिकाओं को लज्जित करने के लिए सब प्रकार से अपनी समग्र सात्विक शोभा को बाहर निकाल कर बैठी हुई हो। रसखान कवि कहते हैं कि उसके कुचों के बीच मे हार का चदा इस प्रकार शोभा दे रहा है, जैसे सौन्दर्य को ही उसके शरीर मे जड दिया गया हो। वह चन्दा ऐसा प्रतीत होता है मानो दृग बाणों का घाव दमक रहा हो, अथवा श्वेत पर्वत के संधिस्थान मे कोई जलाशय हो।

विशेष—१ उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अर्थालंकारों का बडा ही भावपूर्ण प्रयोग हुआ है।

२ 'दमकै दृग बान के घायन कों' मे दी गई उपमा रसानुभूति मे बाधक है।

सवैया

आज सँवारति नेकु भटू तन, मद करी रति की दुति लाजै।
देखत रीझि रहे रसखानि सु और छटा बिधिना उपराजै॥
आए हैं न्यौतें तरैंमन के मनो सग पतग पतग जु राजै।
ऐसें लसैं मुकुतागन मैं तित तेरे तरौना के तीर बिराजै॥१६६॥

शब्दार्थ—भटू=सखी। रति=कामदेव की स्त्री, जो सर्वाधिक सुन्दर मानी जाती है। दुति=द्युति शोभा। लाजै=लज्जित हो जाती है। रसखानि=आनन्द सागर कृष्ण। बिधिना=ब्रह्मा। उपराजै=उत्पन्न करे। तरैंमन के=नक्षत्रों के, मोतियों के। पतग=सूर्य, तरौना। पतग=शलभ, तिल। तीर=किनारा।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज तनिक अपना शरीर सभाल लो क्योंकि इसके सौन्दर्य के समक्ष रति का सौन्दर्य भी मन्द हो गया है और वह इसी कारण लज्जित हो रही है। आनन्द सागर कृष्ण तुम्हारी शोभा को देखकर रीझ रहे है। तुम्हारे अतिरिक्त ब्रह्मा और क्या उत्पन्न करे? अर्थात् तुम उसकी सौन्दर्य सृष्टि की चरम पराकाष्ठा हो। मोतियों से युक्त तुम्हारे तरौना के किनारे पर सुशोभित होता हुआ तिल इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो सूर्य के साथ सारे नक्षत्र आकर एकत्र हो गए हो।

विशेष—प्रतीप, श्लेष, यमक, उपमा अलंकार।

सवैया

प्यारी की चारु सिंगार तरगनि जाय लगि रति की दुति कूलनि ।
जोवन जेब कहा कहियै उर पै छवि मजु अनेक दुकूलनि ।
कंचुकी सेत मैं जावक बिन्दु विलोकि मरै मघवानि की सूलनि ।
पूजे है आजु मनो रसखान मु भूत के भूप बधूक के फूलनि ॥२००॥

शब्दार्थ - सिंगार तरगन=सौन्दर्य की लहरें । जेब=कान्ति । सेत=श्वेत, सफेद । जावक=महावर, लाल रग । मघवानि की सूलनि=इन्द्र वज्र की चोट । भूत के भूप=शिव । बधूक के फूलनि=दुपहरिया के लाल रग के फूलो से ।

अर्थ—कोई गोपी राधा के सौन्दर्य का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि हे सखि ! उस प्यारी राधा के सुन्दर सौन्दर्य की लहरें रति की शोभा के किनारो मे जा लगी हैं, अर्थात् वह रति के समान सुन्दर है । उसके यौवन की कांति का तो कहना ही क्या ? उसके हृदय पर अनेक सुन्दर वस्त्रों की शोभा सुशोभित है । उसकी श्वेत कंचुकी मे लाल रग के बिन्दु को देखकर तो मनुष्य इन्द्र के वज्र की चोट की भाँति भारी चोट खाकर मर जाता है । उसके कुचो पर पड़ा हुआ लाल वस्त्र इस प्रकार प्रतीत हो रहा है । मानो बन्धूक के फूलो से शिव की पूजा की गई हो ।

विशेष—१ उत्प्रेक्षा अलकार ।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रथावली' मे नहीं है ।

तुलना—'दुरत न कुच बिच कचुकी, चुपरी सादी सेत ।
कवि अकन के अर्थ लौं, प्रगट दिखाई देत ॥'

—बिहारी

सवैया

बाँकी मरोर गटी भृकुटीन लगी अँखियाँ तिरछानि तिया की ।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि तें दुति दूनी हिया की ॥
सोहैं तरग अनग की अगनि ओप उरोज उठी छतिया की ।
जोवन जोति सु यौं दमकै उसकाइ दई मनो बाती दिया की ॥२०१॥

शब्दार्थ—टाँक=पतली । लाँक=लक, कमर । सुदामिनि=सौदामिनी,

बिजली। दुति द्युति, शोभा। अनग=कामदेव। ओप=शोभा। उरोज=स्तन।

अर्थ—कोई गोपी राधा की वय सन्धि का वर्णन अपनी सखी से करती हुई कहती है कि राधा की तिरछी आँखों ने, जो भृकुटी तक फैली हुई हैं, गर्वीली वक्रता ग्रहण कर ली है। आनन्द सागर राधा की कमर पतली हो गई है। उसके हृदय की (शरीर की) शोभा दामिनी से भी अधिक बढ़ गई है। उसके अगों मे कामदेव की तरगें शोभायमान हैं, उसकी छाती पे उठे हुए स्तन भी शोभायुक्त हैं। उसकी यौवन शोभा इस प्रकार दमक रही है, मानो दीपक की बाती उकसा दी गई हो, अर्थात् जिस प्रकार दीपक की बाती को बढाने से धूमिल प्रकाश स्पष्ट हो जाता है, उसी प्रकार राधा के अगों मे भी यौवन की शोभा स्पष्ट दिखाई दे रही है।

विशेष—उपमा, अधिक, छेकानुप्रास अलकार।

तुलना—१ 'अग अग नग जगमगं, दीप सिखा सी देह।
दिया बढामे हू रहै, बडो उजेरो मेह॥
—बिहारी

२ 'पलट चली मुसकाय, दुति रहीम उपजाय अति।
बाती सी उकसाय, मानो दीनी देह की।'
—रहीम

सवैया

बासर तू जु कहूं निकरै रबि को रथ माँझ अकास अरै री।
रैन यहै गति है रसखानि छपाकर आँगन तें न टरै री॥
द्यौस निस्वास चल्यौई करै निसि द्यौस की आसन पाय धरै री।
तेरो न जात कछू दिन राति बिचारे बटोही की बाट परै री॥२०२॥

शब्दार्थ—बासर=दिन। छपाकर=चन्द्रमा। द्यौस=दिवस, दिन। बाट परै=रास्ता रुक जाता है।

अर्थ—कोई गोपी राधा से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हे राधा! यदि तू दिन म अपने घर से बाहर निकल आती है तो तेरे सौन्दर्य से सूर्य इतना चकित हो जाता है कि उसका रथ आकाश मे ही रुक जाता है, अर्थात् सूर्य अपनी गति भूलकर एकटक तुझे ही देखता रह जाता

है। हे आनन्द-सागर राधा ! रात को भी यही दशा होती है। तेरा सौन्दर्य देखकर चन्द्रमा तेरे आँगन में ही ठहर जाता है और आगे नहीं बढ़ता। दिन में तो पवन चलता ही रहता है, पर रात में भी वह दिन को आशा से तेरे पीछे लगा रहता है; अर्थात् तेरी सुगन्धि का लोभी पवन रात-दिन चलता रहता है। इस पवन के रात-दिन चलते रहने के कारण तेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता, पर बेचारे पथिक का रास्ता रुक जाता है; अर्थात् वह अपने रास्ते पर चल नहीं पाता।

विशेष—अत्युक्ति और व्याजस्तुति अलंकार।

तुलना—'मेरे कहे हाहा करि नीरे ह्वै निहारी जब,
जेते बट बाट के बटाऊ मारे जात हैं।'

—आलम

'यह जाको लसै मुख चन्द-समान कमान-सी भौंह गुमान हरै।
अति दीरघ नैन सरोजहूँ तें मृग खंजन मीन की पाँति दरै।।'

सवैया

प्रेम कथानि की बात चलै चमकै चित चंचलता चिनगारी।
लोचन बंक बिलोकनि लोलनि बोलनि मैं बतियाँ रसकारी।।
सोहैं तरंग अनंग को अंगनि कोमल यों झमकै झनकारी।
पूतरी खेलत ही पटकी रसखानि सु चौपर खेलत प्यारी।।२०४।।

शब्दार्थ—लोलनि=सुन्दर, मधुर। रसकारी=आनन्ददायक। अनंग=कामदेव। झमकै=ध्वनि करती है। पूतरी=चौसर की गोट।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से चौपड का वर्णन करती हुई कह रही है कि जब भी प्रेम-कथाओं की चर्चा चलती है तो कृष्ण के मन में चंचलता की चिनगारी चमकने लगती है। वे वक्र दृष्टि से देखने लगते हैं, मधुर बोल बोलने लगते हैं और उनकी बातें अत्यधिक आनन्द से भरी हुई होती हैं। उनके अंगों में कामदेव की लहरें सुशोभित हो जाती हैं। रसखान कहते हैं कि उन्होंने अपनी प्राणप्रिया के साथ चौपड खेलते हुए अपनी गोट को पटक दिया, अर्थात् वे अपनी प्रिया के प्रेम में इतने तल्लीन हुए कि चौपड खेलना ही भूल गये।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मानवती राधा

सवैया

वारति जा पर ज्यौ न थकै चहुँ ओर जिती नृप ती धरती है।
मान सकै धरती सो कहाँ जिहि रूप लखै रति सी रती है।
जा रसखान बिलोकन काज सदाई सदा हरती बरती है।
तो लगि ता मन मोहन की अँखियाँ निसि द्यौस हहा करती है।।२०५।।

शब्दार्थ—वारति=न्यौछावर करती हुई। ज्यौ=जीव, प्राण। ती=स्त्रियाँ। मान सकै धर=जो मान धारण कर सके। रती=रत्ती के समान। हरती बरती है=आकुल रहती है। तो लगि=तेरे लिए। निसि द्यौस=रात-दिन। हहा करती है=अनुनय विनय करती रहती है।

अर्थ—मानवती राधा को उसकी सखी समझाती हुई कहती है कि हे राधे! जिस कृष्ण पर चारों ओर के राजाओं की सभी स्त्रियाँ अपने प्राणों

का न्यौछावर करते हुए नहीं थकती। ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं जो कृष्ण से विमुख होकर मान धारण कर सकें, भले ही उनकी सुंदरता में रति भी रती के समान हो, नगण्य हो। जिस आनन्द-सागर कृष्ण को देखने के लिए सभी स्त्रियाँ सदा ही आकुल रहती हैं उसी मनमोहन कृष्ण की आँखें रात दिन तेरे लिए अनुनय विनय करती रहती हैं। (अतः तू अपना मान छोड़कर कृष्ण से शीघ्र मिल।)

विशेष—१ यमक व्यतिरेक, उपमा।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रंथावली में नहीं है।

सवैया

मान की औधि है आधी घरी अरी जो रसखानि डरै हित कै डर।
कै हित छाडियै पारियै पाइनि एसैं कटाछनहीं हियरा हर॥
मोहनलाल को हाल बिचारियै नेकु कछू किनि छ्वै कर सों कर।
ना करिबे पर वारे हैं प्रान कहा करि हैं अब हाँ करिबे पर॥२०६॥

शब्दार्थ—औधि=अवधि। हित=प्रेम। कै=या तो। हियरा हर=हृदय को हर, मन को जीत ला।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि यदि मान दिखाना प्रेम के कारण डर जायें तो मान की अवधि आधी घड़ी होनी चाहिए अर्थात् यदि कृष्ण तेरे मान से भयभीत हो गये हैं तो मान अपना मान छोड़ देना चाहिए। या तो तुम उनसे प्रेम हो छोड़ दो और यदि प्रेम को नहीं छोड़ सकती तो उनके पैरों में पड़कर ऐसी तिरछी दृष्टि से देखो कि उनके मन को ही जीत लो। तुम मनमोहन के ध्यान में कृष्ण का तनिक हाल तो देखो यह बेचारे तुम्हारे विरह में ताप सहन रहे हैं। वह तुम्हारे 'नहीं' पर ही अपने प्राणों को न्यौछावर करते हैं। न जाने 'हाँ' करने पर वह क्या करेगा।

विशेष—परम्परागत वर्णन है।

सवैया

तू गरबाइ कहा झगरै रसखानि तेरे बस बावरो होत है।
तौ हूँ न छाती सिराइ अरी करि झार दगैं दगैं कमिल कागै।

लालहि लाल किये अँखियाँ गहि लालहि काल सो क्यों भई रोसैं ।
ए विधना तू कहा री पढी बस राख्यो गुपालहिं लाल भरोसैं ॥२०७॥

शब्दार्थ—गरबाइ=गर्व करके । सिराइ=ठंडी पडना । करि भार=डाह करके ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि तू गर्व करके मुझसे क्या झगडा करती है । आनन्द सागर कृष्ण तेरे प्रेम में पागल होकर तेरे वश में हो गये हैं, तो भी तेरी छाती ठंडी नहीं हुई और डाह करके फिर भी मुझे वध्या होने की गाली देती है । कृष्ण तेरे लिए लाल आँखें किये हुए है, अर्थात् आतुरता से तेरी प्रतीक्षा करते हैं । कृष्ण को अपने वश में करके भी काल की भाँति क्यों क्रोध करती है । हे दैव ! तूने यह विद्या कहाँ से पढी है कि तूने कृष्ण को अपने प्रेम का झूठा विश्वास दे दिया है और वह तेरे ही भरोसे रहता है ।

विशेष—अनुप्रास और यमक अलंकार ।

सवैया

पिय सो तुम मान करयो कत नागरि आजु कहा किनहूँ सिख दीनी ।
ऐसे मनोहर प्रीतम के तरुनी बरुनी पग पोछैं नवीनी ॥
सुन्दर हास सुधानिधि सो मुख नैननि चैन महारस भीनी ।
रसखानि न लागत तोहि कछू अब तेरी तिया किनहूँ मति दीनी ॥२०८॥

शब्दार्थ—कत=क्यों । सिख=शिक्षा । बरुनी=बरौनियों से । सुधानिधि=चन्द्रमा । महारस=अत्यधिक आनन्द ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी, राधा की ताडना करती हुई कहती है कि हे चतुर सखि ! तुम अपने प्रिय से क्यों मान कर रही हो ? तुम्हें आज क्या हो गया है ? किसने तुमको ऐसी शिक्षा दी है ? तुम्हारा प्रिय तो इतना मनोहर है कि तरुणियाँ उसके पैरों को अपनी बरौनियों से पोंछती हैं । उसका हास्य सुन्दर है, मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है, उसके नेत्र सुख देने वाले और अत्यन्त आनन्द से भरे हुए हैं । ऐसा आनन्द सागर प्रिय अब तेरा कुछ नहीं लगता, अर्थात् तू उससे रूठी हुई है । हे तिया ! न जाने किसने तेरी मति को छीन लिया है जो तू ऐसे मनोहर प्रियतम से मान करके बैठी हुई है ।

विशेष—१ अनुप्रास, उपमा अलकार।

२ 'तिया' शब्द के प्रयोग मे भर्त्सना का भाव निहित है।

कवित्त

डहडही बैरी मजु डार सहकार की पै
चहचही चुहल चहूँकित अलीन की।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै,
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की।
तहतही करि रसखानि के मिलन हेत,
बहबही बानि तजि मानस मलीन की।
महमही मद मद मारुत मिलनि तैसी,
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की ॥२०६॥

शब्दार्थ—डहडही=फली हुई। सहकार=आम। अलीन की=भौरो की। लहलही=हरी भरी। लोनी=सुदर। काकलीन की=कूजा की। तहतही=शीघ्रता। रसखानि=आनद सागर कृष्ण। बहबही=भद्दी। बानि=आदत स्वभाव। मारुत=हवा। गहगही—पूर्ण विकसित।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी मानवती राधा से वसत ऋतु का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आम की बौरो से युक्त तथा फली हुई सुन्दर डाली पर चारो ओर से भौरो की गूँज आनदपूर्वक गूँज रही है। हरी भरी सुदर लताये तमाल वृक्षो से लिपटी हुई हैं जिनपर कोयलें कूज रही हैं। शीघ्रता से कृष्ण से मिलने के लिए गोपियाँ अपने हृदय का मलीन स्वभाव छोडकर आतुर हो गई हैं। सुगधित मद मद मारुत चल रहा है और गुलाब की कलियाँ खिलकर पूर्ण विकसित हो गई हैं।

ऐसे समय मे तेरा मान करना उचित नही है।

सवैया

जो कबहूँ मग पाँव न देत सु तो हित लालन आपुन गौनें।
मेरो कह्यौ करि मान तजौ कहि मोहन सो बलि बोल सलोनें॥
सौहैं दिवावत हौं रसखानि तूँ सौहैं कर किन लालनि लौनें।
नासी सू मानिनि मान कर्‌यो किन मान बसात मैं कानो है कौन॥२१०॥

शब्दार्थ—सलोने=मधुर। सौहैं=शपथ। सौहैं=सम्मुख। लालनि=

लाखो मे सुन्दर मुख । नोखी=विलक्षण ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी राधा को समझाती हुई कहती है कि जो स्त्रियाँ कभी घर से बाहर कदम भी नही रखती, वे भी कृष्ण के लिए स्वय छिपकर गमन करती है, अर्थात् कृष्ण मे इतना आकर्षण है कि धीरा भी उनसे मिलने के लिए अधीरा बन जाती है। अत तू मेरा कहना मान कर अपना मान छोड और मोहन से मधुर-मधुर शब्दो म बातें कर। रसखान कहते हैं कि मैं तुझको सौगन्ध दिलाकर कहती हूँ कि हे लाखो मे सुन्दर मुखवाली तू कृष्ण के सामने जा। हे मानिनी ! तू तो बहुत ही विलक्षण है, वरना बसन्त ऋतु मे भी कोई मान करता है ? अत तू मेरा कहना मान और अपना मान तजकर कृष्ण से बातें कर।

विशेष—तृतीय और चतुर्थ पक्ति मे यमक अलकार।

सखी-शिक्षा

सवैया

सोई है रास मैं नैसुक नाच कै नाच नचायौ कितौ सबको जिन।
सोई है री रसखानि किते मनुहारनि सूँघे चितौत न हो छिन॥
तो मैं धौं कौन मनोहर भाव बिलोकि भयो बस हाहा करो तिन।
औसर ऐसो मिलै न मिलै फिर लगर मोडो कनौडो करै छिन॥२११॥

शब्दार्थ—लगर=शरारती। मोडा=बालक। कनौडो=कृतज्ञ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को शिक्षा देती हुई कहती है कि हे सखि। ह वही कृष्ण है जो रासलीला मे तनिक नाच कर सबको नचाया करता है। ही आनन्द-सागर कृष्ण है जो अनेक मनुहारें करने पर भी पलभर के लिए ी सीधी तरह नही देखता, अर्थात् हर समय शरारत करता रहता है। न ाने तुझ म वह कौन से मनोहर भाव देखकर तेरे प्रति आकृष्ट हो गया है। सा अवसर शायद भाग मिले या न मिले कि वह शरारती कृष्ण तुझे कृतज्ञ रे, अर्थात् तेरे प्रति आकृष्ट हो, अत अब जो अवसर मिला है, उसे हाथ से जान द।

विशेष—उल्लेख अलकार।

सवैया

सौ पहिराइ गई चुरिया निहि को घर बावरी जाय भरै री।
या रसखान को ऐतो अधीन मै मान करै बलि जाहि परै री॥

आवन को पुतरीन हठा करें नैननि धार अखण्ड ढरैं री।
हाथ निहारि निहारि लला मनिहारिन की मनुहारि करैं री ॥२१२॥

शब्दार्थ—ऐतो अबीर ने=इस प्रकार अपने प्रेम के वश में करके। चलि जाहि परैं=दूर हट, यह स्त्रियों की भ मना देने की एक प्रकार की गाली है। मनुहारि=सत्कार।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि तुझे जो मनिहारी चूड़ियाँ पहना गई तू जाकर उसका घर क्यों नहीं भर देती, अर्थात् उस काफी धन क्यों नहीं दे देती। तू ने उस आनन्द सागर कृष्ण को इस प्रकार अपने प्रेम के वश में कर लिया है कि वह तेरे बिन अब एक पल भी नहीं रह सकता और अब तू उसके पास जाने में हिचकिचाती है, उससे मान करती है। चल दूर हट। तेरे आने के लिए, तुझसे मिलने के लिए कृष्ण की आँखें तुझसे अनुनय विनय करती हैं और तेरे वियोग में उसकी आँखों से निरन्तर आँसू बहते रहते हैं। तू ने जो चूड़ियाँ पहन रक्खी हैं इन चूड़ियों वाले हाथों को देखकर कृष्ण उस मनिहारी का अवश्य सत्कार करेंगे अर्थात् उसे साधुवाद देंगे।

विशेष—१ यमक अलंकार।
२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रन्थावली में नहीं है।

सवैया

मेरी सुनौ मति आइ अली उहाँ जौनी गली हरि गावत है।
हरि है बिलोकति प्रानन को पुनि गाढ परे घर आवत है॥
उन तान की तान तनी ब्रज मैं रसखानि समान सिखावत है।
तकि पाय धरौ रपटाय नहीं वह चारो सो डारि फँसावत है॥२१३॥

शब्दार्थ—अली=सखी। जौनी=जिस। गाढ़=विपत्ति। समान=ज्ञान।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति सचेत रहने के लिए कहती हुई वर्णन करती है कि हे सखि। मेरी बात को ध्यान से सुनो और जिस गली में कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाता हुआ आता है, उस गली में बिल्कुल मत जाओ, क्योंकि देखते ही कृष्ण प्राणों को हर लेता है और फिर गाढ़ियों

बेचारी प्रेम की विपत्ति लेकर ही अपने घरो को लौटती हैं। उसने अपनी बाँसुरी की तानो का सारे व्रज मे तान तान रक्खा है, अतः मैं तुझसे ज्ञान की बात कहती हूँ कि बहुत सोच समझकर पैर रखो, क्योंकि वह कृष्ण इसी प्रकार फँसाता है, जिस प्रकार चारा देकर मछली को फँसाया जाता है।

विशेष—१. यमक, श्लेष अलकार।

२. 'तकि पाय धरौ रपटाय नहीं' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।

सवैया

चाहे कूँ जाति जसोमति के गृह पोच भली घर हूँ तो रई ही।
मानुष को डसिबौ अपुनो हँसिबौ यह बात उहाँ न नई ही॥
बैरिनि तौ दृग-कोरनि मे रसखान जो बात भई न भई ही।
माखन सौ मन लै यह क्यो वह माखनचोर के ओर नई ही ॥२१४॥

शब्दार्थ—पोच भली=चाहे कमजोर ही सही। रई=दूध मथने की लकड़ी। उहाँ=वहाँ पर। बैरिनि=औरतो का आत्मीयता-सूचक सम्बोधन। तौ=तेरे। न भई ही=पहले नहीं थी। माखन सौ=मक्खन के समान कोमल।

अर्थ—कोई गोपी यशोदा के घर गई और वहाँ से कृष्ण के प्रेम के वशीभूत होकर लौटी। उसकी भर्त्सना करती हुई उसकी सखी कह रही है कि तू यशोदा के घर गई ही क्यो? रई तो तेरे भी पास थी, भले ही वह कमजोर सही। वहाँ कृष्ण के द्वारा प्रेम का जाल फैलाकर भोली नारियो को डसना और उन नारियो के फिर अपनी हँसी कराना कोई नई बात नही है। यहाँ तो प्रतिदिन ऐसा ही होता रहता है। हे बैरिनि! तेरे नेत्रो मे आज जो बात मैं देख रही हूँ, वह पहले तो नही थी, अर्थात् आज तुम्हारी आँखों मे प्रेम की मादकता है। अपना मक्खन-जैसा कोमल हृदय लेकर तू उस माखनचोर की ओर गई ही क्यों थी?

विशेष—१. उपमा अलकार।

२. अतिम पक्ति मे 'माखन' और 'माखनचोर' का प्रयोग अत्यन्त औचित्यपूर्ण है।

३. श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नहीं है।

सवैया

हेरति बारहीं बार उतै तुव बावरी बाल, कहा धौं करैगी।
जौं कबहुँ रसखानि लखै फिर क्यों हूँ न बीर ही धीर धरैगी॥
मानि हैं काहू की कानि नहीं, जब रूप ठगी हरि रंग ढरैगी।
यातैं कहौं सिख मानि भटू यह हेरनि तेरे ही पैंडे परैगी॥२१५॥

शब्दार्थ—हेरति=देखती है। बीर=सखी। कानि=लज्जा, भय। रंग=प्रेम। सिख=शिक्षा। भटू=सखी। हेरनि=देखा। पैंडे=पीछे।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि! तू बार-बार कृष्ण की ओर देखती है। हे पगली! तू नहीं जानती कि इसका परिणाम क्या होगा? यदि कभी आनन्द-सागर कृष्ण ने तेरी ओर देख लिया तो, हे सखि! फिर तू अपना सारा धैर्य खो बैठेगी और उसमें अनुरक्त हो जायेगी। तब तू किसी भी प्रकार की लज्जा नहीं पावेगी और कृष्ण के प्रेम में रंग जायेगी। हे सखि! इसलिए मैं तुझसे कहती हूँ कि तू मेरी शिक्षा मान, अन्यथा यह देखना तेरे ही पीछे पड़ जायेगा, अर्थात् जब तू कृष्ण से प्रेम करने लगेगी तो फिर तुझे बड़ी व्याकुलता होगी, तेरा सुख-चैन सब दूर हो जायेगा।

सवैया

बाँकि कटाछ चितैबो सिख्यौ बहुधा बरज्यौ हित कै हितकारी।
तू अपने ढंग की रसखानि सिखावनि देति न हौं पचिहारी॥
कौन की सीख सिखी सजनी अजहूँ तजि दै बलि जाउँ तिहारी।
नन्द के नन्दन के फन्द अजूँ परि जैहै अनोखी निहारिनिहारी॥२१६॥

शब्दार्थ—कटाछ=कटाक्ष, तिरछी दृष्टि से। हितकारी=प्रेम करने वाला पति। हौं पचिहारी=मैं कोशिश करके हार गई हूँ। निहारिनिहारी=देखने वाली।

अर्थ—कोई गोपी अपनी मानिनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि! तूने बाँकी तिरछी दृष्टि से देखना तो सीख लिया है; अर्थात् तू प्रेम करना तो जान गई है, पर प्रायः अपना अपने प्रेम करने वाले पति की अवज्ञा कर देती है। तू तो अपने ही प्रकार की आनन्द सागर में भरी हुई युवती है, जो मेरी शिक्षा नहीं मानती। मैं तो तुझे शिक्षा दे-देके थकित

करके हार गई हूँ। हे सजनी ! तू ने किसकी शिक्षा को ग्रहण कर लिया है ? अपना मान छोड़ दे, मैं तुझ पर न्योछावर होती हूँ। हे विलक्षण-दृष्टि से देखने वाली ! यदि तू कही कृष्ण के फन्दे मे पड़ गई तो फिर मुसीबत आ जायेगी। अतः तुझे अपना मान छोड़कर अपने प्रियतम से प्रेम करना ही उचित है।

सवैया

बैरिन तूँ बरजी न रहै अबही घर बाहिर बैरु बढ़ैगो।
टोना सु नन्द छुटोना पड़ै सजनी तुहि देखि बिसेषि पढ़ैगो ॥
हँसि है सखि गोकुल गाँव सबै रसखानि तबै यह लोक रढ़ैगो।
बैरु चढ़ै घरहि रहि बैठि अटा न एढ़ै बदनाम चढ़ैगो ॥२१७॥

शब्दार्थ=बरजी न रहैं=रोकने पर नही रुकती। टोना=जादू। छुटोना=लड़का। बिसेष=विशेष। लोक=दुनिया। बैरु=आयु।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण के प्रेम मे दिवानी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि। तू रोकने पर भी नही रुकती। यदि तेरा कृष्ण के प्रति ऐसा ही लगाव रहा तो घर और बाहर बैर बढ़ जायेगा। नन्दपुत्र कृष्ण जादू के मन्त्र से तो सदा ही पढता रहता है, पर तुझे देखकर वह और भी विशेष रूप से पढेगा। सारा गोकुल गाँव तेरी हँसी उड़ायेगा और सारी दुनिया तेरी निन्दा करेगी। अब तेरी आयु चढ़ रही है; अर्थात् तू युवती हो रही है, अत तेरा घर के अन्दर बैठना ही ठीक है; अट्टाली पर चढना ठीक नही है, क्योकि इससे तेरी बदनामी होगी।

विशेष—१. 'बैरिनि' शब्द का प्रयोग आत्मीयता का सूचक है।
२. 'बैर चढै' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है।
३. अन्तिम पंक्ति में लक्षणा शब्द-शक्ति और असंगति अलंकार का प्रयोग भाववर्द्धक है।

सवैया

गोरस गाँव ही मैं बिचिबो तँचिबो नहीं नन्द-मुखानल झारन।
गैल गहे चलिये रसखानि तौ पाप बिना डरियै किहि कारन ॥
नाहिं री ना भटू, क्यों करि कै बन पैठत पाइबी लाज सम्हारन।
कुंजनि नन्दकुमार बसै तहाँ मार बसै कचनार की डारन ॥ २१८ ॥

शब्दार्थ—तचिबो=चलना। नद मुखानल भारन=ननद के मुह की आग की लपटें। गैल—मार्ग। भटू=सखी। मार=कामदेव।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से गोरस बेचने के लिए बाहर चलने के लिए कहती है। उसकी बात सुनकर वह सखी कहती है कि हे सखि ! मैं गोरस गाँव म ही बेचूँगी, क्योंकि ननद के मुख की आग की लपटों म जलना, ननद की फटकारें सुनना अच्छा नही है। जब मैं बाहर जाती हूँ तो मेरी ननद कृष्ण और मुझे लक्ष्य करके अनेक प्रकार की मर्मान्तक गालियाँ देती है। यह सुनकर वह गोपी कहती है कि हम अपने रास्ते चली जायेंगी। जब तुम्हारे मन मे कोई पाप ही नहीं है तो फिर तुम अपने मन मे क्यो डरती हो ? यह सुनकर फिर सखी कहती है कि सखि ! मैं तुम्हारे साथ नही चलूँगी, क्योंकि उस वन म घूमने पर जहाँ कृष्ण रहते हैं, किस प्रकार अपनी लाज सँभाली जा सकती है। वहाँ कु जो मे तो कृष्ण रहते हैं और कचनार की डालियो मे कामदेव निवास करता है।

कहने का भाव यह है कि उस वन का, जहाँ कृष्ण रहते हैं, वातावरण ही इतना मादक है कि वहाँ पहुँचते ही मन इतना कामपूर्ण हो जाता है कि फिर उचित अनुचित का ध्यान ही नही रहता। अत मुझे गाँव से बाहर निकलना उचित नहीं है।

सवैया

वार हीं गोरस बेचि री आजु तू माइ के मूड चढ़ै कत मौंडी।
आवत जात ही होइगी साँझ भटू जमुना मतरौंड लौ औंडी॥
पार गए रसखानि कहै अँखियाँ कहूँ होहिंगी प्रेम कनौडी।
राधे बलाइ ल्यौं जाइगी बाज अबै ब्रजराज सनेह की डौंडी॥ २१६॥

शब्दार्थ—वार हीं=इस पार ही। मौंडी=सखी। मतरौंड=मथुरा और वृन्दावन के बीच का एक स्थान। प्रेम कनौडी=प्रेम के वशीभूत।

अर्थ—एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि ! आज तू अपना गोरस नदी के इस पार ही बेच ले और नदी के उस पार न जा। क्योंकि यमुना पार से मतरौंड तक जाते आते ही साँझ हो जायेगी। दूसरा कारण यह है कि नदी के उस पार जाने पर आनन्द सागर कृष्ण मिल जायेंगे जिन्हे देखते ही न जाने आँखें प्रेम के वशीभूत हो जायें। फिर यह बात राधा तक भी पहुँच जायेगी और सारे ब्रज म कृष्ण के प्रेम की डोडी पिट जायेगी।

तुलना—'हाय दई न बिसासी सुनै कछु है जग बाजत नेह की डौंडी।'

—घनानन्द

कवित्त

ब्याही अनब्याही ब्रज माही सब चाही तासौं
दूनी सकुचाही दीठि परै न जुन्हैया की।
नेकु मुसकानि रसखानि को बिलोकत ही
चेरी होति एक बार कुजनि दिखैया की॥
मेरो कह्यौ मानि अन्त मेरो गुन मानिहै री,
प्रात खात जात ना सकात सौहै मैया की।
माई की अटक तौ लौं सासु की हटक जौ लौं
देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की॥ २२०॥

शब्दार्थ—जुन्हैया=चाँदनी। चेरी=दासी। हटक=बाधा।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण की छवि का वर्णन करती हुई कहती है कि ब्रज की जितनी भी विवाहित नारियाँ और अविवाहित युवतियाँ हैं सब कृष्ण को चाहती हैं, उससे प्रेम करती हैं। वैसे वे इतनी लज्जाशील हैं कि चाँदनी की दृष्टि भी उन पर न पड जाये, इसलिए दून सकोच के साथ वे अपने घर से बाहर निकलती हैं। किंतु उस तथा कुन्ज दिखाने वाले कृष्ण की तनिक सी मुस्कराहट को भी देख कर वे तुरन्त उसकी दासी बन जाती है। हे सखि। तुम मेरा कहना मानो और अन्त मे तुम मेरा अहसान स्वीकार करोगी। तुम्हे अपनी माँ की सौगन्ध है तुम कभी भी प्रातःकाल बिना खाना खाये बन मे न जाना अन्यथा वहाँ सारे दिन तुम्हे भूखा रहना पडेगा। भाई की बाधा और सासु की रुकावट मेरे मार्ग मे तब तक ही बनी हुई है जब तक उन्होने मेरे प्रिय कृष्ण की छवि को नही देखा है, अन्यथा वे स्वय भी उस छवि पर मुग्ध हो जायेंगी।

सवैया

मो हित तो हित है रसखान छपाकर जानहि जान अजानहि।
सोउ बचाव चल्यो चहुँघा चलि री चलि री खत सोहि निदानहिं॥
जो कहियैं लहियैं भरि चाहि हियै सहियैं हित काज कहा नहि।
जान दै सास रिसान दै नन्दहि पानि दै मोहि तू कान दै तानहि॥२२१॥

शब्दार्थ—मो हित तो हित है=मेरी भलाई तेरी ही भलाई मे है।

छपाकर=चन्द्रमा। चवाव=निन्दा। खत=हानि। निदानहिं=अन्त मे। जो चहियै नहियै भरि चाहि=यदि कृष्ण को प्रेम पूर्वक आंख भरकर देखना चाहती है। हित काज=प्रेम के लिए। पानि=हाथ।

अर्थ—कोई गापी अपनी सखी को शिक्षा देती हुई कहती है कि मेरी भलाई तेरी ही भलाई है। अर्थात् मैं जो कुछ कह रही हूँ वह सब तेरी ही भलाई के लिए कह रही हूँ। तू चन्द्रमा को जानकर भी अजान क्यों बनी हुई है, अर्थात् चन्द्रमा भावोद्दीपक है इस बात का जानकर भी तू कृष्ण से क्यों नही मिल रही है। तेरे कलंक की चर्चा चारो ओर चल रही है और इस चर्चा से अन्त मे तुझे ही हानि होगी अत तू चल कर कृष्ण से मिल। यदि तू कृष्ण को प्रेमपूर्वक आख भरकर देखना चाहती है तो तुझे सभी प्रकार की निन्दा सहन करनी होगी क्योकि प्रेम के लिए क्या कुछ नही सहा जाता। अत तू सास की चिन्ता छोड ननद को क्रुद्ध होने दे मुझे अपना हाथ दे, अर्थात् मेरे ऊपर विश्वास कर और कृष्ण की ताना को सुन, अर्थात् कृष्ण से मिल।

विशेष—१ तृतीय पंक्ति म यमक अलकार।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' म नही है।

सवैया

तेरी गलीन मैं जा दिन ते निकसे मन मोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग गो कौन सी बात चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत॥
वे रसखानि जो रीझिहैं नेकु तो रीझि कै क्यो न बनाइ रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत॥२२२॥

शब्दार्थ—गोधन=गोचारण का गीत। अंक=हृदय।

अर्थ—कृष्ण प्रेम स विमुख किसी गापी को उसकी सखी समझाती हुई कहती है कि जिस दिन स तेरी गली म स श्रीकृष्ण गोचारण का गीत गाते हुए निकले हैं उस दिन से न जाने ब्रज म लोगो न कौन सी बात चला दी है कि तेरे नेत्र ही चञ्चल बन्द हो गये हैं। यदि आनन्द सागर कृष्ण तुझ पर तनिक भी रीझ गये हैं तो तू अच्छी प्रकार स रिझाकर उन्हें अपने वश म क्यो नहीं करती, यदि तुझे प्रेम का कलंक लग ही गया है तो निर्भय होकर कृष्ण को अपने हृदय से क्यों नहीं लगाती?

विशेष—१. 'बात' का क्लिष्ट प्रयोग है।

२ अंतिम पंक्ति में शब्द एवं भाव छटा अनुपम है।

तुलना—१. 'कौन संकोच रह्यौ है निवाज,

जो तू तरसै उनहूँ तरसावत।

बावरी जो पै कलंक लग्यौ,

तौ निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावत।

—निवाज

२. विस्नु बिरंचि बिचारि मनावत,

गावत कीरति मोद पगावत।

बावरो जो पै कलंक लग्यौ

तो निसंक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत।'

—मोहन

३ होनी हुती सो तो होय चुकी,

इन बातन म अब लाभ कहा है।

लागे कलंकहु अंक नहीं,

तो सखि भूल हमारी महा है।'

—हरिश्चन्द्र

सवैया

जाहु न कोऊ सखी जमुना जल रोके खडो मग नन्द को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै रसखानि चलावत प्रेम को भाला॥
मैं जु गई हुती बैरन बाहर मेरी करी गति टूटि गो माला।
होरी भई कै हरी भए लाल कै लाल गुलाल पगी ब्रजबाला॥ २२३॥

शब्दार्थ—मग=मार्ग। नन्द को लला=कृष्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी को समझाती हुई कहती है कि हे सखि! किसी को भी यमुना जल भरने नही जाना चाहिए, क्योंकि कृष्ण मार्ग रोके हुए खडा है। वह अपनी आँखो को नचाकर मन को चचल बना कर प्रेम का भाला चलाता है। मैं जो बाहर निकल गई तो मेरी उस कृष्ण ने ऐसी दुर्गति की कि मेरे गले की माला भी टूट कर गिर गई। यह होनी है या कृष्ण के द्वारा हरण है, क्योंकि सभी ब्रजबालाएं कृष्ण के गुलाल से लाल हो रही हैं।

सोरठा

अरी अनोखी वाम तू आई गौने नई।
बाहर धरसि न पाय है छलिया तुव ताक मैं।२२४।

शब्दार्थ—अनोखी=सुन्दर। वाम=स्त्री। छलिया=कृष्ण। तुव ताक मैं=तेरी खोज में।

अर्थ—ब्रज में आई किसी नई गोपी को अन्य गोपी चेतावनी देती हुई कहती है कि हे सुन्दर नारी! तू नई नई गौने में आई है अत यहाँ की बातों को नहीं जानती। तू अपने घर से बाहर पैर न रखना, क्योंकि कृष्ण तेरी खोज में है। यदि तू उसे मिल गई तो वह तुझे अपने प्रेम बन्धन में बाँध लेगा।

संयोग वर्णन

सवैया

बिहरैं पिय प्यारी सनेह सने छहरैं चुनरी के फवा कहरैं।
सिहरैं नव जोवन रंग अनंग सुभंग अपांगनि की गहरैं॥
बहरैं रसखानि नदी रस की घहरैं बनिता कुल हू भहरैं।
कहरैं बिरही जन आतप सों लहरैं लली लाल लिये पहरैं॥२२५॥

शब्दार्थ—सनेह सने—प्रेम पूर्वक। फवा=फुँदने। फहरैं=गिरते हैं। सुभग=सुन्दर। अपांगनि=नेत्रों की कोरें। कहरैं=दुखी होते हैं। आतप=विरह दुख।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! कृष्ण प्रिया राधा के साथ प्रेमपूर्वक विचरण करते हैं जिनकी चुनरी के फुँदने छहर कर गिरते हैं। सुन्दर नेत्र-कोरों की गंभीरता से उसका नव-यौवन सिहरता है तथा प्रेम के कारण काम भावना उत्पन्न होती है। रसखान कहते हैं कि यहाँ पर आनन्द की नदी बहती है जिसके किनारों पर खड़ी ब्रज-बालाएँ काँपती हैं। उसके कारण विरही जनों का विरह दुख बढ़ता है और वे उससे दुखी होते हैं तथा कृष्ण राधा के साथ प्रसन्न हो रहे हैं।

विशेष—अनुप्रास चमत्कार।

सवैया

सोई हुती पिय की छतियाँ लगि बाल प्रवीन महा मुद मानैं।
केस खुले छहरैं बहरैं फहरैं छबि देखत मैन अमानैं ॥
वा रस मैं रसखानि पगी रति रैन जगी अँखियाँ अनुमानैं।
चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब कैरव कैरव पै मुकता प्रमानैं ॥२२६॥

शब्दार्थ—सोई हुई=सोई हुई थी। मद=प्रसन्नता। छहरैं=फैले हुए थे। बहरैं फहरैं=बाहर निकलकर हिल रहे थे। मैन=कामदेव अमानैं=अमान्य, तिरस्करणीय। चन्द=चन्द्रमा जैसा मुख। बिम्ब=कुंदरु आँखों की ललाई। कैरव=कुमुद आँखों के सफद कोए। मुकता—मोतियों के रात मे जागने के कारण आंसुओं के।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी के सुरतान्त का वर्णन करती हुई कहती है कि वह चतुर बाला अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपने प्रियतम की छाती से लगाकर सोई हुई थी। उसके खुले हुए केश बाहर निकलकर हिल रहे थे। उसकी शोभा को देखकर कामदेव भी तिरस्करणीय था। प्रिय के साथ आनन्द म डूबी रहकर रातभर जागने की बात का पता उसकी आँखों से चल रहा था। उसका अलसाया हुआ मुख लाल आँखें आँखों के सफेद कोए और रातभर जगाने के कारण जम्भाई के कारण निकले हुए आँसू ऐसे प्रतीत होते थे मानो चन्द्रमा पर बिम्ब बिम्ब पर कुमुद और कुमुद पर मोती हो।

विशेष—प्रतीप और रूपक अलंकार।

सवैया

अगनि अंग मिलाइ दोऊ रसखानि रहे लिपटे तरु छाहीं।
संगनि संग अनंग को रंग सुरंग सनी पिय दै गलबाहीं ॥
बैन ज्यौं मैन सु ऐन सनेह को लूटि रहे रति अन्तर जाहीं।
नीबी गहै कुच कंचन कुम्भ कहै बनिता पिय नाहीं जु नाहीं ॥२२७॥

शब्दार्थ—अनंग=कामदेव। रंग—प्रेम। सुरंग=उन्मादक। ऐन=घर।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से किसी अन्य गोपी के सुरत शृंगार का वर्णन करती हुई कहती है कि वे दोनों वृक्ष की छाया में अपने अंग से अंग मिला रहे थे। वह नायिका उसके साथ कामदेव के उन्मादक प्रेम म डूबकर

उसे बाहुपाश मे जकडे हुए थी। उसके वचन कामदेव के घर जान पडते थे, अर्थात् उसके वचनो से काम-भावना की अभिव्यक्ति हो रही थी। वे दोनों रति के अन्तर्गत प्रेम की लूट कर रह थे। जब उसका प्रिय उसकी नीवी को और कचन कुच-कुम्भो को ग्रहण करता था तो वह वनिता नही नहीं कर रही थी।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, रूपक अलकार।

तुलना— हाथन सों गहि नीवी कह्यौ पिय,
नाही जु नाही जु नाही जु नाही।'
—हरिश्चन्द्र

सवैया

आज अचानक राधिका रूप निधान सो भेंट भई बन माहीं।
देखत दीठि परे रसखानि मिले भरि अंक दियें गलबाहीं॥
प्रेम पगी बतियाँ दुहुँ घाँ की दुहूँ को लगी अति ही चितचाहीं।
मोहिनी मंत्र बसीकर जन्त्र हटा पिय की तिय की नहिं नाहीं॥२२८

शब्दार्थ—रूप निधान—सौन्दर्य-भण्डार। रसखानि—आनन्द सागर कृष्ण। अंक—बाहुपाश। प्रेम-पगी=प्रेमपूर्ण।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से राधा कृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! आज अचानक वन मे राधा और सौन्दर्य भण्डार कृष्ण की भेंट हो गई। आनन्द-सागर कृष्ण ने उसे देखते ही गलबाँही देकर बाहुपाश मे बाँध लिया। दोनों प्रेम-पूर्ण बातें करने लगे, दोनो के मन में ही मिलन की अत्यन्त प्रबल इच्छा थी। प्रियतम कृष्ण का 'हा हा करना' ही मोहिनी मंत्र था तो राधा का 'नहीं नहीं करना' वशीकरण मन्त्र था।

सवैया

वह सोई हुती परजंक लली लला लीनो सु आइ भुजा भरिकै।
अकुलाइ कै चौंकि उठी सु डरी निकरी चहै अंकनि तें फरिकै॥
झटका झटकी मैं फटी पटुका दर की अंगिया मुकता झरिकै।
मुख बोल कढ़े रिस मै रसखानि हटौ जू लला निबिया धरिकै॥२२६॥

शब्दार्थ—हुती=थी। परजंक=पर्यंक। अंकनि तें=भुजाओं में से। पटुका=दुपट्टा। दरकी=फट गई। मुकता=मोती।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी की सुरत का वर्णन करती हुई कहती है कि वह अपने पलग पर सोई हुई थी कि कृष्ण ने आकर उसे अपनी भुजाओ मे भर लिया। वह आकुल होकर चौक उठी, डर गई और फटक कर उसकी गोद से निकलने का प्रयत्न करने लगी। इस भटका भटकी मे उसका दुपट्टा फट गया, चोली भी फट गई और उसम से मोती टूटकर नीचे गिर पड़े। रसखान कहते हैं, तब उसन क्रोधपूर्वक कृष्ण से कहा कि हे कृष्ण! दूर हट जाओ, मेरी नीवी धड़क रही है।

विशेष—अनुभावो का सजीव एव स्वाभाविक वर्णन है।

सवैया

अँखियाँ अँखियाँ सौं सकाइ मिलाइ हिलाइ रिभाइ हियो हरिबो।
बतिया चित चोरन चेटक सी रस चारु चरित्रन ऊचरिबो॥
रसखानि के प्रान सुधा भरिबो अधरान पैं त्यों अधरा धरिबो।
इतने सब मैन के मोहिनी जन्त्र पै मन्त्र बसीकर सी करिबो॥ २३०॥

शब्दार्थ—सकाइ=सकाचपूर्वक। चेटक=जादू। चारु=सुन्दर। ऊचरिबो=उच्चरित करना, कटना। बसीकरण=वशीकरण। सी=सी सी की ध्वनि।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य सखी के सुख शृगार का वर्णन कहती हुई कहती है कि उसन सकोचपूर्वक अपने प्रियतम की आँखो से अपनी आँखें मिलाईं, गर्दन हिलाकर और उसके द्वारा अपने प्रिय को रिभाक उसने उसका हृदय अपने वश मे कर लिया। चित्त को चुरान वाल चोरो की सी जादू भरी बातें करक उसने रमणीय आनन्द दिया। अपने प्रिय के अधरो पर अपने अधर रखकर उसन उसके प्राणो म अमृत उडेल दिया। इतने सारे मोहने वाल कामदेव के मन्त्रो को अपनाकर भी उसने सी-सी ध्वनि करके अपने करने प्रियकर वशीकरण मन्त्र डाल दिया।

विशेष—यमक, उपमा अलकार।

सवैया

बागन काहे को जाओ पिया, बैठी ही बाग लगाय दिखाऊँ।
एड़ी अनार सी मौरि रही, बहियाँ दोउ चम्पे की डार नवाऊँ॥

छातिन मैं रस के निबुआ अरु घूंघट खोलि कै दाख चखाऊं।
टाँगन के रस के चसके रति फूलनि की रसखानि लूटाऊं ॥२३१॥

शब्दार्थ—मौरि रही=फूल रही है। दाख=द्राक्षा, अधर। टाँगन=छुहारा।

अर्थ—कोई नायिका नायक से कह रही है कि हे प्रियतम ! तुम बाग में क्यों जाते हो ? मैं घर बैठे ही तुम्हें बाग लगाकर दिखा सकती हूँ। मेरी एड़ियाँ अनार की भांति फूल रही हैं मानो ये ही अनार हैं। दोनों बाँहें ही मानो चम्पे की डालें हैं। छाती में उभरे हुए स्तन ही मानो रस भरे नीबू हैं। मैं घूंघट खोलकर तुम्हें द्राक्षा चखा सकती हूँ, अर्थात् मेरे अधरों के चुम्बन में द्राक्षा का आनन्द भरा हुआ है। रसखान कहते हैं कि जंघा रूपी छुहारों का रस तुम्हें चखा सकती हूँ और प्रेम की कलियाँ तुम पर लुटा सकती हूँ।

विशेष—वर्णन में काव्यात्मकता कम है और सांगरूपक की संयोजना का प्रयत्न अधिक है।

वियोग-वर्णन

सवैया

फूलत फूल सबै बन बागन बोलत मौर बसंत के आवत।
कोमल की किलकार सुनैं सब कंत बिदेसन तें सब धावत॥
ऐसे कठोर महा रसखान जु नेकहू मोरी ये पीर न पावत।
हूक सी सालत है हिय मैं जब बैरिनि कोयल कूक सुनावत॥२३२॥

शब्दार्थ—कंत=प्रियतमा। हूक=बरछी।

अर्थ—कोई विरहणी गोपी अपनी सखी से कहती है कि सारे बागों में फूल खिल गये हैं। वसन्त के आगमन के कारण भौंरे उन पर गूंज रहे हैं। कोयल की कू-कू सुनकर सबके प्रियतम कृष्ण इतने कठोर हैं कि मेरी विरह वेदना की तनिक भी चिन्ता नहीं करते। जब कोयल बोलती है तो उसकी कूक हृदय में बरछी के समान लगती है।

विशेष—१ उपमा अलंकार।
२ परम्परागत वर्णन।
३ यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

रसखान सुनाह् वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की ।
पंकज सौ मुख गौ मुरझाय लगी लपटै बरै स्वाँस हिया की ।।
ऐसे मे आवत कान्ह सुने हुलसैं सुतनी तरकी अँगिया की ।
यौं जग जोति उठी तन की उसकाय दई मनौ बाती दिया की ।।२३३।।

शब्दार्थ—सुनाह्=प्रियतम । ताप=दुख । पंकज=कमल । बरै=जलने लगी । हुलसैं=प्रसन्न हुई । सुतनी=दृढ डोर ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखि से किसी अन्य विरहिणी गोपी के विषय मे कह रही है । वह गोपी अपने प्रियतम के वियोग-दुख से इतनी दुखी थी कि उसके शरीर की शोभा भी मद पड गई थी । उसका कमल-जैसा मुख भी मुरझा गया था । उसके हृदय की साँसें लपट बनकर जलने लगी थी । इसी बीच उसने अपने प्रियतम के आगमन की खबर सुनी । वह इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी कचुकी की दृढ डोर भी कसमसाने लगी । उसका शरीर इस प्रकार शोभायुक्त हो उठा, मानो दीपक की बत्ती को उकसा दिया गया हो ।

विशेष—१ उपमा, उत्प्रेक्षा समाधि अलकार ।
२ सवैया २०० म भी यही उत्प्रेक्षा है ।
३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रन्थावली' मे नही है ।

सवैया

बिरहा की जु आँच लगी तन मे तब जाय परी जमुना जल मे ।
बिरहानल तै जल सूखि गयौ मछली बही छाँडि गई तल मे ।।
जब रेत फटी रु पताल गई तब सेस जर्‌यौ धरती-तल मे ।
रसखान तबै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगै गल मे ।।२३४।।

शब्दार्थ—बिरहानल=वियोग की आग । धरती-तल—पाताल लोक । आँच मिटै=दुख दूर होगा, ज्वाला शान्त होगी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अन्य विरहिणी गोपी का वियोग-दुख वर्णन करती हुई कहती है जब उसके शरीर मे वियोग-दुख की आग बढ गई तो वह उसे *शान्त करने के लिए यमुना जल में* कूद गई । तब विरह की आग के कारण यमुना का जल सूख गया और मछलियाँ जल के अभाव के कारण

यमुना के तल में बैठ गई। उस आग के कारण जब यमुना का जल अत्यन्त गर्म हो गया तो उसकी गरमी से पाताल-लोक में स्थित शेषनाग भी जलने लगा। रसखान कहते हैं कि यह ज्वाला तभी शांत हो सकती है जब कृष्ण उसके गले से आकर लगेंगे।

विशेष—१. ऊहात्मकता के कारण भाव-शून्यता।

२. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली' में नहीं है।

तुलना—*'प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पँह,*
लागत ही औरे गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सिवार जरि छार भयो,
जल जरि गयो पक सूख्यो भूमि दरकी।'
—ग्वाल कवि

सवैया

बाल गुलाब के नीर उसीर सों पीर न जाइ हियें जिन डारौ।
कंज की माल करौ जु बिछावत होत कहा पुनि चंदन गारौ॥
एते इलाज बिकाज करौ रसखानि को काहे को जारे पै जारौ।
चाहत हौ जु जिवायौ भटू तौ दिखावौ बड़ी बड़ी आँखिनिवारौ॥२३४॥

शब्दार्थ—गुलाब के नीर=गुलाब जल। उसीर=खस। गारौ=लेप। बिकाज=व्यर्थ। भटू=सखी।

अर्थ—कोई विरह-व्याकुल गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! मेरे हृदय मे गुलाबजल और खस छिड़कना बेकार है। कंजमाला का बिछावन करने से तथा चंदन का लेप करने से भी कोई लाभ नही है। ये सारे उपचार व्यर्थ हैं, वरन् ये तो मेरी जलन को और अधिक बढ़ाते हैं। हे सखि! यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहती हो तो मुझे विशाल नेत्र वाले कृष्ण का दर्शन करा दो।

विशेष—वर्णन परम्परागत है।

सवैया

काह कहूँ रतियाँ की कथा बतियाँ कहि आवत है न कछू री।
आइ गोपाल लियो भरि अंक कियो मनभायो पियो रस कू री॥

ताहि दिना सो गडी अँखियाँ रसखानि मेरे अग अग में पूरी ।
पै न दिखाई परे अब बावरी दै के वियोग विथा की मजूरी ।।२३६।।

शब्दार्थ—रतियाँ की=रात की । अक=गोद ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं रात की बातें तुमसे क्या कहूँ ? वे बातें तो कहने में ही नही आतीं । कृष्ण ने मुझे अपनी गोद मे भर लिया, उसने अपनी मनोकामना पूरी की, और रस का पान किया । उसी दिनसे उस आनन्द-सागर की आँखें पूर्णतया मेरे अग अग मे गडी हुई हैं, अर्थात् मैं उनकी शोभा को तनिक देर के लिए भी नही भूल पाती । किन्तु हे सखि ! वियोग-व्यथा को मजदूरी रूप मे देकर वह कृष्ण अब दिखाई नही पडता ।

विशेष—१ परम्परागत वर्णन है ।

२ 'बावरी' शब्द आत्मीयता का सूचक है।

कवित्त

काह कहूँ सजनी सँग की रजनी नित बीतै मुकुन्द कोंटे री ।
आवन रोज कहै मनभावन आवन की न कबौं करी फेरी ।
सौतिन-भाग बढ्यौ ब्रज मैं जिन लूटत हैं निसि रग घनेरी ।
मो रसखानि लिखी बिधना मन मारिकै आयु बनी हौं अहेरी ।।२३७।।

शब्दार्थ—मुकुन्द=कृष्ण । रग=आनन्द । बिधिना=ब्रह्मा । अहेरी=शिकारी ।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से सपत्नी भाव को प्रकट करती हुई कहती है कि हे सजनी ! मैं तुमसे अपनी व्यथा किस प्रकार प्रकट करूँ ? सारी रात कृष्ण की बाट देखत-देखते ही बीत जाती है । मनभावन कृष्ण रोजाना मेरे पास आने को कहते है, लेकिन उनकी मेरे यहाँ आने की कभी बारी ही नहीं आती । आजकल तो ब्रज मे वह सौत ही बहुत भाग्यशाली हैं जो कृष्ण के साथ रात को अत्यधिक आनन्द का भोग करती है । रसखान कहते हैं कि मेरे भाग्य में तो ब्रह्मा ने यही लिखा है कि मैं अपने-आपको मारने के लिए स्वय ही अपनी शिकारी बनी हुई हूँ ।

सवैया

प्यारे कन्हैया कहि कै कहिंगए बृषभान लली मो लला दृग जोरत ।
ता दिन तें अँसुवान की धार रुकी नही जद्यपि लोग निहोरत ।

वेगि चलो- रसखान बलाइ लौं क्यों अभिमानन भौंह मरोरत।
प्यारे। पुरन्दर होय न प्यारी अबै पल आधिक में ब्रज बोरत ॥२३८॥

शब्दार्थ—निहोरत=समझाते हैं। बलाइ लौं=बलैया लेती हूँ। पुरन्दर=इन्द्र। पल आधिक में=एकआध पल में। बोरत=डुबोना।

अर्थ—राधा की कोई सखी कृष्ण को समझाती हुई कहती है कि हे कृष्ण! तुम यह तो बताओ कि राधा से अपनी आँखें मिलाकर तुम उस पर क्या जादू कर आये हो क्योंकि उसी दिन से उसकी आँसुओं की धारा रुकी नहीं है, यद्यपि लोग उसे बहुत समझाते हैं। हे आनन्द-सागर कृष्ण! जल्दी चलो, मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ क्या अभिमान करके तुम रुक रहे हो। हे प्यारे! यदि तुम नहीं चले तो वह विरहिणी राधा अपने आँसुओं में एक-आध पल में ही इन्द्र बनकर सारे ब्रज को डुबो देगी।

विशेष—१ एक बार इन्द्र ने ब्रज-वासियों से रुष्ट होकर समूचे ब्रज को डुबो देने का संकल्प किया और मूसलाधार वर्षा शुरू कर दी। तब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर ब्रजकी रक्षा की। इस सवैया की अंतिम पंक्ति में इसी कथा की ओर संकेत है।

२ 'पुरन्दर होय न प्यारी' का एक अर्थ यह भी हो सकता है—राधा को इन्द्र मत समझो क्योंकि इन्द्र से तो तुमने गोवर्धन उठाकर ब्रज की रक्षा कर ली थी, पर राधा से किसी प्रकार भी उसे नहीं बचा पाओगे।

३ श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में यह सवैया नहीं है।

तुलना—१ 'सखी इन नैननि तैं घन हारे।
बिनहीं रितु बरषत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे
ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे
बदन सदन करि बसे बचन-खग, दुख पावस के मारे।
दुरि दुरि बूँद परत कंचुकि पर, मिलि अंजन सौं कारे।
मानौ परनकुटी सिव कीन्हीं, बिबि मूरति धरि न्यारे।
घुमरि घुमरि बरषत जल छाँड़त, डर लागत अँधियारे।
बूड़त ब्रजहिं सूर को राखै, बिनु गिरवरधर प्यारे॥'
—सूरदास

२ 'कहु रहीम उत जाय कै, गिरधारी सो टेरि।
अब दृग जल भरि राधिका, जहिं डुबावत फेरि॥'
—रहीम

३. 'लाडिली के अँसुवान को सागर,
बाढ़त जात मनो नभ छ्वै है।
बात कहा कहिए ब्रज की अब,
बूड़ीई ह्वै है कि बूडत ह्वै है॥'
—रघुनाथ

४ 'जानि ब्रज बूडत जू होते गिरिधारी तौ पे,
ब्रज म बढौते दुग-सोते कहो काहे के।'
—द्विजदेव

सवैया

गोकुल के बिछुरे को सखी दुख प्रान ते नेकु गयो नहीं काढ्यौ।
सो फिर कोस हजार तें आय कै रूप दिखाय दधे पर दाध्यौ।
सो फिर द्वारिका ओर चले रसखान है सोच यहै जिय गाढ्यौ।
कौन उपाय किये करि हैं ब्रज मे बिरहा कुरुखेत को बाढ्यौ॥२३९॥

शब्दार्थ—गोकुल के बिछुरे को=गोकुल गाँव त्यागने का। दधे पर दाध्यौ=जले हुए को और जलाया। कुरुखेत को बाढ्यौ=कुरुक्षेत्र में दिये गये दान के समान बढता ही जाता है। (पुराणो मे बताया गया है कि कुरुक्षेत्र मे किया गया दान आदि १३ दिन तक प्रतिदिन १३ गुनी वृद्धि को प्राप्त करता है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! अभी तक गोकुल गाँव से बिछुडने का दुःख ही अपने मन से नहीं निकाला गया था कि बहुत दूर से कृष्ण ने आकर अपना सौन्दर्य दिखाकर हमें जले हुओं को और जलाया अपने प्रेम-पाश मे बाँधकर वे फिर द्वारिका को चले गये। हमारे मन में अब यही दुख है कि ब्रज मे कुरुक्षेत्र मे दिये गये दान के समान नित्यप्रति बढते हुए इस विरह-दुख को किस प्रकार मिटाया जा सकता है।

विशेष—१. रूपक अलकार।

२ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान ग्रंथावली में नहीं है।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सजनी ! जब से मैंने यह सुना है कि मथुरा नगरी मे वर्षाऋतु आ गई है और कोयल तथा मोर प्रेम के स्वरो मे बोलने लगे है, तब से हर समय गोपियाँ चातक की भाँति पी-पी पुकार रही हैं। लेकिन हे सखि ! यह तो बताओ कि उस वैरी अहीर को (कृष्ण को) इन गोपियो की विरह-वेदना का कहाँ तक अनुभव हुआ है; वह तो अत्यन्त निष्ठुर और पाषाण-हृदय है।

विशेष—१ प्रकृति का उद्दीपन रूप मे परम्परागत वर्णन।

२. उपमा अलंकार।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नही है।

सवैया

मग हेरत धू धरे नैन भए रसना रट वा गुन गावन की।
अगुरी गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहि पावन की।
पथिकौ कोउ ऐसो जु नाहि कहै सुधि है रसखान के आवन की।
मनभावन आवन सावन म कही औधि करी डग बावन की ॥२४२॥

शब्दार्थ—मग हेरत=रास्ता देखते हुए। धूंधरे=धुंधले। रसना= जीभ। सगुनौती=शुभ शकुन। औधि=आने की अवधि। डग बावन की= वामनावतार के डगों की भाँति निरन्तर बढती हुई।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी विरहावस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! प्रियतम कृष्ण का रास्ता देखते हुए मेरे नेत्र धुंधले पड गये हैं, उसके गुणो का गान करती-करती जीभ थक गई है। उसके आने के दिनो को गिनती-गिनती अगुलियाँ थक गई हैं, लेकिन उनके आने का कोई भी शुभ शकुन प्राप्त नही होता। कोई भी ऐसा पथिक नही आता जो कृष्ण के आगमन का समाचार दे। कृष्ण सावन के महीने म आने को कह गये थे, पर अभी तक नही आये। उनके आने की अवधि तो वामनावतार की तरह निरन्तर बढती ही जा रही है।

विशेष—१ उपमा अलकार।

२. विरह का परम्परागत वर्णन।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सजनी ! जब से मैंने यह सुना है कि मथुरा नगरी में वर्षाऋतु आ गई है और कोयल तथा मोर प्रेम के स्वरों में बोलने लगे है, तब से हर समय गोपियाँ चातक की भाँति पी-पी पुकार रही है। लेकिन हे सखि ! यह तो बताओ कि उस बैरी अहीर ने (कृष्ण को) इन गोपियों की विरह-वेदना का कहाँ तक अनुभव हुआ है; वह तो अत्यन्त निष्ठुर और पाषाण-हृदय है।

विशेष—१. प्रकृति का उद्दीपन रूप में परम्परागत वर्णन।

२. उपमा अलकार।

३ यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-ग्रन्थावली' में नहीं है।

सवैया

मग हेरत धूधरे नैन भए रसना रट वा गुन गावन की।
अगुरी गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहि पावन की।
पथिकौ कोउ ऐसो जु नाहि कहै सुधि है रसखान के आवन की।
मनभावन आवन सावन मे कही औधि करी डग बावन की ॥२४२॥

शब्दार्थ—मग हेरत=रास्ता देखते हुए। धूधरे=धुंधले। रसना=जीभ। सगुनौती=शुभ शकुन। औधि=आने की अवधि। डग बावन की=वामनावतार के डगों की भाँति निरन्तर बढती हुई।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से अपनी विरहावस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि ! प्रियतम कृष्ण का रास्ता देखते हुए मेरे नेत्र धुंधले पड़ गये हैं; उसके गुणों का गान करती-करती जीभ थक गई है। उसके आने के दिनों को गिनती-गिनती अगुलियाँ थक गई हैं, लेकिन उनके आने का कोई भी शुभ शकुन प्राप्त नही होता। कोई भी ऐसा पथिक नही आता जो कृष्ण के आगमन का समाचार दे। कृष्ण सावन के महीने में आने को कह गये थे, पर अभी तक नही आये। उनके आने की अवधि तो वामनावतार की तरह निरन्तर बढ़ती ही जा रही है।

विशेष—१. उपमा अलकार।

२. विरह का परम्परागत वर्णन।

३. यह सवैया श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान-

सवैया

भेती जु पै कुबरी ह्यां सखी भरी लातन मूका बकोटती लेती।
लेती निकारि हिये की सबै नक छेदि कै कौडी पिराइ कै देती॥
देती नचाई कै नाच वा रांड कों लाल रिझावन को फल सेती।
सेती सदां रसखानि लियें कुब्री के करेजनि सूलसी भेती॥२४६॥

शब्दार्थ—भेती=होती। बकोटती लेती=चोट लेती।

अर्थ—कुब्जा के प्रति आक्रोश दिखाती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! यदि यहाँ पर वह कुब्जा होती लात घूँसे मारकर उसे मोह लेती। अपने हृदय का सारा गुस्सा लेती और उसकी नाक को छेद कर उसम कौडी पहिना देती। उस रांड का मैं नाच नचा देती और कृष्ण कोई रिझाने का फल देती। इस प्रकार मैं सदैव आनद-सागर कृष्ण की सेवा करती जिससे कुब्जा के हृदय म मैं सदैव कांटे की भांति वसकती रहती।

विशेष— १ मुक्त पदग्रहय यमक।
२ नारी मन के आक्रोश का स्थान का स्वाभाविक चित्रण।

तुलना—'नीच जाति लौंडी जाका बसर सा काम कहा,
दोऊ ओर छद नाक कौडी एक डारती।
दांतनि सो काटि काटि लातन सो मारि मारि,
कुजा को कूबरो करेजो हौं निकारती।
—अज्ञात

कुवलियापीड-वध

सवैया

कस के क्रोध की फैलि रही सिगरे ब्रजमडल मांझ फुकार सी।
आइ गए कछना कछिकै तबही नट नागर नदकुमार-सी॥
द्वैरद को रद खैंचि लियौ रसखानि हिय माहि लाइ विमार सी।
लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कलक तमाल तें कीरति डार सी॥२४७॥

शब्दार्थ—फुकार=फुफकार। द्वैरद=हाथी, कुवलिया पीड। रद=दांत

अर्थ—इस सवैया म कवि कुवलयापीड के वध का वर्णन करता हुआ कहता है कि कस के क्रोध की आग सारे ब्रज म फुफकार की तरह फैल रही थी और उसने कृष्ण को मरवाने के लिए कुवलयापीड स उनका युद्ध निश्चित

कर दिया था। उससे युद्ध करने के लिए कृष्ण कछनी बाँध कर आ गये। रसखान कहते हैं कि उन्होंने अपने मन में विचार कर के उस हाथी का दाँत लिया और उन्होंने उसे तमाल की डाली की भाँति तोड़ दिया। कृष्ण का यह कार्य ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होंने कलंकरूपी तमाल वृक्ष जैसे तुच्छ स्थान पर लगी कीर्तिरूपी शाखा को तोड़ दिया हो।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

पाठान्तर—'इस सवैया की तृतीय पंक्ति का यह रूप भी मिलता है

'रद्ध दुरद्ध को ऐंच लियौ रसखान यहे, मन आइ बिचार सौ।'

उद्धव-उपदेश

सवैया

जोग सिखावत आवत है वह कौन कहावत को है कहाँ को।
जानति हैं बर नागर है पर नेकहु भेद लख्यौ नहिं ह्याँ को॥
जानति ना हम और कछू मुख देखि जियैं नित नन्दलला को।
जात नहीं रसखानि हमैं तजि राखनहारी है मोरपखा को॥२४८॥

शब्दार्थ—बर=श्रेष्ठ। नन्दलला=कृष्ण।

अर्थ—निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आए हुए उद्धव को देख कर गोपियाँ परस्पर कहती हैं कि योग की शिक्षा देता हुआ जो व्यक्ति आ रहा है, यह कौन है? उसका क्या नाम है? कहाँ वह रहता है? यद्यपि हम जानती हैं कि वह कोई श्रेष्ठ आदमी है, तथापि इसका हमको तनिक भी भेद (परिचय) ज्ञात नहीं है। यह चाहे कितना ही योगोपदेश करे, पर हम तो इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती कि हम नित्य कृष्ण के दर्शन करके ही जीवित रहती हैं, रसखान कहते हैं कि कृष्ण हमसे नहीं त्यागे जाते, क्योंकि वे मोर मुकुटधारी कृष्ण ही हमारे रक्षक हैं।

सवैया

अंजन मंजन त्यागौ अली अंग धारि भभूत करौ अनुरागैं।
आपुन भाग कर्‌यौ सजनी इन बावरे ऊधो जू का क्‌ै लागैं॥
चाहै सो और सबै करियैं जु कहै रसखान सयानप आगैं।
जो मन मोहन ऐसी बसी तो सबै री कहौ मुख गोरस जागैं॥२४९॥

शब्दार्थ—अंजन मंजन=शृंगार। करौ अनुरागैं=प्रेम करो। सयानप=

चतुराई। गोरख जागैं=गोरखपथी गोरख जागैं का नाद किया करते हैं।

अर्थ—गोपियाँ उद्धव के उपदेश का परिहास करती हुई कहती हैं कि हे सखि! अब शृंगार करना छोड़ दो और भस्म से प्रेम करके उसे ही अपने अंगों पर धारण करो। हे सजनि! जब हमारे भाग्य में कृष्ण की प्रीति लिखी हुई है तो इस पागल उद्धव को क्या ईर्ष्या होती है। इस चतुराई के आगे और चाहे हम कुछ भी कर लें पर जब हमारे हृदय में कृष्ण बसा हुआ है तो उसकी प्रीति हमसे नहीं छूट सकती। इस पर भी यह उद्धव कहता है कि हम सब कृष्ण की प्रीति छोड़ कर गोरख जाग का नाद करती रहें।

विशेष—यह सवैया श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रसखान-ग्रन्थावली में नहीं है।

सवैया

लाज के लेप चढ़ाइ कै अंग पची सब सीख को मन्त्र सुनाइ कै।
गाडरू ह्वै ब्रज लोग थक्यौ करि औषद वेसक सौहैं दिखाइ कै॥
ऊधो सौं रसखानि कहै जिन चित्त धरो तुम एते उपाइ कै।
कारे बिसारे को चाहैं उतार्यो अरे विख बावरे राख लगाइ कै॥२५०॥

शब्दार्थ—पची=कोशिश की। गरुड=साँप का विष उतारने वाला। वेसक—उत्तमोत्तम। कारे=कृष्ण को। विख=विष।

अर्थ—उद्धव से निर्गुण ब्रह्म का उपदेश सुनकर गोपियाँ उससे कहती हैं कि हे उद्धव! हम सबने लाज का लेप अपने अंगों पर लगाने की कोशिश का सभी प्रकार के मंत्र सुनाए ब्रज के लोग गरुड बन कर भी थक गये सौगन्ध दिला कर उत्तमोत्तम औषधियाँ खाईं पर इतने उपाय करने पर भी हमारा कृष्ण प्रेम रूपी विष नहीं उतर सका अर्थात् हम कृष्ण को नहीं छोड़ सकीं। हे कारे! तुम उसी विषैले नाग रूपी कृष्ण का विष योग की भस्म से उतारना चाहते हो?

कहने का भाव यह है कि जब इतने अधिक उपाय करने पर भी हम कृष्ण प्रेम से विमुख नहीं हुई तो तुम्हारा योगोपदेश भी यहाँ पर कोई कार्य नहीं करेगा।

तुलना—१ सावरे साप डसीहैं सबै तिन्हैं नाम सा मूढ़ि उतारें कहा विष'
—व्रजनिधि

२ स्याम वियोग तैं उद्धव जू छतियाँ फटी ता म मयूष भरो जू।"
—सोमनाथ

सवैया

सार की सारी सो पारी लगै धरिबे कहँ सीस बघम्बर पैया।
हांसी सो दासी सिखाइ लई है वेई जु वेई रसखानि कन्हैया॥
जोग गयो कुबजा की कलानि मैं री कब ऐहैं जसोमति मैया।
हाहा न ऊधो कुढ़ाओ हमें अब हीं कहि दै ब्रज बाजै बधैया॥२५१॥

शब्दार्थ—सार=लोहा। बाघम्बर=बाघ की खाल। पैया=पाया हुआ।

अर्थ—उद्धव का निर्गुण गुरू का उपदेश सुनकर गोपियां उनसे कहती हैं कि हे उद्धव! तुम हम सीम पर बाघम्बर धारण करने को कहते हो पर वह बाघम्बर हमें लोटे की साड़ी से भी भारी लगता है। जिसम हसी हँसी मे कुब्जा को अपने वश मे कर लिया है वे ही—केवल वे ही हमारे आनन्द सागर कृष्ण हैं। तुम्हारा योग तो कुब्जा की चतुरता मे दब गया। हे उद्धव! हमे बहुत दुख है। तुम हम अधिक दुखी न करो। हम अभी कह देती हैं कि ब्रज मे बधाई के बाजे बाजें।

ब्रज-प्रेम

सवैया

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्ध नवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
ए रसखानि जबै इन नैनन ते ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुन्जन ऊपर वारौं॥ २५२॥

शब्दार्थ—या=उस। लकुटी=लाठी। तिहूँ पुर को=तीनो लोको को। सिद्ध=अलौकिक शक्ति, सिद्धियाँ आठ मानी गई हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। अणिमा सिद्धि से योगी अणुरूप धारण करके अदृश्य हो जाता है। महिमा सिद्धि से योगी अपने देह का चाहे जितना विस्तार कर सकता है। गरिमा सिद्धि से योगी अपने शरीर का चाहे जितना भार बढा सकता है। लघिमा सिद्धि से योगी चाहे जितना छोटा और हलका हो सकता है। प्राप्ति सिद्धि से प्रत्येक पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। प्राकाम्य सिद्धि से योगी जो चाहता है, वही हो जाता है। ईशित्व सिद्धि के बल पर दूसरो पर प्रभुत्व किया जा सकता है। वशित्व के सिद्धि के बल पर चाहे जिसको वश मे किया जा सकता है। निधि=अपूर्व वैभव,

विधियाँ नौ मानी गई हैं—पद्म, महापद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व । कोटिक=करोडो । कलधौत के धाम=सोने चांदी के महल । ये=सासारिक प्रभुता के प्रतीक ।

अर्थ —द्वारिका मे रह कर कृष्ण को ब्रज की याद आ गई है । वे व्यथित होकर रुक्मणी से कह रहे हैं कि उस लाठी और कामरी के लिए मैं तीनो लोक का राज्य एक दम छोड देने को तैयार हूँ नन्द की गाय चराने के लिए अणिमा आदि आठों सिद्धियो के तथा पद्म आदि नवो निधियों के सुख का त्याग करने को उद्यत हू । जब स मैंने अपनी इन आँखो से ब्रज के वन और तालावो को देखा है अर्थात् मुझे उनकी याद आई है तब से मैं उसके लिए इतना आतुर हो गया हूँ कि मैं वैभव के प्रतीक इन करोडा सोन चादी के महलो को ब्रज के करील कु जा के ऊपर न्यौछावर करता हूँ ।

विशेष – 'ब्रज के बन-बाग और करील की कु जन' म छेकानुप्रास है ।

पाठान्तर—ए रसखानि कबौ इन आँखिन सा ब्रज के बान बाग तड़ाग निहारो ।

कोटि कई कलधौत के धाम करील की कु जन ऊपर वारौं ।"

कवित्त

ग्वालन सग जैबो बन एबो सु गायन सग,
हेरि तान गैबो हा हा नैन वहकत हैं ।
ह्याँ के गज मोती माल वारो गु ज मालन पै
कु ज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं ॥
गोवर को गारो सु तो माहि लागै प्यारो कहा,
भयो मौन सागे के जटित मरकत हैं ।
मदर ते ऊँचे यह मदिर है द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिय मरकत है ॥२५३॥

शब्दार्थ —जैबो=जाना । एबो=आना । हेरि=देखकर । गैबो=गाना । जटित मरकत=रत्नों स जडे हुए । मदर=मदराचल । खिरक=गोशाला ।

अर्थ—ब्रज का स्मरण आन पर कृष्ण रुक्मणी स अपन ब्रज प्रेम को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वन म ग्वालों क सग जाना, वहाँ स गायों के साथ लौटना, ब्रज के सुन्दर दृश्यो को देख कर बाँसुरी बजाना आज भी मेरी

भाखो मे करकते हैं, अर्थात् उन घटनाम्रो की स्मृति से मुझे बहुत दुख होता है। यहाँ पर मुझे गज मोतियो की जो मालायें मिली हुई हैं, इन्हें मैं उन गुन्जमालाम्रो के ऊपर न्योछावर कर सकता हूँ। जब भी मुझे ब्रज के कुंजो की याद आती है तो मेरे अग धडकने लगते हैं। वहाँ के गोबर का गारा भी मुझे इतना प्रिय है कि उसके सामने रत्नो से जड़े हुए ये सोने के भव्य भवन भी नगण्य हैं। वह सच है कि द्वारिका के ये राजमहल मदिराचल (पर्वत) से ऊँचे हैं। फिर भी ब्रज की गोशालाओं की याद मेरे हृदय को कुरेदती रहती है।

विशेष—यह कवित्त श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'रसखान ग्रन्थावली मे नही है।

गंगा-महिमा

सवैया

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।

मुरली मधुरी धुनि आधिक ओठ पै आधिक नन्द से बाजत री॥

रसखानि पितम्बर एक कँधा पर एक बाघम्बर राजत री।

कोउ देखउ सगम लै बुडकी निकसे यहि मेख सो छाजत री॥२५४॥

शब्दार्थ—किरीट=मुकुट। लसै=सुशोभित है। नागन के गन=सर्पों के समूह। आधिक=आधा। नाद=शृगी।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से गगा महिमा का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि! उसके सिर पर एक ओर तो मुकुट सुशोभित है और दूसरी ओर सर्पों के समूह फुंकार रहे हैं। एक ओर आधे ओठ पर मधुरी मुरली बज रही है और दूसरी ओर आधे ओठ पर शृगी बज रही है। रसखान कहते हैं कि उनके एक कन्धे पर पीला वस्त्र है और दूसरे पर बाघ की खाल सुशोभित है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण गगा और यमुना मे डुबकी लगाकर इस सुन्दर रूप को धारण करके निकले हो।

विशेष—यह माना जाता है कि गगा मे स्नान करने से शिवरूप की और यमुना मे स्नान करने से कृष्णरूप की, तथा सगम (गगा-यमुना) मे स्नान करने से हरिहर (शिव-कृष्ण) रूप की प्राप्ति होती है।

सवैया

वैद की औषध खाइ कछू न करै बहु संजम री सुनि मोसें।
तो जल पान कियौ रसखानि सजीवन जानि लियौ रस तोसें।
ए री सुधामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य बनै तोहिं पोसें।
आक धतूरो चबात फिरै बिष खात फिरै सिव तेरे भरोसें ॥२५५॥

विशेष—औषध=औषधि। संजम=संयम। भागीरथी=गंगा। पथ्य=परहेज। अपथ्य=बद परहेज। पोसें=प्रसन्न करने पर।

अर्थ—कवि रसखान गंगा की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे गंगे! जिस व्यक्ति पर तुम्हारी कृपा हो जाती है, उस न तो वैद्य की औषधि खाने की आवश्यकता है और न किसी प्रकार का संयम करने की ही जरूरत है। रसखान कहते हैं कि तेरे जल को पीने से संजीवन शक्ति और अपार आनन्द प्राप्त होता है। हे अमृत जल से युक्त गंगे! तेरे प्रसन्न करने पर बदपरहेज भी परहेज के समान लाभदायक बन जाता है। इसीलिए तेरे भरोसे पर शिव आक और धतूर को चबाते है तथा विष को खाते हैं।

तुलना—बाँधे जटाजूट बैठि परवत कूट माँहि,
महाकाल कूटे वहाँ कैस के ठहरतो।
पीवै नित भंग रहै प्रेतन के संग ऐसे,
पूछतो को नंग जो न गंग सीस धारतो।'
—पद्माकर

शिव-महिमा

सवैया

यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सों धूलि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अटकै लटकै फनि सों कफनी फहरावत हैं।
रसखानि जेई चितवैं चित दै तिनके दुखदुंद भजावत हैं।
गज खाल कपाल की माल बिसाल सो गाल बजावत आवत हैं ॥२५६॥

शब्दार्थ—पात=पत्ते। फनि=सर्प। कफनी=एक प्रकार का वस्त्र जिसे साधु पहनते हैं। भजावत हैं=नष्ट करते हैं।

अर्थ—कवि रसखान शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि यह देखो शिव धतूरे के पत्ते चबाते हैं तथा शरीर में धूलि लगाते हैं। उनकी जटाएँ

चारो ओर बिखर कर लटक रही हैं। उनके गले म पडा हुआ सर्प साधु-वस्त्र के समान दिखाई दे रहा है। रसखान कहते हैं कि जो मन लगाकर शिव की इस मूर्ति का देखते हैं, शिव उनके दुखो को नष्ट करते है। वे गज की खाल ओढे, कपालो की माला पहने हुए गाल बजाते हुए आते है।

प्रेम-वाटिका

दोहा

प्रेम अयनि श्री राधिका, प्रेम बरन नदनंद।
प्रेम-वाटिका के दोऊ माली मालिन द्वंद ॥ १ ॥

शब्दार्थ—प्रेम-अयनि=प्रेम धाम। प्रेम-बरन=प्रेम का साक्षात् रूप। द्वंद=युगल, जोडा।

अर्थ—रसखान कवि राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराधा प्रेम का धाम है और कृष्ण प्रेम का साक्षात् रूप हैं। अत राधा और कृष्ण का जोडा प्रेम-वाटिका के मालिन और माली का जोडा है।

विशेष—रूपक अलकार।

दोहा

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोइ।
जो जन जानैं प्रेम तौ परैं जगत क्यौं रोइ ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—सब लोग प्रेम प्रेम चिल्लाते हैं, अर्थात् प्रेमी होने का दावा करते हैं और प्रेम की महत्ता का बखान करते हैं पर वास्तविकता तो यह है कि वे प्रेम के सच्चे स्वरूप को नही जानते। यदि व्यक्ति प्रेम के सच्चे स्वरूप से परिचित हो जाय ससार रो रोकर न मरे, अर्थात् इसमें कोई कष्ट एव बाधा न रहे।

दोहा

प्रेम अगम अनुपम अमित सागर सरिस बखान।
जो आवत यहि ढिग बहुरि जात नाहि रसखान ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अगम=अगम्य। अमित=अपार। सरिस=समान। ढिग=समीप। बहुरि=फिर।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम को अगम्य, अनुपम, अपार और सागर के समान गम्भीर समझना चाहिए। जो व्यक्ति इस प्रेम-सागर के पास आ जाता है, वह फिर इसमें दूर नहीं जाता, अर्थात् जो प्रेमी बन जाता है, वह फिर प्रेम के बन्धन से नही छूट पाता।

विशेष—उपमा अलकार।

दोहा

प्रेम वारुनी छानि कैं, बरन भरा जल धीस।
प्रेमहि तें विष-पान करि, पूजे जात गिरीस ॥४॥

शब्दार्थ—वारुन=शराब। बरुन=वरुण। जलधीस=जल का देवता।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम की शराब छानने के कारण वरुण जल के देवता बन गये और प्रेम से ही विष को पी लेने के कारण शिव की पूजा होती है।

दोहा

प्रेम रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।
या मैं अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल ॥५॥

शब्दार्थ—दर्पन=दर्पण, शीशा। अजूबो=अजीब, अद्भुत।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम रूपी दर्पण मे अद्भुत खेल रचा हुआ है, क्योकि इसमे अपना स्वरूप कुछ कुछ अनमेल-सा दिखाई देता है।

दोहा

कमल-तन्तु सो छीद अरु, कठिन खडग की धार।
अति सूधो टेढो बहुरि, प्रेम पथ अनिवार ॥६॥

शब्दार्थ—कमल ततु=कमल का रेशा। छीन=क्षीण, पतला। खडग=तलवार। बहुरि=फिर। अनिवार=अनिवार्य।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कवि कहते हैं कि प्रेम पथ अनिवार्य रूप से विलक्षण है। यह कमल के रेशे के समान पतला और तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होता है। यह अत्यन्त सीधा भी है और टेढ़ा भी है।

विशेष—उपमा अलकार।

तुलना—१ अति छीन मृनाल के तारहु तें
तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा
तरवार की धार पै धावनो है। —बोधा
२ कमल तन्तु की नाल सो जाको मारग छीन। —हरीश्चन्द्र
३ पच अगनि सहिबौ सुगम सुगम खड्ग की धार।
इक रस प्रीति निबाहिबौ महाकठिन ब्यौहार॥ —दोहा सारसंग्रह

दोहा

लोक वेद मरजाद सब लाज काज सन्देह।
देत बहाए प्रेम करि विधि निषध को नेह॥७॥

शब्दार्थ—मरजाद=मर्यादा। काज=कार्य लौकिक कर्म। नेह=स्नेह।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि लोक की मर्यादा तथा वेदों की मर्यादा लज्जा लौकिक कार्य और संशय ये सब प्रेम करने में दूर हो जाते हैं क्योंकि प्रेम विधि और निषेध दोनों रूपों से मुक्त है।

दोहा

कबहूँ न जा पथ भ्रम तिमिर, रहै सदा सुख चन्द।
दिन दिन बाढ़त ही रहत होत कबहूँ नहिं मन्द॥८॥

शब्दार्थ—भ्रम तिमिर=सन्देह का अन्धकार।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि इस प्रेम पथ में कभी भी सन्देह का अन्धकार नहीं रहता बल्कि सदा सुख का चन्द्रमा चमकता रहता है। यह चन्द्रमा प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है और कभी भी मन्द नहीं पड़ता। कहने का भाव यह है कि प्रेम में सदा सुख ही मिलता है।

तुलना—कबहूँ हान नहिं भ्रम निसा इक रस सदा प्रकास। —हरिश्चन्द्र

दोहा

भले वृथा करि पचि मरौ ज्ञान गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीकौ सबै कोटिन कियेँ उपाय॥९॥

शब्दार्थ—पचि=प्रयत्न करके। ज्ञान गरूर=ज्ञान का गर्व। कोटिन=करोड़ों।

अर्थ—प्रेम विहीन ज्ञान व्यर्थ है इस बात का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि ज्ञान का गर्व करके चाहे उसकी महत्ता का प्रतिपादन करने के लिए मानो मनुष्य प्रयत्न करता हुआ मर जाय, पर वह व्यर्थ ही सिद्ध होता है क्योंकि चाहे करोड़ों प्रयास किये जायें, बिना ज्ञान के प्रेम फीका ही होता है।

दोहा

स्रुति पुरान आगमन स्मृतिहि प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय प्रेम बीज अंकुवार ॥१०॥

शब्दार्थ—स्रुति=वेद। आगम=शास्त्र। स्मृतिहि=स्मृति शास्त्र। अंकुवार=अंकुर।

अर्थ—रसखान कवि प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रेम वेद, पुराण शास्त्र, स्मृति इन सभी का सार है। बिना प्रेम के हृदय में प्रेम बीज का अंकुर अंकुरित नहीं होता।

दोहा

आनंद अनुभव होत नहि बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषमानन्द के कै ब्रह्मानन्द बखान ॥११॥

शब्दार्थ—कै=चाहे। विषयानन्द=लौकिक पदार्थों से युक्त। ब्रह्मानन्द=भगवद्विषयक।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि इस संसार में बिना प्रेम के आनन्द नहीं मिल पाता। प्रेम चाहे लौकिक पदार्थों से युक्त हो या भगवद्विषयक हो वह दोनों ही अवस्थाओं में आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

क्योंकि प्रेम को अनुकूल बनाये बिना भगवत्प्रेम की ओर उन्मुख हुए बिना, दृढ़ निश्चयात्मिका बुद्धि उत्पन्न नहीं होती।

दोहा

सास्त्रन पढ़ि पंडित भए, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यौ नहीं, कहा कियौ रसखान ॥१३॥

शब्दार्थ—सास्त्रन=शास्त्रों को। जु पै=यदि।

अर्थ—प्रेम के बिना सारा ज्ञान व्यर्थ है, इस बात का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि व्यक्ति चाहे शास्त्रों को पढ़कर पंडित बन जाये या कुरान को पढ़कर मौलवी बन जाये। लेकिन यदि उसने प्रेम-तत्व को नहीं जाना है तो उसका यह ज्ञान पूर्णतया व्यर्थ है।

तुलना— पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥—कबीर

दोहा

काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥१४॥

शब्दार्थ—काम=काम-भावना। मद=अहंकार। द्रोह=शत्रुता मत्सर्य ईर्ष्या। परे=दूर। मुनिवर्य=मुनि प्रवर।

अर्थ—प्रेम सब प्रकार के भावों से श्रेष्ठ है और अशुद्ध भावों से दूर है इसका प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि काम भावना, क्रोध, अहंकार ममता, भय, लोभ, शत्रुता और ईर्ष्या इन सभी भावों से प्रेम दूर होता है अर्थात् प्रेम में ये भाव नहीं होते। यह मुनिप्रवरों का मत है।

दोहा

बिन गुन जोबन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि।
सुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥१५॥

शब्दार्थ—गुन=गुण। जोबन=यौवन। बिन स्वारथ हित=स्वार्थ भाव से रहित। कामना=इच्छा। कामना तें रहित=निष्काम। रसखानि=आनन्द का धाम।

अर्थ—प्रेम के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम बिना गुण के, यौवन के, रूप के, धन के, स्वार्थ-लाभ से रहित, शुद्ध और निष्काम होता है, वही सच्चा प्रेम है और ऐसा ही प्रेम सुख का धाम है।

है, अर्थात् सहज प्रेम ही सच्चा एवं सुखकारक प्रेम होता है।

दोहा

अति सूक्षम कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस भरपूर ॥१६॥

शब्दार्थ—सूछम=सूक्ष्म। पतरो=पतला, क्षीण। अति दूर=अगम्य। इकरस=एक-सा रहने वाला।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि सच्चा प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म, कोमल, क्षीण और अगम्य होता है। यह सदैव एक-सा रहने वाला और परिपूर्ण होता है। ऐसा प्रेम सबसे कठिन होता है।

दोहा

जग मैं सब जान्यौ परै, अरु सब कहै कहाइ।
मैं जगदीस 'रु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाइ ॥१७॥

शब्दार्थ—जान्यौ परै=जाना जासकता है। कहै कहाइ=कहा जा सकता है। अकथ=अकथ्य।

अर्थ—प्रेम और ईश्वर की समानता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि इस संसार की सारी वस्तुएँ जानी जा सकती हैं, अर्थात् सारी वस्तुएँ बोधगम्य हैं और सारी वस्तुएँ कही जा सकती हैं, अर्थात् वर्णनीय है, किन्तु ईश्वर और प्रेम ये दोनों अकथ्य एवं अप्रदर्शनीय हैं। अर्थात् इन दोनों का न तो वर्णन ही किया जा सकता है और न ये दोनों देखे ही जा सकते हैं। कहने का भाव यह है कि प्रेम ईश्वर की भाँति सूक्ष्म एवं दुर्बोध है।

दोहा

जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं, जान्यौ जात बिसेष।
सोइ प्रेम, जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेष ॥१८॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस प्रेम को जाने बिना और किसी वस्तु का बोध नहीं होता और जिसे जानने पर विशेष ज्ञान हो जाता है वही प्रेम है जिसका बोध होने पर और कुछ जानने के लिए शेष नहीं रह जाता। कहने का भाव यह है कि प्रेम सब ज्ञानों का मूल आधार है।

दोहा

दम्पति-सुख अरु विषय-रस, पूजा निष्ठा ध्यान ।
इन तें परे बखानियै, सुद्ध प्रेम रसखान ॥१६॥

शब्दार्थ—दम्पति-सुख=गृहस्थ जीवन का आनन्द । विषय-रस=सांसा रिक पदार्थों से प्राप्त आनन्द । निष्ठा=धार्मिक विश्वास । ध्यान=ध्यान धारणा आदि । परे=दूर, रहित ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि गृहस्थ जीवन के आनन्द से, सांसारिक पदार्थों से प्राप्त आनन्द से, पूजा से धार्मिक विश्वास से, ध्यान धारणा आदि से रहित शुद्ध प्रेम होता है जो आनन्द का सागर है ।

दोहा

डरै सदा चाहे न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानो सोय ॥२२॥

शब्दार्थ—चाहि कै=इच्छा करके।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेमी सदैव इस भावना को लेकर डरता रहे कि कहीं उसके प्रेम में चूक न हो जाये, जो किसी भी प्रकार की स्वार्थ-भावना से रहित हो, जो सब प्रकार की विपत्तियों को सहने के लिए तैयार हो, जो सदैव इच्छा करके एक ही रस में डूबा हुआ हो, ऐसे ही व्यक्ति को सच्चा प्रेमी कहा जाता है और उसी का प्रेम शुद्ध प्रेम कहलाता है।

दोहा

प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥२३॥

शब्दार्थ—फाँस=चुभने वाला काँटा। तरफि=तड़प कर।

अर्थ—प्रेम वेदना का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि सभी लोग प्रेम-प्रेम चिल्लाते हैं, अर्थात् प्रेमी होने का दावा करते हैं, पर वे यह नहीं जानते कि प्रेम की फाँस बड़ी दुखदाई होती है। इसमे प्राण तड़पते ही रहते हैं, पर निकलते नहीं इसके आघात से मनुष्य मृतप्राय हो जाता है और उसके केवल उच्छ्वास चलते रहते हैं।

दोहा

प्रेम हरी को रूप है, त्यौं हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप ॥२४॥

शब्दार्थ—द्वै=दो होकर। लसैं=सुशोभित होते हैं।

अर्थ—प्रेम और परमात्मा के एक स्वरूप का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस प्रकार प्रेम परमात्मा का रूप है, उसी प्रकार परमात्मा भी प्रेम का स्वरूप है। एक होकर भी दोनों दो रूपों में इस प्रकार सुशोभित हैं जैसे सूरज और उसकी धूप।

विशेष—उदाहरण अलंकार।

दोहा

ग्यान ध्यान विद्या मती, मत बिस्वास विवेक।
बिना प्रेम सब धूरि हैं, अगजग एक अनेक ॥२५॥

शब्दार्थ—मती=मति, बुद्धि। विवेक=ज्ञान। अगजग एक अनेक=इस चराचर सृष्टि में प्रेम एक होकर भी अनेक है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि ज्ञान, ध्यान, विद्या, विविध मतो का विश्वास और विवेक सब बिना प्रेम के धूलि के समान निरर्थक हैं, क्योंकि प्रेम ही वह तत्त्व है जो ब्रह्म की भाँति इस ससार में एक होते हुए ही अनेक रूपो मे दिखाई देता है।

विशेष—रूपक अलकार।

दोहा

प्रेम फाँस मैं फसि मरै, सोई जिए सदाहि।
प्रेम परम जाने बिना, मरि कोइ जीवत नाहि ॥२६॥

शब्दार्थ—फाँश=फदा। परम=रहस्य।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रेम के बन्धन मे बँध कर मर जाता है वह सदैव जीवित रहता है, अर्थात् प्रेम के बन्धन मे बँधकर व्यक्ति अमर हो जाता है। कोई भी व्यक्ति जो प्रेम के रहस्य को नही जानता, वह मर कर जीवित नहीं रहता।

विशेष—विरोधाभास अलकार।

दोहा

जग मैं सब तैं अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहूँ तैं अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२७॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि इस ससार मे सबसे अधिकम मत्व शरीर मे प्रति देखा जाता है, परन्तु प्रेम इस शरीर से भी अधिक प्यारा होता है।

दोहा

जेहि पाएँ बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥२८॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस प्रेम को प्राप्त करके बैकुंठ की ओर भगवान का भी इच्छा नहीं रहती, उस ही अलौकिक, शुद्ध शुभ और सरस प्रेम कहा जाता है।

दोहा

कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा भाला तीर कोउ, कहत अनोखी ढार ॥२९॥

शब्दार्थ—नेजा=बरछी।

अर्थ—प्रेम के विविध रूप हैं, इसी बात का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि कोई व्यक्ति तो इस प्रेम को फाँसी बताता है, कोई तलवार, कोई बरछी, भाला और तीर, तथा कोई इसे अनोखी ढाल बताता है।

दोहा

पै मिठास या मार के, रोम-रोम भरपूर।
मरत जियै झुकतौ थिरै, बनै सु चकनाचूर ॥३०॥

शब्दार्थ—झुकतौ=गिरना। थिरै=स्थिर होना, सभलना।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम की चोट गहरी होते हुए भी मधुर होती है। इसकी चोट से मनुष्य का रोम-रोम माधुर्यपूर्ण आनन्द से भरपूर हो जाता है, प्रेम मे मरने वाला व्यक्ति ही जीवित रहता है प्रेम में गिरता हुआ व्यक्ति ही सम्भलता है। जो व्यक्ति अपना अहंकार पूर्णतया नष्ट करके प्रेम की ओर उन्मुख होता है, उसी का जीवन सुधर जाता है।

विशेष—विरोधाभास अलंकार।

दोहा

पै एतोहू हम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ॥३१॥

शब्दार्थ—अजूबो=अजीब, अद्भुत। जाँबाजी=प्राणों की बाजी।

अर्थ—प्रेम की विलक्षणता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि हमने केवल इतना सुना है कि प्रेम अद्भुत खेल है यह वही खेल है जिसमें प्राणों की बाजी लगाकर दिल से मेल किया जाता है।

दोहा

सिर काटौ छेदौ हियो, टूक टूक करि देहु।
पै याके बदले जिहँसि, वाह वाह ही लेहु ॥३२॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम की कठिनता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि जब व्यक्ति अपने सिर को काट लेता है और हृदय को छेद कर टूक टूक कर लेता है तब उसके बदले में उसे प्रशंसा मिलती है, अर्थात् वही व्यक्ति प्रेमी होकर प्रशंसा का पात्र बनता है।

दोहा

अकथ कहानी प्रेम की जानत लैली खूब।
दो तनहूँ जहँ एक भे मन मिलाइ महबूब ॥३३॥

शब्दार्थ—अकथ=अकथ्य। लैली=लैला मजनू की प्रेमिका। महबूब=प्रेमी।

अर्थ—प्रेम की कहानी अकथनीय है जिसे मजनू की प्रेमिका लैला अच्छी तरह जानती है। प्रेम वह वरदान है जो दो प्रेमियों के तन को तथा मन को मिलाकर एक कर देता है।

दोहा

दो मन इक होते सुन्यौ पै वह प्रेम न आहि
होइ जबै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि ॥३४॥

शब्दार्थ—आहि=है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि यद्यपि मैंने प्रेम में दो मनों को एक होते हुए सुना है, लेकिन यह वास्तविक प्रेम नहीं है। जब दो शरीर एक हो जाते हैं, तो उसे ही प्रेम कहते हैं।

'प्रेमानन्द प्रकारेण द्वैत विस्मरण गतम्।'

तुलना—१ 'आसिक मासूक ह्वै गया, इस्क कहावै सोय।
दादू उस मासूक का, अल्ला आसिक होय॥'—दादूदयाल

दोहा

याही तें सब मुक्ति तें लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भए नसि जाहिं सब बँधे जगत के नेम ॥३५॥

शब्दार्थ—याही तें=इसी कारण से। लही=प्राप्त की। नसि जाहिं=नष्ट हो जाते हैं। नेम=नियम।

अर्थ—प्रेम में दो शरीरों को एक करने की शक्ति होती है इसी कारण से प्रेम ने मुक्ति से भी अधिक प्रशंसा प्राप्त की है अर्थात् प्रेम का स्थान मुक्ति

से भी ऊँचा है। प्रेम के होने पर ससार के सारे बँधे हुए नियम नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् प्रेमी ससार के किसी भी नियम को नही मानता।

दोहा

हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम अधीन।
याही तें हरि आपुही, याहि बडप्पन दीन ॥३६॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम भगवान से भी बडा है, इसी बात का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि ससार के सब प्राणी भगवान के वश मे हैं पर भगवान प्रेम के वश मे होते हैं। इसीलिए स्वय भगवान् से अपने-से अधिक प्रेम को महत्ता प्रदान की है।

तुलना—१ हरि व्रज जन आधीन है, व्रजजन हरि आधीन।'—नागरीदास

२ 'स्वामी ते सेवक बडो, जो निज धर्म सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गए हनुमान ॥'—तुलसी

दोहा

वेद मूल सब धर्म यह, कहैं सबै श्रुतिसार।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार ॥३७॥

शब्दार्थ—स्रुतिसार=वेदो का तत्व। अनिवार=अनिवार्य।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि वेद सब धर्मों का मूल है, परन्तु प्रेम को श्रुतियो का तत्व कहा जाता हैं। इसलिए प्रेम परम धर्म और अनिवार्य तत्त्व है।

जदपि जसोदानन्दन अरु ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग मैं प्रेम कौं गोपी भईं अनन्य ॥३८॥

शब्दार्थ—जसोदानन्दन=कृष्ण। अनन्य=अद्वितीय।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि यद्यपि कृष्ण का प्रेम पाने से कृष्ण, ग्वाल-बाल आदि सब धन्य हैं, किन्तु इस ससार मे अत्यधिक प्रेमिका होने के कारण गोपियाँ अद्वितीय बन गई हैं, अर्थात् उनके समान कोई नही है।

तुलना—कबिरा कबिरा क्या कहै, जा जमुना के तीर।
इक इक गोपी प्रेम पै, बहिगे कोटि कबीर ॥'—कबीर

दोहा

या रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि ।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि ॥३९॥

शब्दार्थ—वा रस की=प्रेमानन्द की । बहुरि=फिर ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेमानन्द का कुछ माधुर्य उद्धव ने सराह कर ग्रहण किया था। जो माधुर्य उद्धव को प्राप्त हो गया है, अब उस माधुर्य को फिर से कौन प्राप्त कर सकता है ?

दोहा

स्रवन कीरतन दरसनहिं, जो उपजत सोइ प्रेम ।
सुद्धासुद्ध बिभेद तें, द्वैविध ताके नेम ॥४०॥

शब्दार्थ—स्रवन=श्रवण सुनना । सुद्धासुद्ध=शुद्ध और अशुद्ध । द्वैविध =दो प्रकार के । नेम=नियम ।

अर्थ—प्रेम के भेदा का निरूपण करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम श्रवण, कीर्तन और दर्शन से उत्पन्न होता है, वही शुद्ध और अशुद्ध, निष्काम और सकाम ये दो प्रकार के प्रेम होते हैं ।

दोहा

स्वारथमूल असुद्ध त्यों सुद्ध स्वभावऽनुकूल ।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल ॥४१॥

शब्दार्थ—स्वारथमूल=स्वार्थ-भावना से युक्त । स्वभावऽनुकूल=सहज भाव से । प्रस्तार करि=विस्तार से । तूल=विस्तार ।

अर्थ—प्रेम के दो भेद होते हैं—शुद्ध और अशुद्ध । शुद्ध और अशुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम स्वार्थ-भावना से युक्त होता है, उसे अशुद्ध प्रेम कहते हैं और जो सहज भाव से होता है उसे शुद्ध प्रेम कहते हैं । नारद आदि महर्षियों ने इन दोनो प्रकार के प्रेमों का वर्णन विस्तार से किया है ।

दोहा

रसमय स्वाभाविक बिना, स्वारथ अचल महान ।
सदा एकरस सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान ॥४२॥

शब्दार्थ—रसमय=आनन्द से पूर्ण । स्वाभाविक=सहज । एकरस= निरन्तर समान रहने वाला ।

अर्थ—शुद्ध प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो प्रेम आनन्द से पूर्ण, सहज, निष्काम, अचल, महान् और निरन्तर समान रहने वाला होता है, जो कभी घटता नहीं है, वह शुद्ध प्रेम कहलाता है।

दोहा

जातें उपजत प्रेम सोइ, बीज कहावत प्रेम।
जामें उपजत प्रेम सोइ, क्षेत्र कहावत प्रेम ॥४३॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जिस कारण से प्रेम उत्पन्न होता है, उसे प्रेम का बीज कहते हैं और जो प्रेम का आश्रय होता है, उसे प्रेम का क्षेत्र कहते हैं।

दोहा

जातें पनपत बढ़त अरु, फूलत फलत महान।
सो सब प्रेमहिं प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ॥४४॥

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—प्रेम के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि-जिससे प्रेम उत्पन्न होता है, बढ़ता है, फूलता तथा बढ़ता है और महान् बनता है, यह सब प्रेम ही होता है।

दोहा

वही बीज अंकुर वही, सेक वही आधार।
डाल पात फल फूल सब, वही प्रेम सुखसार ॥४५॥

शब्दार्थ—सेक=सिंचन।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम ही बीज है, वही अंकुर है, वही सिंचन है, वही आधार है, वही डाल, पात, फल, फूल और सुख का सार है।

दोहा

जो जातें जामें बहुरि, जा हित कहियत बेष।
सो सब प्रेमहिं प्रेम है, जग रसखानि असेष ॥४६॥

शब्दार्थ—बहुरि=फिर। बेष=श्रेष्ठ। असेष=पूर्णरूप से।

अर्थ—प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए रसखान कहते हैं कि जो, जिससे और फिर जिसमें जगत् का सौन्दर्य, श्रेयता, महत्ता, उत्कृष्टता आदि गुण विद्यमान हैं, वे सब इस चराचर सृष्टि में प्रेम-रूप से भासित हैं।

दोहा

कारज कारन रूप यह, प्रेम अहै रसखान ।
कर्ता कर्म क्रिया करन, आपहि प्रेम बखान ।।४७।।

शब्दार्थ—कारज=कार्य । कारन=कारण, साधन ।

अर्थ—प्रेम की महत्ता एवं व्यापकता का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम ही जगत् का कारण है, अर्थात् जगत की उत्पत्ति प्रेम से ही हुई है और जगत् की रचना रूप कार्य भी प्रेममय है। प्रेम ही कर्ता, कर्म, क्रिया और भगवान् का रूप है।

दोहा

देखि गदर हित-साहिबी दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छोरि रसखान ।।४८।।

शब्दार्थ—हित साहिबी=प्रभुत्व के लिए । ठसक=झूठा गर्व ।

अर्थ—अपने जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हुए रसखान कहते हैं कि दिल्ली में प्रभुत्व के लिए विप्लव देखकर तथा दिल्ली को उजड़ा हुआ देखकर पठान बादशाहों के वंश का झूठा गर्व खंडित होते देखकर मैंने दिल्ली छोड़ दी।

दोहा

प्रेम निकेतन श्रीबनहिं आइ गोवर्धन-धाम ।
लह्यौ सरन चित चाहिकैं जुगल सरूप ललाम ।।४९।।

शब्दार्थ—प्रेम निकेतन=प्रेम धाम । श्रीबनहिं=वृन्दावन में । गोवर्धन धाम=व्रज का एक प्रख्यात स्थान । चित चाहिकैं=उत्कंठा पूर्वक । जुगल-सरूप=राधा और कृष्ण का रूप । ललाम=सुन्दर ।

अर्थ—अपने वृन्दावन निवास की घटना की ओर संकेत करते हुए रसखान कहते हैं कि दिल्ली छोड़कर मैं प्रेम धाम वृन्दावन में आकर गोवर्धन नामक स्थान पर बस गया और वहीं राधा-कृष्ण के सुन्दर रूप की उत्कंठापूर्वक शरण ग्रहण की अर्थात् राधा कृष्ण की भक्ति में तल्लीन होगया।

दोहा

तोरि मानिनी तें हियो फोरि मोहिनी मान ।
प्रेमदेव की छबिहि लखि भए मियाँ रसखान ।। ५०।।

शब्दार्थ—प्रेमदेव=कृष्ण। छविहिं=शोभा को।

अर्थ—कृष्ण-भक्ति की ओर अपना प्रेम प्रदर्शित करते हुए रसखान कहते हैं कि मान करने वाली नारी का हृदय तोड़कर, अर्थात् उसके प्रेम के बंधनों को छोड़कर और मन को मोहित करने वाली स्त्रियों के गर्व को चूर्ण करके तथा कृष्ण की शोभा को देखकर मुसलमान-धर्मावलम्बी रसखान कृष्ण-भक्ति में तन्मय हो गये।

दोहा

विधु सागर रस इन्दु सुभ, बरस सरस रसखान।
प्रेम वाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान ॥५१॥

शब्दार्थ—विधु सागर रस इन्दु=सवत् १६७१। रुचिर=सुन्दर।

अर्थ—रसखान कहते हैं कि मैंने उल्लसित होकर इस सरस और सुन्दर प्रेम वाटिका की रचना शुभ वर्ष में सवत् १६७१ वि० में की।

दोहा

अरपी श्री हरि चरन जुग पुहुप पराग निहार।
विचरहिं या मैं रसिकबर, मधुकर निकर अपार ॥५२॥

शब्दार्थ—अरपी=अर्पित की। पुहुप पराग=कमल-केसर। मधुकर-निकर=भौरो का समूह।

अर्थ—रसखान कहते हैं कि मैंने यह प्रेम-वाटिका श्रीकृष्ण के दोनों चरणो के कमल-केसर को देखकर उनको अर्पित की। आशा है कि अपार भौरो के समूह रूपी रसिकवर इसमें विचरण करेंगे, अर्थात् इससे आनन्द प्राप्त करेंगे।

दोहा

(शेष पूरण)

राधा-माधव सखिन सग, बिरहत कुंज-कुटीर।
रसिकराज रसखानि तहँ, कूजत कोइल कीर ॥५३॥

शब्दार्थ—माधव=कृष्ण। कोइल=कोयल। कीर=तोता।

अर्थ—रसखान कहते हैं कि राधा और कृष्ण अन्य सखियो के साथ कुंज-कुटीरो में विचरण करें और वहाँ पर रसिकराज रसखान कोयल तथा तोते के रूप में कूजता रहे।

दानलीला

सवैया

आवत हौ रस के चसके तुम जानत हौ रस होत कहा हो।
नैसक वै रस भीजन दैहौ दिना दस के अनवले लला हो।
अस यही दिन आवेंगे भूमि गुवालिन ही के जु संग सखा हो।
ल्यौगे कहा इन बातन तें घर जाव लला अब ही लरका हो ॥१०॥

शब्दार्थ—चसके=लोभ से। नैसक=थोड़ा-सा। लरका=अबोध

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे कृष्ण तुम मेरे पास रस के लोभ से आये हो लेकिन तुम यह नहीं जानते कि रस क्या होता है? अभी तो तुम दस दिन के अलबेले लड़के हो, अर्थात् बच्चा के हो अतः स्वयं को थोड़ा-सा रस में तो भीगने दो, अर्थात् वह अवस्था तो आने दो, जब रसास्वादन का बोध हो आता है। अतः वे ही दिन आयें जब तुम ग्वालिनों के साथ घूमकर रस का आनन्द लोगे। अतः तुम अभी इन बातों से क्या लोगे। तुम अभी अबोध हो, इसलिए अपने घर चले जाओ

सवैया

सुनिकै यह बात हियें गुनि कै तब बोलि उठि वृषभान-लली ।
कही कान्ह अजान भए बन मे कहूँ माँगत दान कि छेकि गली ।।
मग आइ कै जाइ रिसाइ कहा तुम एकऊ बात कही न भली ।
हम है वृषभानपुरा की लली अब गोरस बेचन जात चली ।।३।।

शब्दार्थ—गुनि कै=सोचकर । वृषभान-लली=राधा । गोरस=दही ।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर और उन्हें अपने हृदय मे सोचकर राधा कहती है कि हे कृष्ण ! आज तुम अजान बन गये हो, जो बन मे हमारा मार्ग रोकते हो । तुम हमारा मार्ग ही रोकना चाहते हो, अथवा कुछ माँगना चाहते हो । मार्ग मे आकर और अपनी इच्छा पूरी न हो सकने के कारण तुम क्रोधित होकर क्यो जाते हो ? तुमने तो एक भी बात ठीक नहीं कही । हम राजा वृषभानु की पुत्री है और अब दही बेचने के लिए जा रही हैं । तुम्हारे रोके से हम नही रुक सकती ।

सवैया

एरी कहा वृषभानुपुरा की तौ दान दियें बिन जान न पैहौ ।
जौ दधि-माखन देव जू चाखन भूमत लाखन या मग ऐहौ ।
नाहिं तौ जो रस सो रस लैहो जु गोरस बेचन फेरि न जैहौ ।
नाहक नारि तू रारि बढावति गारि दियें फिरि आपहि दैहौ ।।४।।

शब्दार्थ—लाखन=लाखो बार । नाहक=व्यर्थ मे । आपहि दैहौ=आप भी खाओगी ।

अर्थ—राधा की चुनौती सुनकर कृष्ण कहते है कि तुम मुझे वृषभानु की पुत्री होने का क्या भय दिखाती हो ? मैं बिना कर दिये तुम्हें यहाँ से जाने न दूँगा । यदि तुम मुझे खाने के लिए दही और मक्खन दे दोगी, तो इस मार्ग से लाखो बार निडर होकर निकल जाओ, कोई तुम्हे कुछ न कहेगा । यदि तुम अपनी मर्जी से मुझे गोरस नही दोगी तो जो तुम्हारे पास गोरस है, वह तो मैं छीन ही लूँगा, और फिर तुम्हे इस मार्ग से कभी भी जाने नहीं दूँगा । हे नारी ! तुम व्यर्थ मे ही झगड़ा करती हो । यदि तुम मुझको गाली दोगी तो उनके बदले मे स्वयं भी गाली खाओगी ।

कवित्त

गारी के देवैया बनवारी तुम कहो कौन,
हम तौं वृषभान की कुमारी सब जानो है।
जोर तौ करौगे जाइ जासो हरि पार पाइ,
भुरही तें आज मो सौं कैसो हठ ठानो है।
बूझि देखौ मन माहिं अरुझत मग जात,
बूझिहौ निदान काहू जौन कहो मानो है।
मेरे जान कोऊ मीरखान आयें दही छीनै,
तू तौ है अहीर मोहिं नाहिं पहिचानो है ॥५॥

शब्दार्थ—गारी=गाली। जोर=बल प्रयोग। पार पाइ=पार पाना, काय की सिद्धि होना। भुरही तें=प्रातःकाल से ही। अरुझत=झगड़ना। मीरखान=राज्य के उच्च अधिकारी।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण! तुम गाली देने वाले कौन होते हो अर्थात् तुम्हें गाली देने का क्या अधिकार है। सब लोग इस बात को जानते हैं कि हम राजा वृषभानु की पुत्री हैं और इसलिए हम गाली देना आसान नहीं है। हे कृष्ण! यदि बल प्रयोग करना ही है तो उससे करो जिससे तुम्हारी काय सिद्धि हो जाये। आज न जाने तुमने क्यों प्रातःकाल से ही मेरे साथ झगड़ा शुरू कर दिया है। तुम अपने मन में सोचकर देख लो कि रास्ते में किसी से भी झगड़ा करना उचित नहीं है। यदि तुम्हें मेरा विश्वास न हो तो जिसका तुम्हें विश्वास है उसी से बात को पूछकर देख लो। मैं तो यह जानती हूँ कि राज्य का कोई उच्च अधिकारी ही दही छीनने के लिए आ सकता है। पर तुम तो केवल अहीर हो, अर्थात् साधारण-सी जाति के पुत्र हो और तुम मुझ को नहीं पहिचान रहे हो।

विशेष—व्यंग्यात्मकता के द्वारा प्रभावोत्पन्न।

कवित्त

नाहूँ पहचानों वृषभान हूँ को जानों नेकु
काहू की न नेरो मानों हों अहीर एसो हौं।
मारन को मारि मान तारिहौं गुमान सैहौं
आज लोगों दान सैहौ दानियें मु ऐसो हौं।

फोरिहों मटूकी माट लै दही करौंगो लूट
जहो कोने सु तो घाट घाट रोवे बैठो हौं।
कहा कहो राध तोहि अजहूँ न चीन्है मोहि
मेरी ओर देखि नेकु दानी कान्ह कैसो हौं॥ ६॥

शब्दार्थ—नेकु=तनिक भी। सका=डर। गोरस को=सरदारों को। गुमान=गर्व। मटूकी=मटकी छोटा घड़ा। माट=घड़ा। बैसो हौं=बैठ गया हूँ। चीन्है=पहिचानना। दानी=कर (टैक्स) लेने वाला।

अर्थ—राधा की बातें सुनकर कृष्ण कहते हैं कि हे राधा! मैं तुझे भी जानता हूँ और तेरे पिता वृषभानु को भी जानता हूँ लेकिन मैं ऐसा अहीर हूँ कि किसी का भी डर नहीं मानता। राज्य के सरदारों को मार कर जिनका तुम घमण्ड करती हो तुम्हारा गर्व चूर्ण कर दूँगा। आज मैं तुमसे दान लेकर ही रहूँगा और फिर तुम्हें मेरी शक्ति का पता चलेगा। मैं तुम्हारे छोटे और बड़े घड़ों को फोड़कर तुम्हारी दही को लूट लूँगा और फिर तुम चाहे जितने शिकायत करो मैं इसी रास्ते पर बैठा हुआ हूँ डर कर कहीं भागूँगा नहीं। हे राधा! मैं तुमसे क्या कहूँ? तुम आज भी मुझे नहीं पहिचान रही हो। मेरी ओर तो देखो तुम्हें पता चलेगा कि तुमसे कर लेने वाला कृष्ण कैसा है।

कवित्त

जोहौं मैं तिहारी ओर नन्दगाव के किसोर
माखन के चोर तुम गोकुल के बासी हौ।
जसुदा तिहारी माइ ऊखल सों बाधी जाइ
दानी पै कहाए आइ भए कामरासी हौ।
कस सों कहौगो जाइ मांगिहौं तुमैं घराइ
रहौगे कहाँ छिपाइ जो बड़े मवासी हौ।
गोरस को दान हम आजहूँ न सुन्यो कान
काहे लाल हम सों करत रोज रासी हौ॥ ७॥

शब्दार्थ—जोहै=देखती हूँ। कामरासी—काम भावना से युक्त। तुमैं घराइ=तुमको पकड़ा लाने के लिए। मवासी=सुरक्षित दुर्ग।

अर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण! मैं तुम्हारी ओर देखती हूँ और तुम्हें पहिचानती भी हूँ। तुम नन्द गाँव के युवक हो मक्खन के चोर हो और गोकुल के निवासी हो। यशोदा जिसने तुम्हें ऊखल

से बाँध दिया था, तुम्हारी मा है। आज तुम यहाँ आकर कर लेने वाले बन गये हो और काम भावना से युक्त हो गये हो। मैं कंस से तुम्हें बन्दी बनाने के लिए विनती करूँगी और फिर तुम सुरक्षित दुर्गों में भी नहीं छिप सकोगे, क्योंकि कंस तुम्हें बन्दी बनाकर ही रहेगा। हमने कभी यह नहीं सुना कि दही पर भी कर लगता है, अतः हमारे साथ प्रतिदिन परिहास करना ठीक नहीं है।

कवित्त

दान पै न कान सुनि लैहों सो गुमान भजि,
हाँसी पर हाँसी परहाँसी आज करौंगो।
जेती तुम ग्वालिनि तितेक सब रोकि राखौं,
जमुना की ओटि पै जु सबै काम सरौंगो।
जाको तू कहति कंस ताहि को करौं बिघस,
हौं तो जदुबंस बीर काहू सो न डरौंगो।
भूषन उतारि चीर फारि चीर डारि दैहौं,
नन्द की दुहाई खात टेक सो न टरौंगो ॥८॥

शब्दार्थ—भजि=चूर्ण करना। सरौंगो=पूर्ण करूँगा। बिघस=विध्वंस। टेक सो=प्रण से।

अर्थ—राधा की बातें सुनकर कृष्ण कहते हैं कि यदि तुम दान देने की बात को नहीं सुनोगी तो मैं तुम्हारा गर्व चूर्ण कर दूँगा और तुम्हारी विविध प्रकार से हाँसी करूँगा। जितनी तुम ग्वालिन हो, उन सबको मैं रोक लूँगा और यमुना की ओट में अपने सब कार्यों को पूर्ण करूँगा। जिस कंस की तुम मुझे धमकी दिखलाती हो, उसका नाश कर दूँगा। मैं यदुवंश का वीर हूँ, इसीलिए किसी से भी नहीं डरूँगा। तुम्हारे भूषणों को उतार कर तुम्हारे चीर के टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा। मैं नन्द बाबा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि अपने प्रण से तनिक भी नहीं हटूँगा, अर्थात् प्रण पूरा करके रहूँगा।

कवित्त

नन्द को न दासी हम जातिहू मैं नाहीं कम,
एक गाँव बसौं स्याम भोर भए बादी हौ।
जमुना के तीर तुम चीर हू चुराइ रहौ,
काहू की न लाज धारौ मोर कि पगादी हौ।

रोकत हौ टोकत हौ बाट माहि साट खाह
माट फोरि खाटौ दही यही गुन खादी हो।
जौ कहूँ वैठारिहौ न पारिहौ रुग्राव माहि
नोन की न गोन ली है ग्रादी हूँ न लादी हो ॥६॥

शब्दार्थ—भोर भए=भोले होकर। खादी=झगडालू। ग्रोर के=भारी। फसादी=झगडा करने वाले। साट खाह=दूसरों का धन लूटना। ग्रादा=स्वभाव वाले। रुग्राव=रौब। नोन=नमक। गोन=माल लादने की बोरी। ग्रादी=ग्राद्रक अदरक।

ग्रर्थ—कृष्ण की बातें सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण न तो हम नन्द की दासी हैं जिस प्रकार तुम हो ग्रौर न तुमसे जाति में ही कम हैं। हम सब एक ही गाँव के रहने वाले हैं लेकिन तुम भोले बनकर भी झगडालू हो ग्रर्थात केवल देखने में ही भोले दिखाई देते हो ग्रन्यथा तुम तो स्वभाव से झगडालू हो। तुमने यमुना के किनारे पर जाकर स्नान करती हुई गोपियों के वस्त्र चुरा लिये थे। इस ग्रधम कार्य को करके भी तुम्हें लज्जा नहीं ग्राई। तुम तो भारी झगडा करने वाले हो। दूसरों का धन लूटने के लिए तुम उनका रास्ता रोकते हो उन्हें टोकते हो। तुम्हारा ग्रब यह स्वभाव बन गया है कि तुम मटका फोडकर दही खाने वाले बन गये हो। जो तुम्हें कहीं बैठाया जाय तो तुम रौब भी नहीं दिखा सकते ग्रर्थात तुम्हारा व्यक्तित्व भी प्रभावशाली नहीं है। फिर यह भी समझ लो कि हम गोन में नमक ग्रौर ग्रदरक भरकर लादने के ग्रादी नहीं हैं ग्रर्थात हम कोई साधारण व्यापारी नहीं हैं यदि तुम हमें छेडोगे तो तुम्हें इसका बहुत मूल्य देना पडेगा।

कवित्त

मैरो को करै नियाव ही तो तीनि लाक राव
हमैं घेरो मोटो चाव दाव भलो पायो है।
वृन्दावन कुंज माहि कदम की छाँह चलो
ग्रब भरि भेंटि लेहु जैसो मन ग्रायो है।
हीरा मनि मानिक को काँच ग्रौर मोतिन की।
मोतिन की गान की जगात हों लगायो है।
गोरस तो हर हर माहू पीयौ बार बेर,
दसहू ग्रनोनो रूप दानी कान्ह पायो है ॥१०॥

शब्दार्थ—नियाब=न्याय। राव=राजा। अक भरि=बाहुपाश म बाध कर। मोतिन की=माला मे मनकों की। जगात=कर।

अर्थ—राधा की बातें सुनकर कृष्ण कहते है कि मेरा न्याय कौन कर सकता है, क्योकि मैं तीनो लोको का राजा हूँ अर्थात् मैं तो स्वय ही सबसे बडा हूँ। तुम इसी कारण उल्लसित होकर यही दाव देखकर फेर लेती हो। तुम वृन्दावन के कु जो मे उत्पन्न कदम्ब के रया की छाया मे चलो और जैसा मैं चाहता हूँ वहाँ तुम्हे बाहुपाश मे लूँगा। मैंने हीरा, मणि, मानिक, चाँप, पनके और मोती जैसे तुम्हारे शरीर पर कर लगाना है। गोरस तो मैंने अनेक बार अत्यधिक मात्रा मे खाया पिया है, अब तुम यह समझो कि मैं तुम्हारे सुन्दर शरीर से कर वसूल करने आया हूँ।

सवैया

नौ लख गाय सुनी हम न द के तापर दूध दही न अघाने।
माँगत भीख फिरो बन ही बन झूठि ही बातन के पन पाने।।
और की नारिन के मुख जोवत लाज गहो कछु होहु सयाने।
जाहु भले जु चले घर जाहु चले बस जाउ वृ दावन जाने।।११।।

शब्दार्थ—नौ लख=नौ लाख। अघाने=तृप्त हुए। जोवत=देखना। होहु सयाने=होश मे आकर। जाने=जानती हैं।

अर्थ—कृष्ण की बात सुनकर राधा कहती है कि हे कृष्ण! मैंने सुना है कि नद के नौ लाख गायें हैं, फिर भी तुम उनकी दूध दही खाकर तृप्त नही हुए। तुम बन-बन म झूठी बातें बनाकर भीख मांगते फिरते हो। तुम दूसरो की स्त्रियो के मु ह देखते फिरते हो। तुम्हारा यह काय नहीं है, अत होश में आकर कुछ शरम करो। अच्छा यही है कि तुम वृ दावन अपने घर [illegible] तुम्हे भली प्रकार जानते हैं।

स्फुट पद

तू एसी चतुराई ठानें, काहे को निकसत या गैल ।
गैल कहा तेरे बाबा की हम निकसी का पहिल पहैल ।
यह पैंडो सर्वहिन चलिवे को, काहे को तू रोकत छैल !
रसखान के प्रभु सूधो चलि जा, देहुँ उरहनों नद महैल ॥१॥

शब्दार्थ—गैल=रास्ता । पहिल पहैल=प्रथम रास्ता । पैंडो रास्ता । उरहनों=उपालम्भ, शिकायत । नद महैल=नदमिहिर ।

अर्थ—मार्ग मे जाते हुए किसी गोपी को कृष्ण ने छेड़ दिया । वह कृष्ण को बुरा-भला कहने लगी । इस पर कृष्ण ने कहा कि यदि अपने मन मे इतनी होशियार बनती है तो इस रास्ते से निकलती ही क्यो हैं ? इस पर गोपी कहती है कि यह रास्ता न तो तेरे बाबा का है और न हम प्रथम बार ही इससे जा रही हैं, पहले भी इस रास्ते से निकल चुकी हैं । रास्ता तो सभी के चलने के लिए है अत हे छैला ! तुम रास्ता क्यो रोकते हो ? हे रसखान के प्रभु ! हमे छोड़कर या तो सीधे-सीधे यहाँ से चले जाओ, वरना तुम्हारी शिकायत नन्दमिहिर से कर देंगी ।

गारी खायगो अरे गँवार ?
ऐसी कौन सिखाई तोहै, पकरत आप पराई नार ?
जा जा गोरस ले पिवैया, कौन है तू मग रोकनहार ?
एती बरजोरी ना कीजैं, मोहन सीख दई सत बार ।
खीजि मटुकिया झटकि सुपटकी, गोरस बहि-बहि चल्यौ पनार ?
रसखान के प्रभु आज जान दें, कल आऊ गी यहै करार ॥२॥

शब्दार्थ—गँवार=धृष्ट । गोरस=दही । बरजोरी=छीना-झपटी । सीख=शिक्षा । सतबार=सैकड़ो बार । खीजि=क्रोधित होकर । पनार=नाली ।

अर्थ—कोई गोपी दही बेचन के लिए जा रही थी । रास्त मे कृष्ण मिल गय और उससे छेड़खानी करने लगे । इस पर गोपी ने कहा कि हे

धूर्त कृष्ण ! तुम मुझ से छेड़खानी क्यों करते हो ? क्या तुम मुझ से गाली खाना चाहते हो ? तुम्हें पराई स्त्री को छेड़ने की शिक्षा किसने दी है ? जाओ यहां से चले जाओ। तुम जैसे दही खाने वाले अनेक देखे हैं। मरा रास्ता रोकने वाले होते कौन हो। हे मोहन मैं तुमको सैकड़ों बार समझा चुकी हूँ कि तुम्हारी ऐसी छीना-झपटी करनी ठीक नहीं है। यह सुनकर कृष्ण को क्रोध आ गया और क्रोधित होकर उन्होंने उस गोपी की दही की मटकी झटक कर पृथ्वी पर फेंक दी जिससे वह फूट गई और दही नाली में बढ़-बढ़कर चलने लगी। तब गोपी ने उनसे प्रार्थना की कि हे रसखान के प्रभु ! आज तो मुझे जाने दो। मैं वचन देती हूँ कि कल अवश्य आऊँगी।

वाही दिन बारो बानक बनि, आयो सखि आज।
गावत तेरी रझि भावतौ, सग लिये सुघर समाज।
सासु ननद की कानि करौ जनि, उठ किन खेलो फाग।
अंखियाँ सखियाँ सुफल करौ किन, इन नैनन के भाग॥
कान परी जब तान मोहिनी, तबहूँ तजी कुल कानि॥
इतउ हसी वृषभान-नंदिनी, उतउ हँसे रसखानि॥ ३॥

शब्दार्थ-वाही दिन बारो=उसी दिन की तरह। बानक बनि=वेशभूषा सजाकर। सुघर=सुन्दर। कानि=भय जनि=मत। किन=क्या नहीं। इतउ=इधर। वृषभान-नंदिनी=राधा। रसखानि=कृष्ण।

अर्थ-कोई गोपी अपनी सखिया को फाग खेलने के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि हे सखियो ! कृष्ण ने आज फिर उसी दिन वाली वेश-भूषा धारण करके अपने शरीर को सजाया है। वह अपने साथ अपने साथियों का सुन्दर समाज लेकर तेरे प्रेम के गीत गाता है। अब तुम अपनी सास और ननदों का भय मत करो और उठकर फाग खेलो। हे सखियो ! यह अवसर बड़े सौभाग्य से मिला है, अब कृष्ण के साथ फाग खेलकर अपनी आँखों को सफल करो। जब कृष्ण की मनोहर तान हमने सुनी थी तभी हमने अपने कुल की मर्यादा को छोड़ दिया था। इधर राधा कृष्ण को देखकर हँसी और उधर कृष्ण राधा को देखकर हँसे।

आज होरी रे मोहन होरी !
कालि हमारे आँगन गारी, दे आयो सो को री॥
अब का दुरि बैठे मैया ढिग, निकसो कुञ्ज बिहारी।

उमँगि-उमँगि आई गोकुल की, सकल मही धनधारी।
जब ललना ललकारि निकासे, रूप सुधा की प्यारी।
लिपटि गई घनस्याम लाल सों, चमक चमक चपला सी॥
काजर देउ जु परि भरुवा के, सबै देहु मिलि गारी।
कहि रसखान एक गारी पै, सौ आदर बलिहारी॥ ४॥

शब्दार्थ—कालि=कल। दुरि=छिपकर। ललना=गोपी। चपला=बिजली। भरवा =भड़ुवा, विभिन्न वेशधारी।

अर्थ—गोपियाँ कृष्ण के घर जाती है और कृष्ण को होली खेलने के लिए ललकारती हुई कहती हैं कि हे मोहन! आज होली है, कल तुम हमारे घर जाकर गाली दे आये थे और आज अपनी माँ के पास छिपकर बैठ गये हो। हे कुन्ज-बिहारी! बाहर निकलो। देखो, गोकुल की समस्त वैभव वाली पृथ्वी उमग गई है, अर्थात् चारो ओर मादक वातावरण छाया हुआ है। जब कृष्ण के सौन्दर्य-अमृत की प्यासी गोपियों ने कृष्ण को बाहर निकाल लिया तो वे उससे बिजली की तरह लिपट गई। तब वे कहने लगी कि सब मिलकर इस भड़ुवा को (कृष्ण को) काला कर दो और इसे गाली दो! रसखान कहते हैं कि उनकी एक गाली पर सौ आदरों को निछावर किया जा सकता है।

विशेष–उपमा अलकार।

मैं कैसे निकसौं मोहन खेलै फाग।
मेरे सँग की सब गयीं, मोहि प्रगट्यौ अनुराग॥
एक रैनि सुपनो भयो, नन्द नदन मिल्यौ आइ।
मैं सकुचन घूँघट करयो, (उन) भुज भेरी लपटाइ॥
अपनो रस मो को दयो, मेरो लीनो घूँटि।
बैरिन पलकें खुल गयी, (मेरी) गई आस सब टूटि।
फिरि मैं बहुतेरी करी, नेकु न लागी आँखि।
पलक मूँदि परिचौ लियो, (मैं) जाम एक लौं राखि।
मेरे ता दिन ह्वै गयौ, होरी डाडा रोपि।
सास ननद देखन गई, मोहि घर वालो सौंपि॥
सास उसासन भारई ननद खरी अनखाय।
देवर डग धरिबो गनें (मेरो) बालम नाहू रिसाय॥
तिगने चढि ठाडी रहूँ, मैं न करू कनहेर।

रानि द्यौस हौंसे रहे, का मुरली की टेर ॥
क्या करि मन धीरज धरू, उठति अतिहि अकुलाय।
कठिन हियो फाटे नहीं, तिल भर दुख न समाय ॥
एसी मन म आवई, छाँडि लाज कुल कानि।
जाय मिलो बृज ईस सो रति नायक रसखानि ॥५॥

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम। रस=आनन्द। परिचौ=परिचय, प्रतीक्षा। जाम=काल, प्रहर। डाड़ा रोपि=ड डा गाड दिया। बासौ=घर, सामान। अनखाय=क्रोधित होता है। तिखने=तिमनिल पर। वनहेर=दर्शन की उत्सुकता।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! मैं घर से बाहर कैसे निकलू क्यांकि बाहर कृष्ण फाग खेल रहे हैं। मेरे साथ की सारी सखियाँ चली गई हैं पर मैं नहीं गयी, क्योंकि मेरे मन म कृष्ण के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया है। हे सखि! एक दिन स्वप्न म मैं कृष्ण से मिली। उस मिलन बेला मे मैंने तो सकोच स घूघट कर लिया पर उन्होंने अपनी भुजाएँ फैलाकर मुझे अपने बाहु-पास म बाँध लिया। उन्होंने अपना आनन्द मुझे दिया और मेरा स्वय ले लिया। तभी मेरी आँखें खुल गयीं और सब आशा टूट गई। फिर मैंने सोने का बहुत प्रयत्न किया पर फिर मुझे नींद न आई। एक प्रहर तक आँख मूदकर मैं नींद की प्रतीक्षा करती रही और दबे हुए हृदय का आँखों में झुलाती रही। उसी दिन से कृष्ण के साथ होली खेलने का मेरे ऊपर प्रतिबंध लग गया। मुझे घर और घर का सामान सौंप कर सास ननद स्वय तो होली खेलने चली गयी, पर मुझे नहीं जाने दिया। कृष्ण के प्रति मेरे प्रेम को जान कर सास तो मुझे दुख देती रहती है और ननद अत्यन्त अप्रसन्न रहती है। देवर मेरे आने-जाने की पूरी चौकसी करता रहता है पति क्रोधित होकर बातें करता है। कृष्ण का तनिक सा दर्शन पाने के लिए मैं तिमंजिल पर खड़ी रहती हूँ और रात दिन उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर प्रसन्न रहती हूँ। मैं अपने मन म किस प्रकार धैर्य धारण कर सकती हूँ क्योंकि कृष्ण की याद आते ही मेरा मन अत्यधिक व्याकुल हो जाता है। मेरा हृदय इतना कठोर है कि वह वियोग-दुख से फटता भी तो नहीं है और इतना कोमल है कि इसमें तिल भर दुख भी नहीं समा पाता। मेरे मन म तो यह बात आती है कि मैं लज्जा और कुल-मर्यादा छोड़कर रति-नायक, ब्रज केअधिपति कृष्ण से जा मिलूँ।

संदिग्ध छंद

सवैया

हेरत कुंज भुजा धरें स्याम सो नेक तबै हँसती न लुगाई।
लाज न कानि हुती जिय माँझ सु भेटत जो मग माँह कन्हाई।
हेरे परें न गुपाल सखी इन जोबन आनि कुचाल चलाई।
होय कहा अब के पछिताएँ जो हाथ तें छुटि गई लरिकाई ॥१॥

शब्दार्थ—हेरत=देखते हुए। कानि=मर्यादा। लरिकाई=लड़कपन, बचपन।

अर्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखि! बचपन में जब मैं कृष्ण के ऊपर कुंज में अपनी भुजाओं को रख लेती थी, अर्थात् उसे बाहु-पाश में बाँध लेती थी तो उस घटना को देखते हुए भी अन्य स्त्रियाँ तनिक भी नहीं हँसती थी, मेरा परिहास नहीं करती थीं। यदि कृष्ण मार्ग में मिल जाता था तो मैं निस्संकोच भाव से उससे मिलती थी। तब मेरे मन में न तो लज्जा होती और न कुल की मर्यादा का कोई भाव होता था। हे सखि अब मोहन के आने पर मैं चाहते हुए भी कृष्ण को नहीं देख पाती। यह मोहन तो मेरे लिए इतना कटु अभिशाप बन गया है। लेकिन अब बचपन बीत गया तो अब पछताने से क्या होता है।

विशेष—गोपी के सरल भाव का स्वाभाविक वर्णन है।

कवित्त

चोर की चटक औ लटक नव कुंडल की,
भौंह की मटक नेह आँखिन दिखाउ रे।
मोहन सुजान गुरु रूप के निधान फेरि,
बाँसुरी बजाई तनु-तपन सिराउ रे ॥

एहो बनवारी बलिहारी जाउँ तेरी आजु
मेरी कुंज आइ नेक मीठी तान गाउ रे।
नंद के किसोर चितचोर मोर पखवारे
बंसीवारे सांवरे पियारे इत आउ रे ॥२॥

शब्दार्थ—चटक=शोभा। नेह=स्नेह प्रेम। निधान=भंडार। तनु तपन=शरीर का दुख। सिराउ=ठंडा करना। नेक=तनिक।

अर्थ—कोई गोपी कृष्ण से प्रार्थना कर रही है कि हे कृष्ण! अपने वस्त्रों की शोभा और नवीन कुंडलों के इधर उधर हिलने की शोभा भौंहों की मटक और अपनी आंखों में भरा हुआ प्रेम मुझे दिखाओ। हे मोहन! तुम सुजान हो गुण और सौंदर्य के भण्डार हो फिर से बाँसुरी बजाकर मेरे शरीर के दुख को ठंडा करो। हे बनवारी! मैं आज तुम पर बलिहारि होती हूँ। मेरे कुंज में आकर तनिक बाँसुरी की मीठी तान सुनाओ। हे नंदनंदन, चित्त को चुराने वाले मोर मुकुट धारण करने वाले वंशी वाले श्यामवर्ण प्रियतम इधर आओ अर्थात् मेरे पास आकर मेरा वियोग-दुख दूर करो।

तट की न घट भरै मग की न पग धरै
घर की न कछू करैं बैठी भरैं साँसु री।
एकै सुनि लोट गई एकै लोट पोट भई
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।
कहै रसखान सो सबै ब्रज बनिता बधि
बधिक कहाय हाय भई कुल हाँसुरी।
करियै उपाय बाँस डारियै कटाय नाहिं
उपजैगी बाँस नाहिं बजै फेरि बाँसुरी॥ ३॥

शब्दार्थ—घट=घड़ा। मग=मार्ग। दृगनि=आँखों में। हाँसु=हँसी।

अर्थ—कृष्ण की बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन करती हुई कोई नारी अपनी सखी से कहती है कि हे सखि! जब कृष्ण ने बाँसुरी बजाई तो ब्रज की समस्त गोपियाँ किंकर्तव्यविमूढ़ हो गईं। जो गोपी जल भरने के लिए गई थी वह यमुना के किनारे पर ही खड़ी रह गई। जो मार्ग में जा रही थीं उनसे मार्ग पर चला नहीं। जो घर में थी वह अपना कार्य छोड़कर बैठकर लम्बे-लम्बे साँस लेने लगी। एक नारी बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर पृथ्वी पर एकदम

होकर लौट गई, एक लोट-पोट हो गई एक की आखों से आंसू निकल आए। रसखान कहते हैं इस प्रकार ब्रज की गोपियों की भी हँसी हुई क्योंकि उन्होंने अपनी कुल की मर्यादा का कोई ध्यान नहीं रखा बाँसुरी के इस भयंकर प्रभाव से बचने का तो केवल यही उपाय है कि इस संसार के सारे बाँसों का कटवा दिया जाये, क्योंकि न बाँस होगा और न बाँसुरी बजेगी।

विशेष—लोकोक्ति अलंकार।

कवित्त

भिक्षुक तिहारो कहाँ बलि मख शाला जहाँ,
सपन को संगी कहा ह्वै है छीरनिधि में।
ऐरी बहुरंगी बैल वारो कहाँ नाचत है,
कीने तिरभंग कहीं ह्वै है ग्वालन में।
चाउर चबैया कहाँ है सुदामा पास,
विष को अहारी कहाँ पूतना के घर में।
सिंधु सुता आन मिली तर्क सो तरक करी,
गिरिजा मुसकाति जाति भारी लिए कर में ॥४१॥

शब्दार्थ—बलि मख शाला जहाँ=जहाँ पर राजा बलि की यज्ञशाला है। छीरनिधि=क्षीरसागर, विष्णु का निवास-स्थान, कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता है। तिरभंग=त्रिभंगी होकर। पूतना=एक राक्षसी, जिसे कृष्ण ने बचपन में मारा था। सिन्धु सुता=लक्ष्मी। तक से तर्क करी=तर्क के द्वारा पराजित कर दिया। गिरिजा=पार्वती। भारी=जलपात्र।

अर्थ—पार्वती जल का पात्र लेकर जा रही थी। मार्ग में उन्हें लक्ष्मी मिली। उसने शिव का परिहास करने के लिए पार्वती से कुछ प्रश्न किये, परन्तु पार्वती ने उनके उत्तर कृष्ण से (विष्णु के अवतार से) सम्बद्ध कर दिये। इस प्रकार पार्वती ने अपने पति के गौरव की भी रक्षा की और लक्ष्मी को अपने तर्कों से पराजित कर दिया। प्रश्न और उत्तर इस प्रकार हैं।

प्रश्न—तुम्हारा भिक्षुक कहाँ है? (गोपी का शिव से तात्पर्य है।)

उत्तर—जहाँ राजा बलि की यज्ञशाला है। (कृष्ण राजा बलि के पास वामन का रूप धारण करके दान माँगने गये थे।)

प्रश्न—सर्पों का साथी कहाँ है? (शिव के गले में सर्प है।)

उत्तर—क्षीर सागर में। (विष्णु क्षीर सागर में शेषनाग की शैया बनाकर निवास करते हैं। कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है।)

प्रश्न—अरी मैं पूछती हूँ कि वह बहुरंगी बैल वाला कहाँ नाच रहा है। (शिव की सवारी नंदी बैल है और शिव का ताण्डव नृत्य लोक प्रसिद्ध है।)

उत्तर—तीन भंगिमाएं बनाकर ग्वाल-समूह के मध्य।

प्रश्न—चावलों को चाबने वाला कहां है ? (शिव वैभव से दूर रहकर कठोर योगी का जीवन बिताते हैं।)

उत्तर—सुदामा के पास। (कृष्ण ने सुदामा के चावल खाये थे।)

प्रश्न—वह विष खाने वाला कहां है ? (शिव ने देवताओं की रक्षा के लिए क्षीर सागर में निकले हुए विष का पान किया था।)

उत्तर—पूतना के घर में। (पूतना राक्षसी अपने स्तनों से विष लगाकर बालक कृष्ण को मारने आई थी।)

इस प्रकार जल-पात्र लेकर जाती हुई पार्वती ने अपने तर्कों से लक्ष्मी को पराजित कर दिया।

मे अब मेरी बलाय जाय अर्थात् मैं वहाँ बिलकुल नहीं जाऊंगी क्यों वहाँ व्यर्थ ही मन रूपी चरण मे प्रेम रूपी कांटा गड जायेगा अर्थात् कृष्ण से प्रेम हो जायेगा।

विशेष—रूपक अलकार।

कवित्त

सुरतरु लतानि चार फल है ललित कैंधो,
कामधेनु धारा मम नेह उपजावनी।
कैंधो चिन्तामनिन की माल उर सोभित,
बिसाल कंठ मे धरें हैं जोति झलकावनी॥
प्रभु की कहानी तें गुसाईं की मधुरबानी,
मुक्ति सुखदानी रसखानि मनभावनी।
खाड की खिझावनी सी कंठ की कुढावनी सी,
सिता को सतावनी सी सुधा सकुचावनी॥ ७॥

शब्दार्थ—सुरतरु=कल्पवृक्ष। चार फल=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। ललित=सुन्दर। नेह=स्नेह। सिता=शर्करा, चीनी।

अर्थ—इस कवित्त मे राम-कथा के महत्व का वर्णन किया गया है। यह राम कथा कल्पवृक्ष की शाखाओं की भाँति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार सुन्दर फल देने वाली है या कामधेनु की दुग्ध धारा के समान पवित्र और निर्मल प्रेम को उत्पन्न करने वाली है या हृदय पर चिन्तामणि माला के समान सुशोभित होने वाली है या विशाल कण्ठ मे दिव्य ज्योति के समान झलकने वाली है राम की कथा से गोस्वामी तुलसीदास की वाणी मुक्ति सुख आनन्द देने वाली बनकर मनोहर हो गई। राम-कथा खाँड कन्द शरीर की भाँति मीठी और अमृत के समान अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली है।

विशेष—सन्देह, उल्लेख अलकार।

अंग भभूत लगाय महा सुख है कोउ ऐसो सो प्रेमहु पागै।
नाथ को नाम सुनें बिगसैं हियो कान्ह को नाम सुनें अनुरागै।
जोग लिये हरि प्यारी मिलैं तो मैं कान फटाये कहा दुख लागै।
मोहन के मन मानी यही तो सबै री कहो मिलि गोरख जागै॥ ८॥

शब्दार्थ—भभूत=भस्म। नाथ=गोरखनाथ। बिगसैं हियो=हृदय प्रसन्न हो जाता है। अनुरागै=प्रेम पूर्ण हो जाना है।

अर्थ—उद्धव के निर्गुण ब्रह्म उपदेश को सुनकर कोई गोपी उद्धव से कहती है कि कृष्ण के प्रेम मे निमग्न हुआ क्या कोई ऐसा प्राणी है जो यह कहे कि अंगो मे भस्म लगाने से महासुख की प्राप्ति होती है। गोरखनाथ का नाम सुनकर हृदय प्रसन्न हो जाता है परन्तु कृष्ण का नाम सुनने पर

मन प्रेमपूर्ण हो जाता है। यदि योग धारण करने से प्यारा कृष्ण मिल जाय तो हमें अपने कान फटवा लेने में भी कोई दुख नहीं अर्थात् हम सहर्ष अपने कान फटवा सकती हैं। यदि कृष्ण की यही इच्छा है कि हम उन्हें छोड़कर योग साधना शुरू कर दें तो हे सखि! सब आजाओ और मिलकर गोरखनाथ का अलख जगाओ।

> कैसा यह दस निगोरा, जग होरी ब्रज होरा।
> मैं जल जमना भरन जात रही, देखि बदन मेरा गोरा।
> मोसों कहैं चलो कुंजन में, तनक-तनक से छोरा।
> परे आँखिन में डोरा॥
> जिमरा देखि डरान सखी री, लाज भरम को मारा।
> का बूढ़े का लोग लुगाई, एक ते एक ठिठोरा।
> न काहू सा काहू को जोरा।
> मन मेरो हर्‌यो नद के ने सखि चलत लगावत चोरा।
> कहै रसखान सिखाइ सखन सों सब मेरा अंग टटोरा।
> न मानत कहत निहोरा॥ ६॥

शब्दार्थ–निहोरा=निगोड़ा तनक तनक सो=छोटे छोटे। डोरा=काजल। ठिठोरा=धृष्ट। निहोरा=विनय।

अर्थ–कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि! यह निगोड़ा देश कैसा है और ब्रज तो सारे जग से बढ़कर है। मैं यमुना में पानी भरने के लिए जा रही थी कि मेरे गोरे शरीर को देखकर मेरे सौन्दर्य पर रीझकर, छोटे-छोटे बच्चे भी जो आँखों में काजल लगाए हुए थे, मुझ से कहने लगे कि कुन्जों में चलो। उन्हें देखकर मेरा मन डर गया, लज्जा सकट में पड़ गई। क्या बूढ़े, क्या लोग और स्त्रियाँ, यहाँ ब्रज में तो सब एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर धृष्ट हैं, कोई किसी के जोड़े में नहीं आता, अर्थात् सभी अनुपमेय हैं। हे सखि! मेरा मन कृष्ण ने हर लिया है, वह चोरी चोरी मेरे पीछे चलता है और अपने सब साथियों को सिखा कर मेरी तलाशी लिया करता है। उससे चाहे कितनी विनय करो, पर वह किसी की कोई बात नहीं सुनता।